ॐ अर्हं

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क ३१

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री जोरावरमलजी महाराज की पुण्यस्मृति मे आयोजित]

श्रुतस्थविरप्रणीत-उपाङ्गसूत्र

जीवाजीवाभिगमसूत्र

[मूलपाठ, प्रस्तावना, अर्थ, विवेचन तथा परिशिष्ट आदि युक्त]

[द्वितीय खण्ड]

प्रेरणा

(स्व) उपप्रवर्तक शासनसेवी स्वामी श्री ब्रजलालजी महाराज

आद्य सयोजक तथा प्रधान सम्पादक

(स्व०) युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

सम्पादन

श्री राजेन्द्रमुनिजी

एम ए , साहित्यमहोपाध्याय

प्रकाशक

श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क ३१

☐ निर्देशन
साध्वी श्री उमरावकुंवर 'अर्चना'

☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ प्रथम संस्करण
वीर निर्वाण सं० २५१७
विक्रम सं० २०४८
नवम्बर १९९१ ई०

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशन समिति
श्री ब्रज-मधुकर स्मृति भवन,
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
पिन—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य : 45/-

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Shri Joravarmalji Maharaj

JĪVĀJĪVĀBHIGAMA SŪTRA

[Original Text, Hindi Version, Introduction and Appendices etc]

[PART II]

□
Inspiring Soul
(Late) Up-pravartaka Shasansevi Rev Swami Shri Brijlalji Maharaj

□
Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Shri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

□
Editor
Shri Rajendra Muni
M. A., Sahityamahopadhyay

□
Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj)

Jinagam Granthmala Publication No. 31

☐ **Direction**
Sadhwi Shri Umravkunwar 'Archana'

☐ **Board of Editors**
Anuyoga-pravartaka Muni Shri Kanhaiyalalji 'Kamal'
Upacharya Shri Devendra Muni Shastri
Shri Ratan Muni

☐ **Promotor**
Muni Shri Vinayakumar 'Bhima'
Sri Mahendra Muni 'Dinakar'

☐ **First Edition**
Vir-Nirvana Samvat 2517
Vikram Samvat 2048, Nov 1991

☐ **Publisher**
Sri Agam Prakashan Samiti,
Shri Brij-Madhukar Smriti Bhawan,
Pipalia Bazar, Beawar (Raj.)
Pin 305 901

☐ **Printer**
Satish Chandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer

☐ **Price : 45/-**

समर्पण

जैन आगम-दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड
पण्डित, बहुश्रुत, श्रमणसघ के
उपाचार्यप्रवर, सद्गुरुवर्य
श्रद्धेय श्री देवेन्द्रमुनिजी म.
को सादर विनय
सभक्ति

—राजेन्द्रमुनि

प्रकाशकीय

आगमप्रेमी जैनदर्शन के अध्येताओ के समक्ष जिनागम ग्रन्थमाला के ३१वे अक के रूप मे जीवाजीवाभिगम-सूत्र का द्वितीय भाग प्रस्तुत किया जा रहा है। जीवाजीवाभिगमसूत्र मे मुख्य रूप से जीव का विभिन्न स्थितियो की अपेक्षा विशद वर्णन किया गया है। जो सक्षेप मे जीव की अनेकानेक अवस्थाओ का दिग्दर्शन कराने के साथ तत्सम्बन्धी सभी जिज्ञासाओ का समाधान करता है। साधारण पाठको के लिये तो विस्तृत बोध कराने का साधन है।

प्रस्तुत सस्करण मे निर्धारित रूपरेखा के अनुसार मूल पाठ के साथ हिन्दी मे उसका अर्थ तथा स्पष्टीकरण के लिये आवश्यक विवेचन है। इसी कारण ग्रन्थ का अधिक विस्तार हो जाने से दो भागो मे प्रकाशित किया गया है। प्रथम भाग पूर्व मे प्रकाशित हो गया और यह द्वितीय भाग है।

ग्रन्थ का अनुवाद, विवेचन, सपादन उप-प्रवर्तक श्री राजेन्द्रमुनिजी म एम ए, पी-एच डी. ने किया है। उत्तराध्ययनसूत्र का सपादन आदि आपने ही किया था। एतदर्थ समिति आपको अपना वरिष्ठ सहयोगी मानती हुई हार्दिक अभिनन्दन करती है।

समग्र आगमसाहित्य को जनभोग्य बनाने के लिये जिन महामना युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी "मधुकर" मुनिजी म ने पवित्र अनुष्ठान प्रारम्भ किया था, अब उनका प्रत्यक्ष सान्निध्य तो नही रहा, यह परिताप का विषय है, किन्तु आपश्री के परोक्ष आशीर्वाद सदैव समिति को प्राप्त होते रहे है। यही कारण है कि समिति अपने कार्य मे प्रगति करती रही और अब हम विश्वास के साथ यह स्पष्ट करने मे समक्ष है कि आगम बत्तीसी का प्रकाशन कार्य प्राय पूर्ण हो चुका है।

अन्त मे हम अपने सभी सहयोगियो के कृतज्ञ है कि उनकी लगन, प्रेरणा से प्रकाशन का कार्य सम्पन्न होने जा रहा है।

रतनचन्द मोदी	**सायरमल चोरड़िया**	**अमरचन्द मोदी**
कार्यवाहक अध्यक्ष	महामत्री	मत्री

श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

सम्पादकीय वक्तव्य

सर्वज्ञ—सर्वदर्शी वीतराग परमात्मा जिनेश्वर देवो की सुधास्यन्दिनी—आगम-वाणी न केवल विश्व के धार्मिक साहित्य की अनमोल निधि है, अपितु वह जगज्जीवो के जीवन का सरक्षण करने वाली सजीवनी है। अरिहन्तो द्वारा उपदिष्ट यह प्रवचन वह अमृतकलश है जो समस्त विषविकारो को दूर कर विश्व के समस्त प्राणियो को नवजीवन प्रदान करता है। जैनागमो का उद्भव ही जगत के जीवो के रक्षण रूप दया के लिए हुआ है।[1] अहिंसा, दया, करुणा, स्नेह, मैत्री ही इसका सार है। अतएव विश्व के जीवो के लिए यह सर्वाधिक हितकर, सरक्षक एव उपकारक है। यह जैन प्रवचन जगज्जीवो के लिए त्राणरूप है, शरणरूप है, गतिरूप है और आधाररूप है।

पूर्वाचार्यों ने इस आगमवाणी को सागर की उपमा से उपमित किया है। उन्होने कहा—"यह जैनागम महान् सागर के समान है, यह ज्ञान से अगाध है, श्रेष्ठ पद-समुदाय रूपी जल से लबालब भरा हुआ है, अहिंसा की अनन्त उर्मियो-लहरो से तरगित होने से यह अपार विस्तार वाला है, चूला रूपी ज्वार इसमें उठ रहा है। गुरु की कृपा से प्राप्त होने वाली मणियो से यह भरा हुआ है। इसका पार पाना कठिन है। यह परम साररूप और मगलरूप है। ऐसे महावीर परमात्मा के आगमरूपी समुद्र की भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिए।[2]

सचमुच जैनागम महासागर की तरह विस्तृत और गम्भीर है। तथापि गुरुकृपा और प्रयत्न से इसमे अवगाहन करके सारभूत रत्नो को प्राप्त किया जा सकता है।

जिनप्रवचन का सार अहिंसा और समता है। जैसा कि सूत्रकृतांग सूत्र मे कहा है—सब प्राणियो को आत्मवत् समझकर उनकी हिंसा न करना, यही धर्म का सार है, आत्मकल्याण का मार्ग है।

जैनसिद्धान्त अहिंसा से ओतप्रोत है और आज के दावानल मे सुलगते विश्व के लिए अहिंसा की अजस्र जलधारा ही हितावह है। अत जैन सिद्धान्तो का पठन-पाठन-अनुशीलन एव उनका व्यापक प्रचार-प्रसार आज के युग की प्राथमिकता है। अहिंसा के अनुशीलन से ही विश्वशान्ति की सम्भावना है, अतएव अहिंसा से ओतप्रोत जैनागमो का अध्ययन एव अनुशीलन परम आवश्यक है।

जैनागम द्वादशागी गणिपिटक रूप है। अरिहत तीर्थंकर परमात्मा केवलज्ञान की प्राप्ति होने के पश्चात् अर्थ रूप से प्रवचन का प्ररूपण करते हैं और उनके चतुर्दशपूर्वधर, विपुलबुद्धिनिधान गणधर उन्हे सूत्ररूप मे निबद्ध करते हैं। इस तरह प्रवचन की परम्परा चलती रहती है। अतएव अर्थरूप आगम के प्रणेता श्री तीर्थंकर परमात्मा

---

१ सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए, भगवया पावयण कहिय। —प्रश्नव्याकरण

२ बोधागाधं सुपदपदवी नीरपूराभिराम,
जीवाहिंसाऽविरहलहरी सगमागाहदेह।
चूलावेल गुरुगममणिसकुल दूरचार,
सार वीरागमजलनिधि सादर साधु सेवे॥

हैं और शब्दरूप आगम के प्रणेता गणधर हैं। अनन्त काल से अरिहन्त और उनके गणधरो की परम्परा चलती आ रही है। अतएव उनके उपदेश रूप आगम की परम्परा भी अनादि काल से चली आ रही है। इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि यह द्वादशागी ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, सदाकाल से है, यह कभी नही है, ऐसा नही है। यह सदा थी, है और रहेगी। भावो की अपेक्षा यह ध्रुव, नित्य, शाश्वत है।[1]

द्वादशागी मे बारह अगो का समावेश है। आचाराग,सूयगडाग, ठाणांग, समवायाग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिक, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद, ये बारह अग हैं। यही द्वादशागी गणिपिटक है, जो साक्षात् तीर्थंकरो द्वारा उपदिष्ट है। यह अगप्रविष्ट आगम कहे जाते हैं, इनके अतिरिक्त अनगप्रविष्ट—अगबाह्य आगम वे हैं जो तीर्थंकरो के वचनो से अविरुद्ध रूप मे प्रज्ञातिशय-सम्पन्न स्थविर भगवतों द्वारा रचे गए हैं। इस प्रकार जैनागम दो भागो मे विभक्त हैं—अगप्रविष्ट और अनगप्रविष्ट (अगबाह्य)।

प्रस्तुत जीवाजीवाभिगम शास्त्र अनगप्रविष्ट आगम है। दूसरी विवक्षा से बारह अगो के बारह उपाग भी कहे गए है। तदनुसार औपपातिक आदि को उपाग सज्ञा दी जाती है। आचार्य मलयगिरि ने जिन्होंने जीवाजीवाभिगम पर विस्तृत वृत्ति लिखी है, इसे तृतीय अग—स्थानाग का उपाग कहा है।

प्रस्तुत जीवाजीवाभिगमसूत्र की आदि मे स्थविर भगवतो को इस अध्ययन के प्ररूपक के रूप मे प्रतिपादित किया गया है—

इह खलु जिणमय जिणाणुमय, जिणाणुलोम, जिणप्पणीय, जिणपरूविय जिणक्खाय जिणाणुचिण्ण, जिणपण्णत्त, जिणदेसिय, जिणपसत्थ, अणुव्वीइय, त सद्दहमाणा, त पत्तियमाणा, त रोयमाणा थेरा भगवतो जीवाजीवाभिगमणाममज्झयण पण्णवइसु।

समस्त जिनेश्वरो द्वारा अनुमत, जिनानुलोम जिनप्रणीत, जिनप्ररूपित, जिनाख्यात, जिनानुचीर्ण, जिनप्रज्ञप्त और जिनदेशित इस प्रशस्त जिनमत का चिन्तन करके, इस पर श्रद्धा, विश्वास एव रुचि करके स्थविर भगवन्तो ने जीवाजीवाभिगम नामक अध्ययन की प्ररूपणा की।

उक्त कथन द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि प्रस्तुत सूत्र की रचना स्थविर भगवन्तो ने की है। वे स्थविर भगवन्त तीर्थंकरो के प्रवचन के सम्यग्ज्ञाता थे। उनके वचनो पर श्रद्धा, विश्वास व रुचि रखने वाले थे। इससे यह ध्वनित किया गया है कि ऐसे स्थविरो द्वारा प्ररूपित आगम भी उसी प्रकार प्रमाणरूप है, जिस प्रकार सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर परमात्मा द्वारा प्ररूपित आगम प्रमाणरूप हैं। क्योकि स्थविरो की यह रचना तीर्थंकरो के वचनो से अविरुद्ध है। प्रस्तुत पाठ मे आए हुये जिनमत के विशेषणो का स्पष्टीकरण उक्त मूलपाठ के विवेचन मे किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र का नाम जीवाजीवाभिगम है, परन्तु मुख्य रूप मे जीव का प्रतिपादन होने से अथवा सक्षेप दृष्टि से यह सूत्र जीवाभिगम के नाम से जाना जाता है।

---

१ एय दुवालसग गणिपिटग ण क यावि णासि, ण कयावि ण भवइ, ण कयावि ण भविस्सइ, धुव णिच्च सासय।

—नन्दीसूत्र

जैन तत्त्वज्ञान प्रधानतया आत्मवादी है। जीव या आत्मा इसका केन्द्रबिन्दु है। वैसे तो जैनसिद्धान्त ने नौ तत्त्व माने हैं अथवा पुण्य, पाप को आश्रव, बन्ध तत्त्व मे सम्मिलित करने से सात तत्त्व माने हैं, परन्तु वे सब जीव और अजीव कर्म-द्रव्य के सम्बन्ध या वियोग की विभिन्न अवस्था रूप ही हैं। अजीवतत्त्व का प्ररूपण जीवतत्त्व के स्वरूप को विशेष स्पष्ट करने तथा उससे उसके भिन्न स्वरूप को बताने के लिए है। पुण्य, पाप, आश्रव, सवर, निर्जरा, बध और मोक्ष तत्त्व जीव और कर्म के सयोग-वियोग से होने वाली अवस्थाए हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि जैन तत्त्वज्ञान का मूल आत्मद्रव्य (जीव) है। उसका आरम्भ ही आत्मविचार से होता है तथा मोक्ष उसकी अन्तिम परिणति है। प्रस्तुत सूत्र मे उसी आत्मद्रव्य की अर्थात् जीव की विस्तार के साथ चर्चा की गयी है। अतएव यह जीवाभिगम कहा जाता है। अभिगम का अर्थ है ज्ञान। जिसके द्वारा जीव, अजीव का ज्ञान-विज्ञान हो, वह जीवाजीवाभिगम है। अजीव तत्त्व के भेदो का सामान्य रूप से उल्लेख करने के उपरान्त प्रस्तुत सूत्र का सारा अभिप्रेय जीवतत्त्व को लेकर ही है। जीव के दो भेद—सिद्ध और ससारसमापन्नक के रूप में बताये गये हैं। तदुपरान्त ससारसमापन्नक जीवो के विभिन्न विवक्षाओ को लेकर किए गए भेदो के विषय मे नौ प्रतिपत्तियो-मन्तव्यो का विस्तार से वर्णन किया गया है। ये नौ ही प्रतिपत्तिया भिन्न-भिन्न अपेक्षाओ को लेकर प्रतिपादित हैं, अतएव भिन्न-भिन्न होने के बावजूद ये परस्पर अविरोधी है और तथ्यपरक हैं।

रागद्वेषादि विभावपरिणतियो से परिणत यह जीव ससार मे कैसी-कैसी अवस्थाओ का, किन-किन रूपो का, किन-किन योनियो मे जन्म-मरण आदि का अनुभव करता है, आदि विषयो का उल्लेख इन नौ प्रतिपत्तियो मे किया गया है। त्रस स्थावर के रूप मे, स्त्री-पुरुष-नपु सक के रूप मे, नारक तिर्यंच देव और मनुष्य के रूप में, एकेन्द्रिय मे पचेन्द्रिय के रूप मे, पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय के रूप मे तथा अन्य अपेक्षाओ से अन्य-अन्य रूपो मे जन्म-मरण करता हुआ यह जीवात्मा जिन-जिन स्थितियो का अनुभव करता है, उनका सूक्ष्म वर्णन किया गया है। द्विविध प्रतिपत्ति मे त्रस स्थावर के रूप मे जीवो के भेद बताकर—१. शरीर, २. अवगाहना, ३. सहनन, ४ सस्थान, ५ कषाय, ६ सज्ञा, ७ लेश्या, ८. इन्द्रिय, ९ समुद्घात, १० सज्ञी-असज्ञी, ११ वेद, १२. पर्याप्त-अपर्याप्त १३ दृष्टि, १४ दर्शन, १५ ज्ञान, १६ योग, १७ उपयोग, १८ आहार, १९ उपपात, २०. स्थिति, २१. समवहत-असमवहत, २२. च्यवन और २३ गति-आगति, इन २३ द्वारो से उनका निरूपण किया है, इसी प्रकार आगे की प्रतिपत्तियो मे भी जीव के विभिन्न भेदो मे विभिन्न द्वारो को घटित किया गया है। स्थिति, सचिट्ठणा (कायस्थिति), अन्तर और अल्पबहुत्व द्वारो का यथासभव सर्वत्र उल्लेख किया गया है। अनिम प्रतिपत्ति मे सिद्ध, ससारी भेदो की विविक्षा न करते हुए सर्वजीवो के भेदो की प्ररूपणा की गई है।

प्रस्तुत सूत्र मे नारक, तिर्यच, मनुष्य और देवो के प्रसग मे अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक का निरूपण किया गया है। तिर्यग्लोक के निरूपण मे द्वीप-समुद्रो की वक्तव्यता, कर्मभूमि-अकर्मभूमि की वक्तव्यता, वहाँ की भौगोलिक और सास्कृतिक स्थितियो का विशद विवेचन भी किया गया है, जो विविध दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार यह सूत्र और इसकी विषय-वस्तु जीव के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी देती है। अतएव इसका जीवाभिगम नाम सार्थक है। यह आगम जैन तत्त्वज्ञान का महत्त्वपूर्ण अग है।

प्रस्तुत सूत्र का मूल प्रमाण ४७५० (चार हजार सात सौ पचास) श्लोक ग्रन्थाग्र है। इस पर आचार्य मलयागिरि ने १४,००० (चौदह हजार) ग्रन्थाग्र प्रमाणवृत्ति लिखकर इस गम्भीर आगम के मर्म को प्रकट किया है। वृत्तिकार ने अपने बुद्धिवैभव से आगम के मर्म को हम साधारण लोगो के लिए उजागर कर हमें बहुत उपकृत किया है।

सम्पादन के विषय में—

प्रस्तुत संस्करण के मूल पाठ का मुख्यतः आधार सेठ श्री देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड सूरत से प्रकाशित वृत्तिसहित जीवाभिगमसूत्र का मूल पाठ है। परन्तु अनेक स्थलों पर उस संस्करण में प्रकाशित मूल पाठ में वृत्तिकार द्वारा मान्य पाठ में अन्तर भी है। कई स्थलों में पाये जाने वाले इस भेद से ऐसा लगता है कि वृत्तिकार के सामने कोई अन्य प्रति (आदर्श) रही हो। अतएव अनेक स्थलों पर हमने वृत्तिकार-सम्मत पाठ अधिक संगत लगने से उसे मूलपाठ में स्थान दिया है। ऐसे पाठान्तरों का उल्लेख स्थान-स्थान पर फुटनोट (टिप्पण) में किया गया है। स्वयं वृत्तिकार ने इस बात का उल्लेख किया है कि इस आगम के सूत्रपाठों में कई स्थानों पर भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। यह स्मरण रखने योग्य है कि यह भिन्नता शब्दों को लेकर है, तात्पर्य में कोई अंतर नहीं है। तात्त्विक अंतर न होकर वर्णनात्मक स्थलों में शब्दों का और उनके क्रम का अन्तर दृष्टिगोचर होता है। ऐसे स्थलों पर हमने टीकाकारसम्मत पाठ को मूल में स्थान दिया है।

प्रस्तुत आगम के अनुवाद और विवेचन में भी मुख्य आधार आचार्य श्री मलयागिरि की वृत्ति ही रही है। हमने अधिक से अधिक यह प्रयास किया है कि इस तात्त्विक आगम की सैद्धान्तिक विषय-वस्तु को अधिक से अधिक स्पष्ट रूप में जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत किया जाये। अतएव वृत्ति में स्पष्ट की गई प्रायः सभी मुख्य-मुख्य बातें हमने विवेचन में दी हैं, ताकि संस्कृत भाषा को न समझने वाले जिज्ञासुजन भी उनसे लाभान्वित हो सकें। मैं समझता हूँ कि मेरे इस प्रयास से हिन्दीभाषी जिज्ञासुओं को वे सब तात्त्विक बातें समझने को मिल सकेंगी जो वृत्ति में संस्कृत भाषा में समझायी गई हैं। इस दृष्टि से इस संस्करण की उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है। जिज्ञासुजन यदि इससे लाभान्वित होंगे तो मैं अपने प्रयास को सार्थक समझूंगा।

अन्त में मैं स्वयं को धन्य मानता हूँ कि मुझे प्रस्तुत आगम को तैयार करने का सुअवसर मिला। आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर की ओर से मुझे प्रस्तुत जीवाभिगमसूत्र का सम्पादन करने का दायित्व सौंपा गया। सूत्र की गम्भीरता को देखते हुए मुझे अपनी योग्यता के विषय में संकोच अवश्य पैदा हुआ। परन्तु श्रुतभक्ति से प्रेरित होकर मैंने यह दायित्व स्वीकार कर लिया और उसके निष्पादन में निष्ठा के साथ जुड़ गया। जैसा भी मुझ से बन पड़ा, वह इस रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है।

कृतज्ञता ज्ञापन

श्रुतसेवा के मेरे इस प्रयास में श्रद्धेय गुरुवर्य उपाध्याय—श्री पुष्कर मुनिजी म., श्रमणसंघ के उपाचार्यश्री सुप्रसिद्ध साहित्यकार गुरुवर्य श्री देवेन्द्रमुनिजी म. का मार्गदर्शन एवं पण्डित श्री रमेशमुनिजी म., श्री सुरेन्द्र मुनिजी, विदुषी महासती डॉ. श्री दिव्यप्रभाजी, श्री अनुपमाजी बी. ए. आदि का सहयोग प्राप्त हुआ है, जिसके फलस्वरूप मैं यह भगीरथ कार्यसम्पन्न करने में सफल हो सका हूँ।

आगम सम्पादन करते समय पं. श्री वसन्तीलालजी नलवाया, रतलाम का सहयोग मिला, उसे भी विस्मृत नहीं कर सकता।

यदि मेरे इस प्रयास से जिज्ञासु आगमरसिकों को तात्त्विक लाभ पहुंचेगा तो मैं अपने प्रयास को सार्थक समझूंगा। अन्त में मैं यह शुभ कामना करता हूँ कि जिनेश्वर देवों द्वारा प्ररूपित तत्त्वों के प्रति जन-जन के मन में श्रद्धा, विश्वास और रुचि उत्पन्न हो, ताकि वे ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना करके मुक्तिपथ के पथिक बन सकें।

श्री अमर जैन आगम भण्डार
पीपाड़सिटी, ११ सितम्बर ९१

—राजेन्द्रमुनि
एम. ए., पी-एच. डी.

अनुक्रमणिका

जीवाजीवाभिगमसुत्तं

[बिइयं खंडं]

जीवाजीवाभिगमसूत्र

[द्वितीय खण्ड]

तृतीय प्रतिपत्ति

लवणसमुद्र की वक्तव्यता

१५४. जंबुद्दीवं णामं दीवं लवणे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठइ। लवणे णं भंते! समुद्दे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए? गोयमा! समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए।

लवणे णं भंते! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेण केवइयं परिक्खेवेण पण्णत्ते?

गोयमा! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णरस जोयणसयसहस्साइं एगासीइसहस्साइं सयमेगोणचत्तालीसे किंचिविसेसाहिए लवणोदहिणो चक्कवालपरिक्खेवेणं।

से णं एक्काए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेण सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते चिट्ठइ, दोण्हवि वण्णओ। सा णं पउमवरवेदिया अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंचधणुसयं विक्खंभेणं लवणसमुद्दसमियापरिक्खेवेणं, सेसं तहेव। से णं वनसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं जाव विहरइ।

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता? गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए।

कहि णं भंते! लवणसमुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते? गोयमा! लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमपेरंते धायइखंडस्स दीवस्स पुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीओयाए महाणईए उप्पिं एत्थ णं लवणस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते, अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं एवं तं चेव सव्वं जहा जम्बुद्दीवस्स विजए दारे[1] रायहाणी पुरत्थिमेणं अण्णंमि लवणसमुद्दे।[2]

कहि णं भंते! लवणसमुद्दे वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते? गोयमा! लवणसमुद्दे दाहिणपेरंते धातइखंडस्स दाहिणद्धस्स उत्तरेणं सेसं तं चेव। एवं जयंते वि, णवरि सीयाए महाणईए उप्पिं भाणियव्वं। एवं अपराजिए वि, णवरं दिसिभागो भाणियव्वो।

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा!

> तिण्णेव सयसहस्सा पंचाणउइं भवे सहस्साइं।
> दो जोयणसय असीआ कोस दारंतरे लवणे॥ १॥

जाव अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

---

१. विजयदारसरिसमेयपि।

२. किन्ही प्रतियों में यहां चारों द्वारों का पूरा वर्णन मूलपाठ में दिया हुआ है, परन्तु वह पहले कहा जा चुका है और टीकानुसारी भी नहीं है, अतएव उसका उल्लेख नहीं किया गया है।

लवणस्स णं भंते ! पएसा धातइखंडं दीवं पुट्ठा ? तहेव जहा जम्बूदीवे धायइखंडे वि सो चेव गमो ।

लवणे ण भंते । समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता सो चेव विही, एव धायइखंडे वि ।

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ—लवणसमुद्दे लवणसमुद्दे ? गोयमा ! लवणे णं समुद्दे उवगे आविले रइले लोणे लिंदे खारए कडुए अप्पेज्जे बहूणं दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खि-सिरीसवाणं णण्णत्थ तज्जोणियाणं सत्ताण । सोत्थिए एत्थ लवणाहिवई देवे महिड्डिए पलिओवमट्ठिईए । से णं तत्थ सामाणिय जाव लवणसमुद्दस्स सुत्थियाए रायहाणिए अण्णेसिं जाव विहरइ । से एएट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ लवणे णं समुद्दे लवणे णं समुद्दे । अदुत्तर च णं गोयमा ! लवणसमुद्दे सासए जाव णिच्चे ।

१५४ गोल और वलय की तरह गोलाकार मे सस्थित लवणसमुद्र जम्बूद्वीप नामक द्वीप को चारो ओर से घेरे हुए अवस्थित है । हे भगवन् ! लवणसमुद्र समचक्रवाल-सस्थान से सस्थित है या विषमचक्रवाल-सस्थान से सस्थित है ? गौतम ! लवणसमुद्र समचक्रवाल-सस्थान से सस्थित है, विषमचक्रवाल-सस्थान से सस्थित नही है ।

भगवन् ! लवणसमुद्र का चक्रवाल-विष्कभ कितना है और उसकी परिधि कितनी है ?

गौतम ! लवणसमुद्र का चक्रवाल-विष्कभ दो लाख योजन का है और उसकी परिधि पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनतालीस योजन से कुछ अधिक है ।[1]

वह लवणसमुद्र एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से परिवेष्टित है । दोनो का वर्णनक कहना चाहिए । वह पद्मवरवेदिका आधा योजन ऊची और पाच सौ धनुष प्रमाण चौडी है । लवणसमुद्र के समान ही उसकी परिधि है । शेष वर्णन जम्बूद्वीप की पद्मवरवेदिका के समान जानना चाहिए । वह वनखण्ड कुछ कम दो योजन का है, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये, यावत् वहा बहुत से वाणव्यन्तर देव-देविया अपने पुण्यकर्म के फल को भोगते हुए विचरते है ।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र के कितने द्वार हैं ?

गौतम ! लवणसमुद्र के चार द्वार है—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र का विजयद्वार कहा है ?

गौतम ! लवणसमुद्र के पूर्वीय पर्यन्त मे और पूर्वार्ध धातकीखण्ड के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के ऊपर लवणसमुद्र का विजय नामक द्वार है । वह आठ योजन ऊचा और चार योजन चौडा है, आदि वह सब कथन करना चाहिए जो जम्बूद्वीप के विजयद्वार के लिए कहा गया है । इस विजय देव की राजधानी पूर्व मे असख्य द्वीप, समुद्र लाघने के बाद अन्य लवणसमुद्र मे है ।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र मे वैजयन्त नामक द्वार कहा है ?

गौतम ! लवणसमुद्र के दाक्षिणात्य पर्यन्त मे धातकीखण्ड द्वीप के दक्षिणार्ध भाग के उत्तर मे वैजयन्त नामक द्वार है । शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए । इसी प्रकार जयन्तद्वार के विषय में

---

१. वृत्ति मे 'पचदश योजनशतसहस्राणि एकाशीति सहस्राणि शतमेकोनचत्वारिंश च किंचिद्विशेषोन परिक्षेपेण' ऐसा उल्लेख है (कुछ कम है) ।

जानना चाहिए। विशेषता यह है कि यह शीता महानदी के ऊपर है। इसी प्रकार अपराजितद्वार के विषय मे जानना चाहिए। विशेषता यह है कि यह लवणसमुद्र के उत्तरी पर्यन्त मे और उत्तरार्ध धातकीखण्ड के दक्षिण मे स्थित है। इसकी राजधानी अपराजितद्वार के उत्तर मे असख्य द्वीप समुद्र जाने के बाद अन्य लवणसमुद्र मे है।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र के इन द्वारो का एक द्वार से दूसरे के अपान्तराल का अन्तर कितना कहा गया है ?

गौतम ! तीन लाख पचानवै हजार दो सौ अस्सी (३९५२८०) योजन और एक कोस का एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर है।[1]

हे भगवन् ! लवणसमुद्र के प्रदेश धातकीखण्डद्वीप से छुए हुए हैं क्या ? हा गौतम ! छुए हुए हैं, आदि सब वर्णन वैसा ही कहना चाहिए जैसा जम्बूद्वीप के विषय मे कहा गया है। धातकीखण्ड के प्रदेश लवणसमुद्र से स्पृष्ट है, आदि कथन भी पूर्ववत् जानना चाहिए। लवणसमुद्र से मर कर जीव धातकीखण्ड मे पैदा होते है क्या ? आदि कथन भी पूर्ववत् जानना चाहिए। धातकीखण्ड से मरकर लवणसमुद्र मे पैदा होने के विषय मे भी पूर्ववत् कहना चाहिए।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र, लवणसमुद्र क्यो कहलाता है ?

गौतम ! लवणसमुद्र का पानी अस्वच्छ है, रजवाला है, नमकीन है, लिन्द्र (गोबर जैसे स्वाद वाला) है, खारा है, कडुआ है, द्विपद-चतुष्पद-मृग-पशु-पक्षी-सरीसृपो के लिए वह अपेय है, केवल लवणसमुद्रयोनिक जीवो के लिए ही वह पेय है, (तद्योनिक होने से वे जीव ही उसका आहार करते हैं।) लवणसमुद्र का अधिपति सुस्थित नामक देव है जो महर्द्धिक है, पल्योपम की स्थिति वाला है। वह अपने सामानिक देवो आदि अपने परिवार का और लवणसमुद्र की सुस्थिता राजधानी और अन्य बहुत से वहा के निवासी देव-देवियो का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। इस कारण हे गौतम ! लवणसमुद्र, लवणसमुद्र कहलाता है। दूसरी बात गौतम ! यह है कि "लवणसमुद्र" यह नाम शाश्वत है यावत् नित्य है। (इसलिए यह नाम अनिमित्तिक है।)

१५५. लवणे ण भते ! समुद्दे कति चंदा पभासिसु वा पभासिति वा पभासिस्संति वा ? एवं पंचण्ह वि पुच्छा। गोयमा ! लवणसमुद्दे चत्तारि चंदा पभासिसु वा ३, चत्तारि सूरिया तविसु वा ३, बारसुत्तरं नक्खत्तसय जोगं जोएसु वा ३, तिण्णि बावण्णा महग्गहसया चार चरिसु वा ३, दुण्णिसयसहस्सा सत्तट्ठि च सहस्सा नव य सया तारागणकोडाकोडीणं सोभं सोभिसु वा ३।

१५५. हे भगवन् ! लवणसमुद्र मे कितने चन्द्र उद्योत करते थे, उद्योत करते हैं और उद्योत करेगे ? इस प्रकार चन्द्र को मिलाकर पाचो ज्योतिष्को के विषय मे प्रश्न समझने चाहिए।

गौतम ! लवणसमुद्र में चार चन्द्रमा उद्योत करते थे, करते है और करेंगे। चार सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे, एक सौ बारह नक्षत्र चन्द्र से योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे।

---

१. एक-एक द्वार की पृथुता चार-चार योजन की है। एक-एक द्वार मे एक-एक कोस मोटी दो शाखाए हैं। एक द्वार की पूरी पृथुता साढे चार योजन की है। चारो द्वारो की पृथुता १८ योजन की है। लवणसमुद्र की परिधि मे १८ योजन कम करके चार का भाग देने से उक्त प्रमाण आता है।

तीन सौ बावन महाग्रह चार चरते थे, चार चरते हैं और चार चरेंगे। दो लाख सड़सठ हजार नौ सौ कोडाकोडी तारागण शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होंगे।[1]

जलवृद्धि का कारण

१५६. कम्हा ण भंते ! लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु अतिरेगं अतिरेगं वड्ढति वा हायति वा ?

गोयमा ! जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चउद्दिसिं बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ लवणसमुद्दं पंचाणउइं पंचाणउइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि महालिंजरसंठाणसंठिया महइमहालया महापायाला पण्णत्ता, तं जहा — वलयामुहे, केतुए, जूवे, ईसरे। ते णं महापाताला एगमेगं जोयणसयसहस्सं उव्वेहेणं, मूले दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं मज्झे एगपएसियाए सेढीए एगमेगं जोयणसयसहस्सं विक्खंभेणं, उवरिं मुहमूले दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं।

तेसिं णं महापायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा दसजोयणसयबाहल्ला पण्णत्ता सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा। तत्थ णं बहवे जीवा पोग्गला य अवक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति सासया णं ते कुड्डा दव्वट्ठयाए वण्णपज्जवेहिं असासया। तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, तं जहा—काले, महाकाले, वेलंबे, पभंजणे।

तेसिं णं महापायालाणं तओ तिभागा पण्णत्ता, तं जहा हेट्ठिल्ले तिभागे, मज्झिल्ले तिभागे, उवरिल्ले तिभागे। ते णं तिभागा तेत्तीसं जोयणसहस्सा तिण्णि य तेत्तीसं जोयणसयं जोयणतिभागं च बाहल्लेणं। तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाओ संचिट्ठइ। तत्थ णं जे से मज्झिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाए य आउकाए य संचिट्ठइ। तत्थ णं जे से उवरिल्ले तिभागे एत्थ णं आउकाए संचिट्ठइ। अदुत्तरं च गोयमा ! लवणसमुद्दे तत्थ तत्थ देसे बहवे खुड्डालिंजरसंठाणसंठिया खुड्डपायालकलसा पण्णत्ता। ते णं खुड्डापायाला एगमेगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, मूले एगमेगं जोयणसयं विक्खंभेणं, मज्झे एगपएसियाए सेढीए एगमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं उप्पिं मुहमूले एगमेगं जोयणसयं विक्खंभेणं।

तेसिं णं खुड्डागपायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा दस जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता, सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा। तत्थ णं बहवे जीवा पोग्गला य जाव असासया वि। पत्तेयं पत्तेयं अद्धपलिओवमट्ठिइयाहिं देवयाहिं परिग्गहिया।

---

१ चत्तारि चेव चन्दा चत्तारि य सूरिया लवणतोए।
बारं नक्खत्तसयं गहाण तिन्नेव बावन्ना ॥ १ ॥
दो चेव सयसहस्सा सत्तट्ठी खलु भवे सहस्सा य।
नव य सया लवणजले तारागणकोडिकोडीण ॥ २ ॥

लवणसमुद्र में तारागणों की संख्या अंकों में—

२६७९०००००००००००००००० इतनी है।

तेसि णं खुड्डगपायालाणं तओ तिभागा पण्णत्ता, त जहा—

हेट्ठिल्ले तिभागे, मज्झिल्ले तिभागे, उवरिल्ले तिभागे । ते णं तिभागा तिण्णि तेत्तीसे जोयणसए जोयणतिभागं च बाहल्लेणं पण्णत्ते । तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाए, मज्झिल्ले तिभागे वाउकाए आउकाए य, उवरिल्ले आउकाए । एवामेव सपुव्वावरेणं लवणसमुद्दे सत्त पायालसहस्सा अट्ठ य चुलसीया पायालसया भवतीति मक्खाया ।

तेसि णं महापायालाणं खुड्डगपायालाण य हेट्ठिममज्झिमिल्लेसु तिभागेसु बहवे ओराला वाया संसेयंति संमुच्छिमंति एयति चलति कंपंति खुब्भंति घट्टति फंदंति, तं तं भावं परिणमति, तया णं से उदए उण्णामिज्जइ, जया णं तेसि महापायालाणं खुड्डगपायालाण य हेट्ठिल्लमज्झिमिल्लेसु तिभागेसु नो बहवे ओराला जाव तं तं भाव न परिणमति, तया णं से उदए न उन्नामिज्जइ । अंतरा वि य णं तेवाय उदीरेंति, अतरा वि य णं से उदगे उन्नामिज्जइ, अंतरा वि य ते वायं नो उदीरेंति, अतरा वि य ण से उदए नो उन्नामिज्जइ, एव खलु गोयमा ! लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा ।

१५६ हे भगवन् ! लवणसमुद्र का पानी चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा तिथियो मे अतिशय बढता है और फिर कम हो जाता है, इसका क्या कारण है ?

हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप की चारो दिशाओ मे बाहरी वेदिकान्त से लवणसमुद्र मे पिच्यानवे हजार (९५०००) योजन आगे जाने पर महाकुम्भ के आकार के बहुत विशाल चार महापातालकलश हैं, जिनके नाम हैं—वलयामुख, केयूप, यूप और ईश्वर । ये पातालकलश एक लाख योजन जल मे गहरे प्रविष्ट है, मूल मे इनका विष्कम्भ दस हजार योजन है और वहा से एक-एक प्रदेश की एक-एक श्रेणी से वृद्धिगत होते हुए मध्य मे एक-एक लाख योजन चौडे हो गये हैं। फिर एक-एक प्रदेश श्रेणी से हीन होते-होते ऊपर मुखमूल मे दस हजार योजन के चौडे हो गये है।[1]

इन पातालकलशो की भित्तिया सर्वत्र समान है। ये सब एक हजार योजन की मोटी हैं। ये सर्वथा वज्ररत्न की है, आकाश और स्फटिक के समान स्वच्छ है, यावत् प्रतिरूप हैं। इन कुड्यो (भित्तियो) मे बहुत से जीव उत्पन्न होते हैं और निकलते हैं, बहुत से पुदगल एकत्रित होते रहते है और बिखरते रहते है, वहा पुद्गलो का चय-अपचय होता रहता है। वे कुड्य (भित्तिया) द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से शाश्वत है और वर्ण-गध-रस-स्पर्शादि पर्यायो से अशाश्वत हैं। उन पातालकलशो मे पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं, उनके नाम हैं—काल, महाकाल, वेलब और प्रभजन ।

उन महापातालकलशो के तीन त्रिभाग कहे गये है—१. निचला त्रिभाग, २ मध्य का त्रिभाग और ३. ऊपर का त्रिभाग। ये प्रत्येक त्रिभाग तेतीस हजार तीन सौ तेतीस योजन और एक योजन का त्रिभाग (३३३३३⅓) जितने मोटे हैं। इनके निचले त्रिभाग मे वायुकाय है, मध्यम त्रिभाग में

१ उक्त च—जोयणसहस्सदसग मूले उवरिं च होति वित्थिण्णा ।
मज्झे य सयसहस्स तित्तियमेत्त च ओगाढा ॥ —संग्रहणीगाथा

वायुकाय और अप्काय है और ऊपर के त्रिभाग में केवल अप्काय है। इसके अतिरिक्त हे गौतम ! लवणसमुद्र में इन महापातालकलशो के बीच में छोटे कुम्भ की आकृति के छोटे-छोटे बहुत से छोटे पातालकलश हैं। वे छोटे पातालकलश एक-एक हजार योजन पानी मे गहरे प्रविष्ट हैं, एक-एक सौ योजन की चौडाई वाले हैं और एक-एक प्रदेश की श्रेणी से वृद्धिगत होते हुए मध्य मे एक हजार योजन के चौडे हो गये हैं और फिर एक-एक प्रदेश की श्रेणी से हीन होते हुए मुखमूल मे ऊपर एक-एक सौ योजन के चौडे रह गये हैं।[1]

उन छोटे पातालकलशो की भित्तिया सर्वत्र समान हैं और दस योजन की मोटी हैं, सर्वात्मना वज्रमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं। उनमे बहुत से जीव उत्पन्न होते हैं, निकलते हैं, बहुत से पुद्गल एकत्रित होते है, बिखरते हैं, उन पुद्गलो का चय-अपचय होता रहता है। वे भित्तियां द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा शाश्वत है और वर्णादि पर्यायो की अपेक्षा अशाश्वत हैं। उन छोटे पातालकलशो मे प्रत्येक में अर्धपल्योपम की स्थिति वाले देव रहते हैं।

उन छोटे पातालकलशो के तीन त्रिभाग कहे गये हैं—१ निचला त्रिभाग, २. मध्य का त्रिभाग और ३ ऊपर का त्रिभाग। ये त्रिभाग तीन सौ तेतीस योजन और योजन का त्रिभाग ($333\frac{1}{3}$) प्रमाण मोटे है। इनमे से निचले त्रिभाग मे वायुकाय है, मझले त्रिभाग मे वायुकाय और अप्काय है और ऊपर के त्रिभाग मे अप्काय है। इस प्रकार पूर्वापर सब मिलाकर लवणसमुद्र मे सात हजार आठ सौ चौरासी (७८८४) पातालकलश कहे गये हैं।

उन महापाताल और क्षुद्रपाताल कलशो के निचले और बिचले त्रिभागो मे बहुत से उर्ध्वगमन स्वभाव वाले अथवा प्रबल शक्ति वाले वायुकाय उत्पन्न होने के अभिमुख होते हैं, समूर्च्छन जन्म से आत्मलाभ करते हैं, कपित होते हैं, विशेषरूप से कपित होते हैं, जोर से चलते है, परस्पर मे घर्षित होते हैं, शक्तिशाली होकर इधर-उधर और ऊपर फैलते है, इस प्रकार वे भिन्न-भिन्न भाव मे परिणत होते हैं तब वह समुद्र का पानी उनसे क्षुभित होकर ऊपर उछाला जाता है। जब उन महापाताल और क्षुद्रपाताल कलशो के निचले और बिचले त्रिभागो में बहुत से प्रबल शक्ति वाले वायुकाय उत्पन्न नही होते यावत् उस-उस भाव मे परिणत नही होते तब वह पानी नही उछलता है। अहोरात्र मे दो बार (प्रतिनियत काल मे) और पक्ष मे चतुर्दशी आदि तिथियो मे (तथाविध जगत्स्वभाव से) लवणसमुद्र का पानी उन वायुकाय से प्रेरित होकर विशेष रूप से उछलता है। प्रतिनियत काल को छोडकर अन्य समय मे नही उछलता है।[2] इसलिए हे गौतम ! लवणसमुद्र का जल चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या

---

१. उक्त च—जोयणसयवित्थिण्णा मूले उवरिं दससयाणि मज्झमि।
ओगाढा य सहस्स दसजोयणिया य से कुड्डा॥ —सग्रहणीगाथा

२. उक्त च—अन्ने वि य पायाला खुड्डालजरगसठिया लवणे।
अट्ठसया चुलसीया सत्त सहस्सा य सव्वे वि॥१॥
पायालाण विभागा सव्वाण वि तिन्नि तिन्नि विन्नेया।
हेट्ठिमभागे वाऊ, मज्झे वाऊ य उदग य॥२॥
उवरिं उदग भणिय पढमगबीएसु वाउ सखुभिओ।
उड्ढ वामेइ उदग परिवड्ढइ जलनिही खुभिओ॥३॥ —सग्रहणीगाथाए

और पूर्णिमा तिथियों में विशेष रूप से बढ़ता है और घटता है (अर्थात् लवणसमुद्र मे ज्वार और भाटा का क्रम चलता है। जब उन्नामक वायुकाय का सद्भाव होता है तब जलवृद्धि और जब उन्नामक वायु का अभाव होता है तब जलवृद्धि का अभाव होता है।)

१५७. लवणे णं भंते ! समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं कतिखुत्तो अतिरेगं अतिरेगं वड्ढइ वा हायइ वा ?

गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अतिरेगं अतिरेगं वड्ढइ वा हायइ वा। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चई, लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अतिरेगं अतिरेगं वड्ढइ वा हायइ वा ? गोयमा ! उड्ढमंतेसु पायालेसु वड्ढइ आपूरिएसु पायालेसु हायइ, से तेणट्ठेणं, गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अतिरेगं अतिरेगं वड्ढइ वा हायइ वा।

१५७ हे भगवन् ! लवणसमुद्र (का जल) तीस मुहूर्तों में (एक अहोरात्र मे) कितनी बार विशेषरूप से बढता है या घटता है ?

हे गौतम ! लवणसमुद्र का जल तीस मुहूर्तों मे (एक अहोरात्र मे) दो बार विशेष रूप से उछलता है और घटता है।

हे भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि लवणसमुद्र का जल तीस मुहूर्तों मे दो बार विशेष रूप से उछलता है और फिर घटता है ?

हे गौतम ! निचले और मध्य के त्रिभागो मे जब वायु के सक्षोभ से पातालकलशों में से पानी ऊँचा उछलता है तब समुद्र मे पानी बढता है और जब वे पातालकलश वायु के स्थिर होने पर जल से आपूरित बने रहते है, तब पानी घटता है। इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि लवणसमुद्र तीस मुहूर्तों मे दो बार विशेष रूप से उछलता है और घटता है। (तथाविध जगत्-स्वभाव होने से ऐसी स्थिति एक अहोरात्र मे दो बार होती है।)

लवणशिखा की वक्तव्यता

१५८ लवणसिहा णं भंते ! केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा ? गोयमा ! लवणसिहा णं दस जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं देसूणं अद्धजोयणं अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा।

लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स कति णागसाहस्सीओ अब्भितरियं वेलं धारेंति ? कइ नागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारेंति ? कइ नागसाहस्सीओ अग्गोदयं धारेंति ? गोयमा ! लवणसमुद्दस्स बायालीसं णागसाहस्सीओ अब्भितरियं वेलं धारेंति, बावत्तरिं णागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारेंति, सट्ठि णागसाहस्सीओ अग्गोदयं धारेंति, एवमेव सपुव्वावरेण एगा णागसयसाहस्सी चोवत्तरिं च णागसहस्सा भवंतीति मक्खाया।

१५८. हे भगवन् ! लवणसमुद्र की शिखा चक्रवालविष्कम्भ से कितनी चौडी है और वह कितनी बढती है और कितनी घटती है ?

हे गौतम ! लवणसमुद्र की शिखा चक्रवालविष्कम्भ की अपेक्षा दस हजार योजन चौडी है और कुछ कम आधे योजन तक वह बढती है और घटती है ।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र की आभ्यन्तर वेला को कितने हजार नागकुमार देव धारण करते हैं ? बाह्य वेला को कितने हजार नागकुमार देव धारण करते हैं ? कितने हजार नागकुमार देव अग्रोदक को धारण करते हैं ?

गौतम ! लवणसमुद्र की आभ्यन्तर वेला को बयालीस हजार नागकुमार देव धारण करते है । बाह्यवेला को बहत्तर हजार नागकुमार देव धारण करते है । साठ हजार नागकुमार देव अग्रोदक को धारण करते हैं । इस प्रकार सब मिलाकर इन नागकुमारो की सख्या एक लाख चौहत्तर हजार कही गई है ।

विवेचन— लवणसमुद्र की शिखा सब ओर से चक्रवालविष्कभ से समप्रमाण वाली और दस हजार योजन चक्रवाल विस्तार वाली है । वह शिखा कुछ कम अर्धयोजन (दो कोस) प्रमाण अतिशय से बढती है और उतनी ही घटती है । इसकी स्पष्टता इस प्रकार है—

लवणसमुद्र मे जम्बूद्वीप से और धातकीखण्ड द्वीप से पचानवै-पचानवै हजार योजन तक गोतीर्थ है । गोतीर्थ का अर्थ है तडागादि मे प्रवेश करने का क्रमश नीचे-नीचे का भूप्रदेश । मध्यभाग का अवगाह दस हजार योजन का है । जम्बूद्वीप की वेदिकान्त के पास और धातकीखण्ड की वेदिका के पास अगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण गोतीर्थ है । इसके आगे समतल भूभाग से लेकर क्रमश प्रदेशहानि से तब तक उत्तरोत्तर नीचा-नीचा भूभाग समझना चाहिए, जहा तक पचानवै हजार योजन की दूरी आ जाय । पचानवै हजार योजन की दूरी तक समतल भूभाग की अपेक्षा एक हजार योजन की गहराई है । इसलिए जम्बूद्वीपवेदिका और धातकीखण्डवेदिका के पास उस समतल भूभाग मे जलवृद्धि अगुलासख्येय भाग प्रमाण होती है । इससे आगे समतल भूभाग मे प्रदेशवृद्धि से जलवृद्धि क्रमश बढती हुई जाननी चाहिए, जब तक दोनो ओर ९५ हजार योजन की दूरी आ जाय । यहा समतल भूभाग की अपेक्षा सात सौ योजन की जलवृद्धि होती है । अर्थात् वहा समतल भूभाग से एक हजार योजन की गहराई है और उसके ऊपर सात सौ योजन की जलवृद्धि होती है । उससे आगे मध्यभाग मे दस हजार योजन विस्तार मे एक हजार योजन की गहराई है और जलवृद्धि सोलह हजार योजन प्रमाण है । पाताल-कलशगत वायु के क्षुभित होने से उनके ऊपर एक अहोरात्र मे दो बार कुछ कम दो कोस प्रमाण अतिशय रूप मे उदक की वृद्धि होती है और जब पातालकलशगत वायु उपशान्त होता है, तब वह जलवृद्धि नही होती है । यही बात इन गाथाओ मे कही है—

पंचाणउयसहस्से गोतित्थं उभयओ वि लवणस्स ।
जोयणसयाणि सत्त उदग परिवुड्ढीवि उभयो वि ।। १ ।।

दसजोयणसाहस्सा लवणसिहा चक्कवालओ रुंदा ।
सोलससहस्स उच्चा सहस्समेगं च ओगाढा ।। २ ।।

देसूणमद्धजोयण लवणसिहोवरि दुगं दुवे कालो ।
अइरेगं अइरेगं परिवड्ढइ हायए वा वि ।। ३ ।।

लवणसमुद्र की आभ्यन्तर वेला को अर्थात् जम्बूद्वीप की ओर बढ़ती हुई शिखा को और उस पर बढते हुए जल को सीमा से आगे बढने से रोकने वाले भवनपतिनिकाय के अन्तर्गत आने वाले बयालीस हजार नागकुमार देव है। इसी तरह लवणसमुद्र की बाह्य वेला अर्थात् धातकीखण्ड की ओर अभिमुख होकर बढने वाली शिखा और उसके ऊपर की अतिरेक वृद्धि को आगे बढने से रोकने वाले बहत्तर हजार नागकुमार देव हैं। लवणसमुद्र के अग्रोदक को (देशोन अर्धयोजन से ऊपर बढ़ने वाले जल को) रोकने वाले साठ हजार नागकुमार देव है। ये नागकुमार देव लवणसमुद्र की वेला को मर्यादा मे रखते हैं। इन सब वेलधर नागकुमारो की सख्या एक लाख चौहत्तर हजार है।

१५९ (अ)—कति णं भंते ! वेलंधरा णागराया पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि वेलधरा णागराया पण्णत्ता, तं जहा--गोथूभे, सिवए, संखे, मणोसिलए।

एतेसि ण भंते ! चउण्हं वेलधरणागरायाण कति आवासपव्वया पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—गोथूभे, उवगभासे, सखे, वगसीमाए।

कहि ण भंते ! गोथूभस्स वेलधरणागरायस्स गोथूभे णामं आवासपव्वए पण्णत्ते ? गोयमा ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पुरत्थिमेण लवण समुद्द बायालीस जोयणसहस्साइ ओगाहित्ता एत्थ णं गोथूभस्स वेलंधरणागरायस्स गोथूभे णामं आवासपव्वए पण्णत्ते सत्तरस एकवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि तीसे जोयणसए कोस च उव्वेण मूले दसबावीसे जोयणसए आयामविक्खंभेण, मज्झे सत्ततेवीसे जोयणसए उवरिं चत्तारि चउवीसे जोयणसए आयामविक्खंभेणं मूले तिण्णि जोयणसहस्साइ दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, मज्झे दो जोयणसहस्साइं दोण्णि य छलसीए जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेण, मूले वित्थिण्णे मज्झे सखित्ते उप्पि तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वकणगामए अच्छे जाव पडिरूवे।

से ण एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसडेण सव्वओ समंता सपरिक्खित्ते। दोण्ह वि वण्णओ।

गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव आसयति। तस्स ण बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए बावट्ठ जोयणद्धं च उड्ढं उच्चत्तेणं त चेव पमाणं अद्ध आयामविक्खंभेणं वण्णओ जाव सीहासण सपरिवार।

से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चइ गोथूभे आवासपव्वए गोथूभे आवासपव्वए ?

गोयमा ! गोथूभे ण आवासपव्वए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहुओ खुड्डाखुड्डियाओ जाव गोथूभवण्णाइं बहुइ उप्पलाइं तहेव जाव गोथूभे तत्थ देवे महिड्ढिए जाव पलिओवमट्ठईए परिवसति। से ण तत्थ चउण्ह सामाणियसाहस्सीणं जाव गोथूभयस्स आवासपव्वयस्स गोथूभाए रायहाणीए जाव विहरइ। से तेणट्ठेणं जाव णिच्चा।

रायहाणी पुच्छा ? गोयमा ! गोथूभस्स आवासपव्वयस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णम्मि लवणसमुद्दे तं चेव पमाणं तहेव सव्वं।

१५९. (अ) हे भगवन् ! वेलधर नागराज कितने कहे गये है ? गौतम ! वेलधर नागराज चार कहे गये हैं, उनके नाम हैं गोस्तूप, शिवक, शख और मन:शिलाक।

हे भगवन् ! इन चार वेलधर नागराजो के कितने आवासपर्वत कहे गये हैं ? गौतम ! चार आवासपर्वत कहे गये है। उनके नाम है—गोस्तूप, उदकभास, शख और दकसीम।

हे भगवन् ! गोस्तूप वेलधर नागराज का गोस्तूप नामक आवासपर्वत कहा है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत के पूर्व मे लवणसमुद्र मे बयालीस हजार योजन आगे जाने पर गोस्तूप वेलधर नागराज का गोस्तूप नाम का आवासपर्वत है। वह सत्रह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊँचा, चार सौ तीस योजन एक कोस पानी मे गहरा, मूल मे दस सौ बाईस (१०२२) योजन लम्बा-चौडा, बीच मे सात सौ तेईस (७२३) योजन लम्बा-चौडा और ऊपर चार सौ चौबीस (४२४) योजन लम्बा-चौडा है। उसकी परिधि मूल मे तीन हजार दो सौ बत्तीस (३२३२) योजन से कुछ कम, मध्य मे दो हजार दो सौ चौरासी (२२८४) योजन से कुछ अधिक और ऊपर एक हजार तीन सौ इकतालीस (१३४१) योजन से कुछ कम है। यह मूल मे विस्तीर्ण मध्य मे सक्षिप्त और ऊपर पतला है, गोपुच्छ के आकार से सस्थित है, सर्वात्मना कनकमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है।

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखड से चारो ओर से परिवेष्टित है। दोनो का वर्णन कहना चाहिए।

गोस्तूप आवासपर्वत के ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग कहा गया है, आदि सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् वहा बहुत से नागकुमार देव और देविया स्थित होती है। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के बहुमध्य देशभाग मे एक बडा प्रासादावतसक है जो साढे बासठ योजन ऊँचा है, सवा इकतीस योजन का लम्बा-चौडा है, आदि वर्णन विजयदेव के प्रासादावतसक के समान जानना चाहिए यावत् सपरिवार सिंहासन का कथन करना चाहिए।

हे भगवन् ! गोस्तूप आवासपर्वत, गोस्तूप आवासपर्वत क्यो कहा जाता है ?

हे गौतम ! गोस्तूप आवासपर्वत पर बहुत-सी छोटी-छोटी बावडिया आदि हैं, जिनमे गोस्तूप वर्ण के बहुत सारे उत्पल कमल आदि है यावत् वहा गोस्तूप नामक महर्द्धिक और एक पल्योपम की स्थितिवाला देव रहता है। वह गोस्तूप देव चार हजार सामानिक देवो यावत् गोस्तूप आवासपर्वत और गोस्तूपा राजधानी का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। इस कारण वह गोस्तूप आवासपर्वत कहा जाता। यावत् वह गोस्तूपा आवासपर्वत (द्रव्य से) नित्य है। अतएव उसका यह नाम अनादिकाल से चला आ रहा है।

हे भगवन् ! गोस्तूप देव की गोस्तूपा राजधानी कहा है ? हे गौतम ! गोस्तूप आवासपर्वत के पूर्व मे तिर्यक्दिशा मे असख्यात द्वीप-समुद्र पार करने के बाद अन्य लवणसमुद्र मे गोस्तूपा राजधानी है। उसका प्रमाण आदि वर्णन विजया राजधानी की तरह कहना चाहिए।

१५९ (आ) कहि णं भंते ! सिवगस्स वेलधरणागरायस्स दओभासणामे आवासपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं सिवगस्स वेलंधरणागरायस्स दओभासे णामं आवासपव्वए पण्णत्ते, तं चेव पमाणं जं गोथूभस्स, णवरि सव्वअंकामए अच्छे जाव पडिरूवे जाव अट्ठो भाणियव्वो। गोयमा ! दओभासे णं आवासपव्वए लवणसमुद्दे अट्ठजोयणियखेत्ते दगं सव्वओ समंता ओभासेइ, उज्जोवेइ, तवेइ, पभासेइ, सिवए एत्थ देवे महिड्ढिए जाव रायहाणी से दक्खिणेणं सिविगा दओभासस्स सेसं तं चेव।

कहि णं भंते ! संखस्स वेलंधरणागरायस्स संखे णामं आवासपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेण बायालीसं जोयणसहस्साइं एत्थ णं संखस्स वेलंधरणागरायस्स संखे णामं आवासपव्वए, तं चेव पमाणं, णवरं सव्वरयणामए अच्छे। से ण एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेण जाव अट्ठो बहूओ खुड्डा खुड्डियाओ जाव बहूइं उप्पलाइं संखाभाइं संखवण्णाइं। संखे एत्थ देवे महिड्ढिए जाव रायहाणीए, पच्चत्थिमेणं संखस्स आवासपव्वयस्स संखा नाम रायहाणी, त चेव पमाणं।

कहि णं भंते ! मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स उदगसीमाए णामं आवासपव्वए पण्णत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स उत्तरेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ ण मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स उदगसीमाए णामं आवासपव्वए पण्णत्ते, त चेव पमाणं। णवरि सव्वफलिहामए अच्छे जाव अट्ठो; गोयमा ! दगसीमंते णं आवासपव्वए सीतासीतोदगाण महाणदीण तत्थ गए सोए पडिहम्मइ, से तेणट्ठेणं जाव णिच्चे, मणोसिलए एत्थ देवे महिड्ढिए जाव से ण तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव विहरइ।

कहि ण भंते ! मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स मणोसिलाणाम रायहाणी ? गोयमा ! दगसीमस्स आवासपव्वयस्स उत्तरेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णम्मि लवणसमुद्दे एत्थ णं मणोसिलिया णामं रायहाणी पण्णत्ता, त चेव पमाण जाव मणोसिलए देवे।

कणगंकरयय-फालिहमया य वेलंधराणमावासा।
अणुवेलंधरराईण पव्वया होंति रयणमया॥

१५९ (आ) हे भगवन् ! शिवक वेलंधर नागराज का दकाभास नामक आवास पर्वत कहा है ? गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के दक्षिण मे लवणसमुद्र मे बयालीस हजार योजन आगे जाने पर शिवक वेलंधर नागराज का दकाभास नामका आवासपर्वत है। जो गोस्तूप आवासपर्वत का प्रमाण है, वही इसका प्रमाण है। विशेषता यह है कि यह सर्वात्मना अंकरत्नमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है। यावत् यह दकाभास क्यों कहा जाता है ? गौतम ! लवणसमुद्र मे दकाभास नामक आवासपर्वत आठ योजन के क्षेत्र में पानी को सब ओर अति विशुद्ध अंकरत्नमय होने से अपनी प्रभा से अवभासित करता है, (चन्द्र की तरह) उद्योतित करता है, (सूर्य की तरह) तापित करता है, (ग्रहों की तरह) चमकाता है तथा शिवक नाम का महर्द्धिक देव यहां रहता है, इसलिए यह दकाभास कहा जाता है। यावत् शिवका राजधानी का आधिपत्य करता हुआ विचरता है। वह शिवका राजधानी दकाभास पर्वत के दक्षिण मे अन्य लवणसमुद्र मे है, आदि कथन विजया राजधानी की तरह कहना चाहिए।

हे भगवन् ! शख नामक वेलधर नागराज का शख नामक ग्रावासपवत कहा है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पश्चिम मे बयालीस हजार योजन आगे जाने पर शख वेलधर नागराज का शख नामक ग्रावासपर्वत है। उसका प्रमाण गोस्तूप की तरह है। विशेषता यह है कि यह सर्वात्मना रत्नमय है, स्वच्छ है। वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखड से घिरा हुआ है यावत् यह शख नामक ग्रावासपर्वत क्यो कहा जाता है ? गौतम ! उस शख ग्रावासपर्वत पर छोटी छोटी बावडियां ग्रादि हैं, जिनमे बहुत से कमलादि हैं। जो शख की ग्राभावाले, शख के रगवाले हैं और शख की ग्राकृति वाले हैं तथा वहा शख नामक महर्द्धिक देव रहता है। वह शख नामक राजधानी का ग्राधिपत्य करता हुग्रा विचरता है। शंख नामक राजधानी शख ग्रावासपर्वत के पश्चिम मे है, ग्रादि विजया राजधानीवत् प्रमाण ग्रादि कहना चाहिए।

हे भगवन् ! मन शिलक वेलधर नागराज का दकसीम नामक ग्रावासपर्वत किस स्थान पर है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत की उत्तरदिशा मे लवणसमुद्र में बयालीस हजार योजन ग्रागे जाने पर मन शिलक वेलधर नागराज का दकसीम नाम का ग्रावासपर्वत है। उसका प्रमाण ग्रादि पूर्ववत् कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यह सर्वात्मना स्फटिक रत्नमय है, स्वच्छ है यावत् यह दकसीम क्यो कहा जाता है ? गौतम ! इस दकसीम ग्रावासपर्वत से शीता-शीतोदा महानदियो का प्रवाह यहा ग्राकर प्रतिहत हो जाता है— लौट जाता है। इसलिए यह उदक की सीमा करने वाला होने से "दकसीम" कहलाता है। यह शाश्वत (नित्य) है इसलिए यह नाम ग्रनिमित्तक भी है। यहा मन शिलक नाम का महर्द्धिक देव रहता है यावत् वह चार हजार सामानिक देवो ग्रादि का ग्राधिपत्य करता हुग्रा विचरता है। हे भगवन् ! मन शिलक वेलधर नागराज की मन·शिला राजधानी कहा है ? गौतम ! दकसीम ग्रावासपर्वत के उत्तर मे तिरछी दिशा मे ग्रसख्यात द्वीप-समुद्र पार करने पर ग्रन्य लवणसमुद्र मे मन.शिला नाम की राजधानी है। उसका प्रमाण ग्रादि सब वक्तव्यता विजया राजधानी के तुल्य कहना चाहिए यावत् वहा मन शिलक नामक देव महर्द्धिक और एक पल्योपम की स्थिति वाला रहता है। वेलधर नागराजो के ग्रावासपर्वत क्रमश· कनकमय, अकरत्नमय, रजतमय और स्फटिकमय है। ग्रनुवेलधर नागराजो के पर्वत रत्नमय ही है।

१६० कहि ण भंते ! अणुवेलधरणागरायाओ पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि अणुवेलंधर-णागरायाओ पण्णत्ता, त जहा—कक्कोडए, कद्दमए, केलासे, ग्ररुणप्पभे।

एतेसि भते ! चउण्हं अणुवेलंधरणागरायाणं कति आवासपव्वया पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता, त जहा—कक्कोडए, कद्दमए, केलासे, अरुणप्पभे।

कहि णं भंते ! कक्कोडगस्स अणुवेलंधरणागरायस्स कक्कोडए णामं ग्रावासपव्वए पण्णत्ते ? गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ग्रोगाहित्ता एत्थ ण कक्कोडगस्स नागरायस्स कक्कोडए णाम ग्रावासपव्वए पण्णत्ते, सत्तरस-इक्कवीसाइं जोयणसयाइं तं चेव पमाणं जं गोथूभस्स णवरि सव्वरयणामए ग्रच्छे जाव निरवसेस जाव सपरिवारं; अट्ठो से बहूइं उप्पलाइं कक्कोडगप्पभाइं सेसं तं चेव णवरि कक्कोडगपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं, एवं तं चेव सव्वं।

कद्दमस्स वि सो चेव गमो अपरिसेसिओ, णवरि दाहिणपुरत्थिमेणं आवासो विज्जुप्पभा रायहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं।

कइलासे वि एवं चेव णवरि दाहिणपच्चत्थिमेणं केलासा वि रायहाणी तए चेव दिसाए।

अरुणप्पभे वि उत्तरपच्चत्थिमेणं रायहाणी वि ताए चेव दिसाए। चत्तारि वि एगप्पमाणा सव्वरयणामया य।

१६० हे भगवन्! अनुवेलधर नागराज (वेलधरो की आज्ञा मे चलने वाले) कितने हैं? गौतम! अनुवेलधर नागराज चार हैं, उनके नाम है—कर्कोटक, कर्दम, कैलाश और अरुणप्रभ।

हे भगवन्! इन चार अनुवेलधर नागराजो के कितने आवासपर्वत हैं? गौतम! चार आवासपर्वत है, यथा—कर्कोटक, कर्दम, कैलाश और अरुणप्रभ।

हे भगवन्! कर्कोटक अनुवेलधर नागराज का कर्कोटक नाम का आवासपर्वत कहा है?

गौतम! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के उत्तर-पूर्व मे (ईशानकोण मे) लवणसमुद्र में बयालीस हजार योजन आगे जाने पर कर्कोटक नागराज का कर्कोटक नामक आवासपर्वत है जो सत्रह सौ इकवीस (१७२१) योजन ऊचा है आदि वही प्रमाण कहना चाहिए जो गोस्तूप पर्वत का है। विशेषता यह है कि यह सर्वात्मना रत्नमय है, स्वच्छ है यावत् सपरिवार सिंहासन तक सब वक्तव्यता पूर्ववत् जानना चाहिए। कर्कोटक नाम देने का कारण यह है कि यहा की बावड़ियो आदि मे जो उत्पल कमल आदि है, वे कर्कोटक के आकार-प्रकार और वर्ण के हैं। शेष पूर्ववत् कहना चाहिए। यावत् उसकी राजधानी कर्कोटक पर्वत के उत्तर-पूर्व मे तिरछे असख्यात द्वीप-समुद्र पार करने पर अन्य लवणसमुद्र मे है। प्रमाण आदि सब पूर्ववत् है।

१ कर्दम नामक[1] आवासपर्वत के विषय मे भी पूरा वर्णन पूर्ववत् है। विशेषता यह है कि मेरुपर्वत के दक्षिण-पूर्व (आग्नेयकोण) मे लवणसमुद्र मे बयालीस हजार योजन जाने पर यह कर्दम-पर्वत स्थित है। विद्युत्प्रभा इसकी राजधानी है जो इस आवासपर्वत से दक्षिण-पूर्व (आग्नेयकोण) मे असख्यात द्वीप-समुद्र पार करने पर अन्य लवणसमुद्र मे है, आदि वर्णन पूर्वोक्त विजया राजधानी की तरह जानना चाहिए।

कैलाश नामक आवासपर्वत के विषय मे पूरा वर्णन पूर्ववत् है। विशेषता यह है कि यह मेरु से दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्यकोण) मे है। इसकी राजधानी कैलाशा है और वह कैलाशपर्वत के दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्यकोण) मे असख्यात द्वीप-समुद्र पार करने पर अन्य लवणसमुद्र मे है।

अरुणप्रभ नामक आवासपर्वत मेरुपर्वत के उत्तर-पश्चिम (वायव्यकोण) मे है। राजधानी भी अरुणप्रभ आवासपर्वत के वायव्यकोण मे असख्य द्वीप-समुद्रो के बाद अन्य लवणसमुद्र मे है। शेष सब वर्णन विजया राजधानी की तरह है। ये चारो आवासपर्वत एक ही प्रमाण के है और सर्वात्मना रत्नमय हैं।

---

१ कर्दम आवासपर्वत का देव स्वभावतः यक्षकर्दमप्रिय है। यक्षकर्दम का अर्थ है—कुकुम, अगुरु, कपूर, कस्तूरी, चन्दन आदि के मिश्रण से जो सुगन्धित द्रव्य निर्मित होता है, वह यक्षकर्दम है। पूर्वपद का लोप होने से कर्दम कहा गया है।

गौतमद्वीप का वर्णन

१६१. कहि णं भंते ! सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे णामं दीवे पण्णत्ते ? गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, बारस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेण सत्ततीस जोयणसहस्साइं नव य अडयाले जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं जंबूदीवंतेणं अद्धेकोणणउए जोयणाइं चत्तालीसं पंचणउइभागे जोयणस्स ऊसिए जलताओ, लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिए जलंताओ ।

से णं एगाए य पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता तहेव वण्णओ दोण्ह वि। गोयमदीवस्स णं अंतो जाव बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव आसयंति। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ ण सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स एगे महं अइक्कीलावासे णामे भोमेज्जविहारे पण्णत्ते बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं य उड्ढं उच्चत्तेणं, एकत्तीस जोयणाइं कोस च विक्खंभेणं अणेगखंभसयसन्निविट्ठे भवणवण्णओ भाणियव्वो।

अइक्कीलावासस्स णं भोमेज्जविहारस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीण फासो। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ एगा मणिपेढिया पण्णत्ता। सा णं मणिपेढिया दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेण सव्वमणिमई अच्छा जाव पडिरूवा। तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ ण देवसयणिज्जे पण्णत्ते, वण्णओ।

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ—गोयमदीवे गोयमदीवे ? तत्थ-तत्थ तहिं-तहिं बहूइं उप्पलाइं जाव गोयमप्पभाइं से एएणट्ठेणं गोयमा ! जाव णिच्चे।

कहि णं भंते ! सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स सुट्ठियाणामं रायहाणी पण्णत्ता ? गोयमा ! गोयमदीवस्स पच्चत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे जाव अण्णम्मि लवणसमुद्दे, बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एवं तहेव सव्व णेयव्व जाव सुट्ठिए देवे।

१६१ हे भगवन् ! लवणाधिपति सुस्थित देव का गौतमद्वीप कहा है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पश्चिम मे लवणसमुद्र मे बारह हजार योजन जाने पर लवणाधिपति सुस्थित देव का गौतमद्वीप नाम का द्वीप है। वह गौतमद्वीप बारह हजार योजन लम्बा-चौडा और सैंतीस हजार नौ सौ अडतालीस (३७९४८) योजन से कुछ कम परिधि वाला है। यह जम्बूद्वीपान्त की दिशा मे साढे अठयासी (८८½) योजन और $\frac{40}{95}$ योजन जलान्त से ऊपर उठा हुआ है तथा लवणसमुद्र की ओर जलान्त से दो कोस ऊपर उठा हुआ है।

यह गौतमद्वीप एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है। यहा दोनों का वर्णनक कहना चाहिए। गौतमद्वीप के अन्दर यावत् बहुसमरमणीय भूमिभाग है। उसका भूमिभाग मुरज के मढे हुए चमडे की तरह समतल है, आदि सब वर्णन कहना चाहिए यावत् वहा बहुत से वाणव्यन्तर देव-देविया उठती-बैठती है, आदि उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्यभाग

में लवणाधिपति सुस्थित देव का एक विशाल अतिक्रीडावास नाम का भौमेय विहार है जो साढे बासठ योजन ऊंचा और सवा इकतीस योजन चौडा है, अनेक सौ स्तम्भो पर सन्निविष्ट है, आदि भवन का वर्णनक कहना चाहिए।

उस अतिक्रीडावास नामक भौमेय विहार मे बहुसमरमणीय भूमिभाग है, आदि वर्णन करना चाहिए यावत् मणियो का स्पर्श, उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य में एक मणिपीठिका है। वह मणिपीठिका दो योजन लम्बी-चौडी, एक योजन मोटी और सर्वात्मना मणिमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक देवशयनीय है। उसका पूर्ववत् वर्णन जानना चाहिए।

हे भगवन्! गौतमद्वीप, गौतमद्वीप क्यो कहलाता है?

गौतम! गौतमद्वीप मे यहा-वहा बहुत से उत्पल कमल आदि हैं जो गौतम (गोमेदरत्न) की आकृति और आभा वाले हैं, इसलिए गौतमद्वीप कहलाता है। यह गौतमद्वीप द्रव्यापेक्षया शाश्वत है। अत इसका नाम भी शाश्वत होने से अनिमित्तक है।[1]

हे भगवन्! लवणाधिपति सुस्थित देव की सुस्थिता नाम की राजधानी कहा है?

गौतम! गौतमद्वीप के पश्चिम मे तिरछे असख्य द्वीप-समुद्रो को पार करने के बाद अन्य लवणसमुद्र मे सुस्थिता राजधानी है, जो अन्य लवणसमुद्र मे बारह हजार योजन आगे जाने पर आती है, इत्यादि सब वक्तव्यता गोस्तूप राजधानीवत् जाननी चाहिए यावत् वहा सुस्थित नाम का महर्द्धिक देव है।

जम्बूद्वीपगत चन्द्रद्वीपों का वर्णन

१६२ कहि ण भंते! जबुद्दीवगाण चदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जबुद्दीवगाण चदाण चददीवा णामं दीवा पण्णत्ता, जबुद्दीवंतेणं अद्धेकोणणउइ जोयणाइं चत्तालीसं पचाणउइं भागे जोयणस्स ऊसिया जलताओ, लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिया जलंताओ, बारसजोयणसहस्साइ आयामविक्खभेणं सेस तं चेव जहा गोयमदीवस्स परिक्खेवो। पउम-वरवेइया पत्तेयं-पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता, दोण्हवि वण्णओ, बहुसमरमणिज्जभूमिभागा जाव जोइसिया देवा आसयंति।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पासायवडेंसगा बावट्ठिं जोयणाइ बहुमज्झदेसभागे मणि-पेढियाओ दो जोयणाइं जाव सीहासणा सपरिवारा भाणियव्वा तहेव अट्ठो; गोयमा! बहुसु खुड्डासु खुड्डियासु बहूइं उप्पलाइं चंदवण्णाभाइं चंदा एत्थ देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितिया परिवसति।

ते णं तत्थ पत्तेय पत्तेयं चउण्हं सामाणियसाहस्सीण जाव चंददीवाणं चंदाण य रायहाणीणं

---

१. वृत्तिकार के अनुसार गौतमद्वीप नाम का कारण शाश्वत होने से अनिमित्तक है। वृत्तिकार पुस्तकान्तर का उल्लेख करते हुए "गोयमदीवे ण दीवे तत्थ-तत्थ तहि तहिं बहूइ उप्पलाइ जाव सहस्सपत्ताइ गोयमपभाइ गोयमवण्णाइ गोयमवण्णाभाइ" इस पाठ का होना मानते हैं।

अन्नेसिं य बहूणं जोइसियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरंति । से तेणट्ठेणं गोयमा ! चंदद्दीवा जाव णिच्चा ।

कहि णं भंते ! जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंदाओ नाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! चंदद्दीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियं जाव अण्णम्मि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तं चेव पमाणं जाव महिड्ढिया चंदा देवा ।

कहि णं भंते ! जंबुद्दीवगाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तं चेव उच्चत्तं आयामविक्खंभेणं परिक्खेवो वेदिया, वनसंडो, भूमिभागा जाव आसयंति, पासायवडेंसगाण तं चेव पमाणं मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा अट्ठो उप्पलाइं सूरप्पभाइं सूरा एत्थ देवा जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णम्मि जंबुद्दीवे दीवे सेसं तं चेव जाव सूरा देवा ।

१६२ हे भगवन् ! जम्बूद्वीपगत दो चन्द्रमाओ के दो चन्द्रद्वीप कहा पर हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पूर्व मे लवणसमुद्र मे बारह हजार योजन आगे जाने पर वहा जम्बूद्वीपगत दो चन्द्रों के दो चन्द्रद्वीप कहे गये है । ये द्वीप जम्बूद्वीप की दिशा मे साढे अठासी (८८$\frac{1}{2}$) योजन और $\frac{40}{95}$ योजन पानी से ऊपर उठे हुए है और लवणसमुद्र की दिशा मे दो कोस पानी से ऊपर उठे हुए हैं । ये बारह हजार योजन लम्बे-चौडे हैं, शेष परिधि आदि सब वक्तव्यता गौतमद्वीप की तरह जाननी चाहिए । ये प्रत्येक पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से परिवेष्ठित है । दोनो का वर्णनक कहना चाहिए । उन द्वीपो मे बहुसमरमणीय भूमिभाग कहे गये है यावत् वहा बहुत से ज्योतिष्क देव उठते-बैठते हैं । उन बहुसमरमणीय भागो मे प्रासादावतसक है, जो साढे बासठ योजन ऊँचे हैं, आदि वर्णन गौतमद्वीप की तरह जानना चाहिए । मध्यभाग मे दो योजन की लम्बी-चौडी, एक योजन मोटी मणिपीठिकाए हैं, इत्यादि सपरिवार सिंहासन पर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! ये चन्द्रद्वीप क्यो कहलाते हैं ?

हे गौतम ! उन द्वीपो की बहुत-सी छोटी-छोटी बावडियो आदि मे बहुत से उत्पलादि कमल है, जो चन्द्रमा के समान आकृति और आभा (वर्ण) वाले है और वहा चन्द्र नामक महर्द्धिक देव, जो पल्योपम की स्थिति वाले हैं, रहते हैं । वे वहा अलग-अलग चार हजार सामानिक देवो यावत् चन्द्रद्वीपो और चन्द्रा राजधानियो और अन्य बहुत से ज्योतिष्क देवो और देवियो का आधिपत्य करते हुए अपने पुण्य-कर्मों का विपाकानुभव करते हुए विचरते है । इस कारण हे गौतम ! वे चन्द्रद्वीप कहलाते है । हे गौतम ! वे चन्द्रद्वीप द्रव्यापेक्षया नित्य हैं अतएव उनके नाम भी शाश्वत है ।

हे भगवन् ! जम्बूद्वीप के चन्द्रो की चन्द्रा नामक राजधानिया कहां हैं ? गौतम ! चन्द्रद्वीपों के पूर्व मे तिर्यक् असख्य द्वीप-समुद्रो को पार करने पर अन्य जम्बूद्वीप मे बारह हजार योजन आगे जाने पर वहा ये राजधानिया हैं । उनका प्रमाण आदि पूर्वोक्त गौतमादि राजधानियो की तरह जानना चाहिए यावत् वहा चन्द्र नामक महर्द्धिक देव हैं ।

हे भगवन् ! जम्बूद्वीप के दो सूर्यों के दो सूर्यद्वीप कहा हैं ? गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पश्चिम में लवणसमुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर जम्बूद्वीप के दो सूर्यों के दो सूर्यद्वीप हैं। उनका उच्चत्व, आयाम-विष्कंभ, परिधि, वेदिका, वनखण्ड, भूमिभाग, वहा देव-देवियों का बैठना-उठना, प्रासादावतंसक, उनका प्रमाण, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन आदि चन्द्रद्वीप की तरह कहना चाहिए।

हे भगवन् ! सूर्यद्वीप, सूर्यद्वीप क्यो कहलाते हैं ? हे गौतम ! उन द्वीपो की बावडियो आदि मे सूर्य के समान वर्ण और आकृति वाले बहुत सारे उत्पल आदि कमल हैं, इसलिए वे सूर्यद्वीप कहलाते हैं। ये सूर्यद्वीप द्रव्यपेक्षया नित्य हैं। अतएव इनका नाम भी शाश्वत है। इनमे सूर्य देव, सामानिक देव आदि का यावत् ज्योतिष्क देव-देवियो का आधिपत्य करते हुए विचरते हैं यावत् इनकी राजधानिया अपने-अपने द्वीपो से पश्चिम मे असख्यात द्वीप-समुद्रो को पार करने के बाद अन्य जम्बूद्वीप मे बारह हजार योजन आगे जाने पर स्थित है। उनका प्रमाण आदि पूर्वोक्त चन्द्रादि राजधानियों की तरह जानना चाहिए यावत् वहा सूर्य नामक महर्द्धिक देव हैं।

१६३ कहि णं भंते ! अब्भितरलावणगाण चदाणं चंददीवा णाम दीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ ण अब्भिंतरलावणगाणं चदाणं चंददीवा णाम दीवा पण्णत्ता। जहा जम्बुद्दीवगा चंदा तहा भाणियव्वा, णवरि रायहाणीओ अण्णंमि लवणे सेसं तं चेव। एव अब्भितरलावणगाणं सूराणवि लवणसमुद्द बारस जोयणसहस्साइं तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ।

कहि णं भंते ! बाहिरलावणगाण चदाण चंददीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेवियंताओ लवणसमुद्द पच्चत्थिमेणं बारस जोयण-सहस्साइ ओगाहित्ता एत्थ णं बाहिरलावणगाणं चंददीवा णाम दीवा पण्णत्ता, धायइसडदीवंतेणं अद्धेकोणणवतिजोयणाइ चत्तालीस च पचणउतिभागे जोयणस्स ऊसिया जलताओ, लवणसमुद्दतेणं दो कोसे ऊसिया बारस जोयणसहस्साइ आयाम-विक्खभेणं पउमवरवेइया वनसडा बहुसमरमणिज्जा भूमि-भागा मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा सो चेव अट्ठो रायहाणीओ सगाणं दीवाण पुरत्थिमेणं तिरियमसखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णंमि लवणसमुद्दे तहेव सव्वं।

कहि णं भंते ! बाहिरलावणगाण सूराण सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! लवणसमुद्दपच्चत्थिमिल्लाओ वेदियताओ लवणसमुद्दं पुरत्थिमेण बारस जोयण-सहस्साइं धायइसंडदीवंतेणं अद्धेकोणणउइं जोयणाइ चत्तालीस च पचणउइभागे जोयणस्स दो कोसे ऊसिया सेस तहेव जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं तिरियमसखेज्जे लवणे चेव बारस जोयणा तहेव सव्वं भाणियव्वं।

१६३. हे भगवन् ! लवणसमुद्र मे रहकर जम्बूद्वीप की दिशा मे शिखा से पहले विचरने वाले (आभ्यन्तर लावणिक) चन्द्रो के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप कहा हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पूर्व मे लवणसमुद्र मे बारह हजार योजन जाने पर आभ्यन्तर लावणिक चन्द्रो के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप हैं। जैसे जम्बूद्वीप के चन्द्रद्वीपो का वर्णन किया, वैसा इनका भी कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि इनकी राजधानिया अन्य लवणसमुद्र मे हैं, शेष पूर्ववत् कहना चाहिए।

इसी तरह आभ्यन्तर लावणिक सूर्यों के सूर्यद्वीप लवणसमुद्र मे बारह हजार योजन जाने पर वहा स्थित हैं, आदि सब वर्णन राजधानी पर्यन्त चन्द्रद्वीपो के समान जानना चाहिए।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र मे रह कर शिखा से बाहर विचरण करने वाले बाह्य लावणिक चन्द्रो के चन्द्रद्वीप कहा है ?

गौतम ! लवणसमुद्र की पूर्वीय वेदिकान्त से लवणसमुद्र के पश्चिम मे बारह हजार योजन जाने पर बाह्य लावणिक चन्द्रो के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप है, जो धातकीखण्डद्वीपान्त की तरफ साढे अठ्यासी योजन और $\frac{४०}{९५}$ योजन जलात से ऊपर हैं और लवणसमुद्रान्त की तरफ जलात से दो कोस ऊँचे हैं। ये बारह हजार योजन के लम्बे-चौडे, पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, बहुसमरमणीय भूमिभाग, मणिपीठिका, सपरिवार सिहासन, नाम का प्रयोजन, राजधानिया जो अपने-अपने द्वीप के पूर्व मे तिर्यक् असख्यात द्वीप-समुद्रो को पार करने पर अन्य लवणसमुद्र मे है, आदि सब कथन पूर्ववत जानना चाहिए।

हे भगवन् ! बाह्य लावणिक सूर्यों के सूर्यद्वीप नाम के द्वीप कहा है ?

गौतम ! लवणसमुद्र की पश्चिमी वेदिकान्त से लवणसमुद्र के पूर्व मे बारह हजार योजन जाने पर बाह्य लावणिक सूर्यों के सूर्यद्वीप नामक द्वीप है, जो धातकीखण्ड द्वीपात की तरफ साढे अठ्यासी योजन और $\frac{४०}{९५}$ योजन जलात से ऊपर है और लवणसमुद्र की तरफ जलात से दो कोस ऊँचे हैं। शेष सब वक्तव्यता राजधानी पर्यन्त पूर्ववत् कहनी चाहिए। ये राजधानिया अपने-अपने द्वीपो से पश्चिम मे तिर्यक् असख्यात द्वीप-समुद्र पार करने के बाद अन्य लवणसमुद्र मे बारह हजार योजन के बाद स्थित है, आदि सब कथन करना चाहिए।

धातकीखंडद्वीपगत चन्द्रद्वीपों का वर्णन

१६४. कहि ण भंते ! धायइसंडदीवगाण चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! धायइसडस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियताओ कालोय ण समुद्द बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं धायइसडदीवाणं चंदाणं णाम दीवा पण्णत्ता, सव्वओ समंता दो कोसा ऊसिया जलंताओ बारस जोयणसहस्साइ तहेव विक्खभ-परिक्खेवो भूमिभागो पासायवडिसगा मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा अट्ठो तहेव रायहाणीओ, सकाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं अण्णंमि धायइसंडे दीवे सेसं त चेव।

एवं सूरदीवावि। नवर धायइसंडस्स दीवस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयं णं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइ तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ सूराणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णमि धायइसंडे दीवे सव्वं तहेव।

१६४ हे भगवन्! धातकीखण्डद्वीप के चन्द्रो के चन्द्रद्वीप कहा है।

गौतम! धातकीखण्डद्वीप की पूर्वी वेदिकान्त से कालोदधिसमुद्र मे बारह हजार योजन आगे जाने पर धातकीखण्ड के चन्द्रो के चन्द्रद्वीप हैं। (धातकीखण्ड मे १२ चन्द्र हैं।) वे सब ओर से जलात से दो कोस ऊँचे हैं। ये बारह हजार योजन के लम्बे-चौडे हैं। इनकी परिधि, भूमिभाग, प्रासादावतसक, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन, नाम-प्रयोजन, राजधानिया आदि पूर्ववत् जानना चाहिए। वे राजधानिया अपने-अपने द्वीपो से पूर्वदिशा मे अन्य धातकीखण्डद्वीप में है। शेष सब पूर्ववत्।

इसी प्रकार धातकीखण्ड के सूर्यद्वीपो के विषय मे भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि धातकीखण्डद्वीप की पश्चिमी वेदिकान्त से कालोदधिसमुद्र मे बारह हजार योजन जाने पर ये द्वीप आते है। इन सूर्यों की राजधानिया सूर्यद्वीपो के पश्चिम मे असख्य द्वीपसमुद्रो के बाद अन्य धातकीखण्डद्वीप मे है, आदि सब वक्तव्यता पूर्ववत् जाननी चाहिए।

कालोदधिसमुद्रगत चन्द्रद्वीपों का वर्णन

१६५ कहि ण भते! कालोयगाणं चदाणं चंददीवा पण्णत्ता?

गोयमा! कालोयसमुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियताओ कालोयसमुद्द पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइ ओगाहित्ता, एत्थ ण कालोयगचदाणं चददीवा पण्णत्ता सव्वओ समता दो कोसा ऊसिया जलताओ, सेस तहेव जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरच्छिमेण अण्णमि कालोयगसमुद्दे बारस जोयण-सहस्साइ तं चेव सव्व जाव चदा देवा देवा।

एव सूराणवि। णवर कालोयगपच्चत्थिमिल्लाओ वेदियताओ कालोयसमुद्दपुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तहेव रायहाणीओ सगाण दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णमि कालोयगसमुद्दे तहेव सव्वं।

एव पुक्खरवरगाण चदाण पुक्खरवरस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियताओ पुक्खरसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता चंददीवा अण्णम्मि पुक्खररे दीवे रायहाणीओ तहेव।

एवं सूराणवि दीवा पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पुक्खरोदं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ दीविल्लगाण दीवे समुद्दगाण समुद्दे चेव एगाणं अब्भितरपासे एगाण बाहिरपासे रायहाणीओ दीविल्लगाण दीवेसु समुद्दगाण समुद्देसु सरिणामएसु।

१६५ हे भगवन्! कालोदधिसमुद्रगत चन्द्रो के चन्द्रद्वीप कहा है? हे गौतम! कालोदधि-समुद्र के पूर्वीय वेदिकात से कालोदधिसमुद्र के पश्चिम मे बारह हजार योजन आगे जाने पर कालोदधिसमुद्र के चन्द्रो के चन्द्रद्वीप हैं। ये सब ओर से जलात से दो कोस ऊचे है। शेष सब पूर्ववत् कहना चाहिए यावत् राजधानिया अपने-अपने द्वीप के पूर्व मे असख्य द्वीप-समुद्रो के बाद अन्य कालो-दधिसमुद्र मे बारह हजार योजन जाने पर आती हैं, आदि सब पूर्ववत् यावत् वहा चन्द्रदेव हैं।

इसी प्रकार कालोदधिसमुद्र के सूर्यद्वीपो के सबध में भी जानना चाहिए। विशेषता यह है कि कालोदधिसमुद्र के पश्चिमी वेदिकान्त से और कालोदधिसमुद्र के पूर्व मे बारह हजार योजन आगे जाने पर ये आते हैं। इसी तरह पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् इनकी राजधानिया अपने-अपने द्वीपो के पश्चिम मे अन्य कालोदधि मे हैं, आदि सब पूर्ववत् कहना चाहिए। इसी प्रकार पुष्करवरद्वीप के पूर्वी वेदिकान्त से पुष्करवरसमुद्र मे बारह हजार योजन आगे जाने पर चन्द्रद्वीप हैं, इत्यादि पूर्ववत्। अन्य पुष्करवरद्वीप मे उनकी राजधानिया हैं। राजधानियो के सम्बन्ध मे सब पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी तरह से पुष्करवरद्वीपगत सूर्यों के सूर्यद्वीप पुष्करवरद्वीप के पश्चिमी वेदिकान्त से पुष्करवरसमुद्र मे बारह हजार योजन आगे जाने पर स्थित हैं, आदि पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् राजधानिया अपने द्वीपो की पश्चिमदिशा मे तिर्यक् असख्यात द्वीप-समुद्रो को लाघने के बाद अन्य पुष्करवरद्वीप मे बारह हजार योजन की दूरी पर हैं। पुष्करवरसमुद्रगत सूर्यों के सूर्यद्वीप पुष्करवर-समुद्र के पूर्वी वेदिकान्त से पश्चिमदिशा मे बारह हजार योजन आगे जाने पर स्थित है। राजधानिया अपने द्वीपो की पूर्वदिशा मे तिर्यक् असख्यात द्वीप-समुद्रो का उल्लघन करने पर अन्य पुष्करवर-समुद्र मे बारह हजार योजन से परे है।

इसी प्रकार शेष द्वीपगत चन्द्रो की राजधानिया चन्द्रद्वीपगत पूर्वदिशा की वेदिकान्त से अनन्तर समुद्र मे बारह हजार योजन जाने पर कहनी चाहिए। शेष द्वीपगत सूर्यों के सूर्यद्वीप अपने द्वीपगत पश्चिम वेदिकान्त से अनन्तर समुद्र मे हैं, चन्द्रो की राजधानिया अपने-अपने चन्द्रद्वीपो से पूर्वदिशा मे अन्य अपने-अपने नाम वाले द्वीप मे है, सूर्यों की राजधानिया अपने-अपने सूर्यद्वीपो से पश्चिमदिशा मे अन्य अपने सदृश नाम वाले द्वीप मे बारह हजार योजन के बाद हैं।

शेष समुद्रगत चन्द्रो के चन्द्रद्वीप अपने-अपने समुद्र के पूर्व वेदिकान्त से पश्चिमदिशा मे बारह हजार योजन के बाद हैं। सूर्यों के सूर्यद्वीप अपने-अपने समुद्र के पश्चिमी वेदिकात से पूर्वदिशा मे बारह हजार योजन के बाद हैं। चन्द्रो की राजधानिया अपने-अपने द्वीपो की पूर्वदिशा मे अन्य अपने जैसे नाम वाले समुद्रो मे है। सूर्यों की राजधानिया अपने-अपने द्वीपो की पश्चिमदिशा मे है।

१६६. इमे णामा अणुगंतव्वा[1]—

जंबुद्दीवे लवणे धायइ-कालोद-पुक्खरे वरुणे।
खीर-घय-इक्खु (वरो य) णंदी अरुणवरे कुंडले रुयगे ॥१॥
आभरण-वत्थ-गंधे उप्पल-तिलए य पुढवि-णिहि-रयणे।
वासहर-दह-नईओ विजयावक्खार-कप्पिंदा ॥२॥
पुर-मंदरमावासा कूडा णक्खत्त-चंद-सूरा य। एवं भाणियव्वं।

१६६ असख्यात द्वीप और समुद्रो मे से कितनेक द्वीपो और समुद्रो के नाम इस प्रकार है—

जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्डद्वीप, कालोदसमुद्र, पुष्करवरद्वीप, पुष्करवरसमुद्र, वारुणिवरद्वीप, वारुणिवरसमुद्र, क्षीरवरद्वीप, क्षीरवरसमुद्र, घृतवरद्वीप, घृतवरसमुद्र, इक्षुवरद्वीप,

१ वृत्ति में इस सूत्र की व्याख्या नही है, न इस सूत्र का उल्लेख ही है।

इक्षुवरसमुद्र, नदीश्वरद्वीप, नन्दीश्वरसमुद्र, अरुणवरद्वीप, अरुणवरसमुद्र, कुण्डलद्वीप, कुण्डलसमुद्र, रुचकद्वीप, रुचकसमुद्र, आभरणद्वीप, आभरणसमुद्र, वस्त्रद्वीप, वस्त्रसमुद्र, गन्धद्वीप, गन्धसमुद्र, उत्पलद्वीप, उत्पलसमुद्र, तिलकद्वीप, तिलकसमुद्र, पृथ्वीद्वीप, पृथ्वीसमुद्र, निधिद्वीप, निधिसमुद्र, रत्नद्वीप, रत्नसमुद्र, वर्षधरद्वीप, वर्षधरसमुद्र, द्रहद्वीप, द्रहसमुद्र, नदीद्वीप, नदीसमुद्र, विजयद्वीप, विजयसमुद्र, वक्षस्कारद्वीप, वक्षस्कारसमुद्र, कपिद्वीप, कपिसमुद्र, इन्द्रद्वीप, इन्द्रसमुद्र, पुरद्वीप, पुरसमुद्र, मन्दरद्वीप, मन्दरसमुद्र, आवासद्वीप, आवाससमुद्र, कूटद्वीप, कूटसमुद्र, नक्षत्रद्वीप, नक्षत्रसमुद्र, चन्द्रद्वीप, चन्द्रसमुद्र, सूर्यद्वीप, सूर्यसमुद्र, इत्यादि अनेक नाम वाले द्वीप और समुद्र हैं।

देवद्वीपादि में विशेषता

१६७ (अ) कहि णं भंते ! देवद्दीवगाण चंदाण चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ? गोयमा ! देवदीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ देवोदं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तेणेव कमेण जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाण पुरत्थिमेण देवद्दीवं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ ण देवदीवयाण चंदाण चंदाओ णाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ। सेस तं चेव। देवदीवा चंदादीवा एवं सूराण वि। णवर पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पच्चत्थिमेण च भाणियव्वा, तम्मि चेव समुद्दे।

कहि णं भंते ! देवसमुद्दगाणं चंदाण चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता ? गोयमा ! देवोदगस्स समुद्दगस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ देवोदगं समुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं तेणेव कमेणं जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं देवोदगं समुद्दं असंखेजाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ ण देवोदगाणं चंदाणं चंदाओ णाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ। तं चेव सव्वं। एवं सूराणवि। णवरि देवोदगस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ देवोदगसमुद्दं पुरत्थिमेण बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता रायहाणीओ सगाणं सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं देवोदगं समुद्दे असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता। एवं णागे जक्खे भूएवि चउण्हं दीव-समुद्दाणं।

१६७ (अ) हे भगवन् ! देवद्वीपगत चन्द्रो के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप कहा है ? गौतम ! देवद्वीप की पूर्वदिशा के वेदिकान्त से देवोदसमुद्र मे बारह हजार योजन आगे जाने पर वहा देवद्वीप के चन्द्रो के चन्द्रद्वीप हैं, इत्यादि पूर्ववत् राजधानी पर्यन्त कहना चाहिए। अपने ही चन्द्रद्वीपो की पश्चिमदिशा मे उसी देवद्वीप मे असख्यात हजार योजन जाने पर वहा देवद्वीप के चन्द्रो की चन्द्रा नामक राजधानिया है। शेष वर्णन विजया राजधानीवत् कहना चाहिए।

हे भगवन् ! देवद्वीप के सूर्यों के सूर्यद्वीप नामक द्वीप कहा है ? गौतम ! देवद्वीप के पश्चिमी वेदिकान्त से देवोदसमुद्र मे बारह हजार योजन जाने पर देवद्वीप के सूर्यों के सूर्यद्वीप है। अपने-अपने ही सूर्यद्वीपो की पूर्वदिशा मे उसी देवद्वीप मे असंख्यात हजार योजन जाने पर उनकी राजधानिया हैं।

हे भगवन् ! देवसमुद्रगत चन्द्रो के चन्द्रद्वीप नामक द्वीप कहा हैं ? गौतम ! देवोदकसमुद्र के पूर्वी वेदिकान्त से देवोदकसमुद्र मे पश्चिमदिशा मे बारह हजार योजन जाने पर यहा देवसमुद्रगत चन्द्रो के चन्द्रद्वीप हैं, आदि क्रम से राजधानी पर्यन्त कहना चाहिए। उनकी राजधानिया अपने-अपने

द्वीपो के पश्चिम में देवोदकसमुद्र मे असख्यात हजार योजन जाने पर स्थित है। शेष वर्णन विजया राजधानी के समान कहना चाहिए।

देवसमुद्रगत सूर्यों के विषय मे भी ऐसा ही कहना चाहिए। विशेषता यह है कि देवोदक-समुद्र के पश्चिमी वेदिकान्त से देवोदक समुद्र मे पूर्वदिशा मे बारह हजार योजन जाने पर ये स्थित हैं। इनकी राजधानिया अपने-अपने द्वीपो के पूर्व मे देवोदकसमुद्र मे असख्यात हजार योजन आगे जाने पर आती हैं। इसी प्रकार नाग, यक्ष, भूत और स्वयभूरमण चारो द्वीपो और चारो समुद्रो के चन्द्र-सूर्यों के द्वीपों के विषय मे कहना चाहिए।

स्वयंभूरमणद्वीपगत चन्द्र-सूर्यद्वीप

१६७ (आ) कहि णं भंते ! सयंभूरमणदीवगाण चंदाण चंदवीवा णाम दीवा पण्णत्ता ? सयंभूरमणस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ सयभूरमणोदग समुद्द बारस जोयणसहस्साइं तहेव रायहाणीओ सगाण सगाणं दीवाण पुरत्थिमेणं संयभूरमणोदगं समुद्द पुरत्थिमेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तं चेव। एवं सूराणवि। सयभूरमणस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियताओ रायहाणीओ सगाणं सगाण दीवाणं पच्चत्थिमिल्लाणं सयभूरमणोद समुद्दं असखेज्जाइं जोयणसहस्साइ ओगाहित्ता सेसं त चेव।

कहि ण भते ! सयंभूरमणसमुद्दगाणं चंदाणं चंदवीवा णामं दीवा पण्णत्ता ? सयभूरमणस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयताओ सयभूरमणसमुद्द पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, सेस त चेव। एवं सूराणवि। सयंभूरमणस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ सयंभूरमणोद समुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेण सयंभूरमणं समुद्दं असखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ ण सयभूरमणसमुद्दगाणं सूराण जाव सूरा देवा।

१६७ (आ) हे भगवन् ! स्वयभूरमणद्वीपगत चन्द्रो के चन्द्रद्वीप नाम द्वीप कहा हैं ? गौतम ! स्वयभूरमणद्वीप के पूर्वीय वेदिकान्त से स्वयभूरमणसमुद्र मे बारह हजार योजन आगे जाने पर वहा स्वयभूरमणद्वीपगत चन्द्रो के चन्द्रद्वीप हैं। उनकी राजधानिया अपने-अपने द्वीपो के पूर्व मे स्वयभूरमण-समुद्र के पूर्वदिशा की ओर असंख्यात हजार योजन जाने पर आती हैं, आदि पूर्ववत् कथन करना चाहिए। इसी तरह सूर्यद्वीपो के विषय मे भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वयभूरमणद्वीप के पश्चिमी वेदिकान्त से स्वयभूरमणसमुद्र मे बारह हजार योजन आगे जाने पर ये द्वीप स्थित हैं। इनकी राजधानिया अपने-अपने द्वीपो के पश्चिम मे स्वयभूरमणसमुद्र मे पश्चिम की ओर असख्यात हजार योजन जाने पर आती है, आदि सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

हे भगवन् ! स्वयभूरमणसमुद्र के चन्द्रो के चन्द्रद्वीप कहा हैं ? गौतम ! स्वयभूरमणसमुद्र के पूर्वी वेदिकान्त से स्वयभूरमणसमुद्र मे पश्चिम की ओर बारह हजार योजन जाने पर ये द्वीप आते हैं, आदि पूर्ववत् कहना चाहिए।

इसी तरह स्वयभूरमणसमुद्र के सूर्यों के विषय मे समझना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वयभूरमणसमुद्र के पश्चिमी वेदिकान्त से स्वयभूरमणसमुद्र मे पूर्व की ओर बारह हजार योजन

आगे जाने पर सूर्यों के सूर्यद्वीप आते हैं। इनकी राजधानिया अपने-अपने द्वीपो के पूर्व में स्वयभूरमण-समुद्र मे असख्यात हजार योजन आगे जाने पर आती हैं यावत् वहा सूर्यदेव हैं।[1]

१६८. अत्थि णं भंते ! लवणसमुद्दे वेलंधराइ वा णागराया खन्नाइ[2] वा अग्घाइ वा सीहाइ वा विजाई वा हासवुड्ढीइ वा ? हंता अत्थि !

जहा ण भंते ! लवणसमुद्दे अत्थि वेलंधराइ वा णागराया अग्घा सीहा विजाई वा हासवुड्ढीइ वा तहा ण बाहिरेसु वि समुद्देसु अत्थि वेलधराइ वा नागरायाइ वा अग्घाइ वा खन्नाइ वा सीहाइ वा विजाई वा हासवुड्ढीइ वा ? णो तिणट्ठे समट्ठे ।

१६८ हे भगवन् ! लवणसमुद्र मे वेलधर नागराज हैं क्या ? अग्घा, खन्ना, सीहा, विजाति मच्छकच्छप है क्या ? जल की वृद्धि और ह्रास है क्या ?

गौतम ! हा है।

हे भगवन् ! जैसे लवणसमुद्र मे वेलधर नागराज हैं, अग्घा, खन्ना, सीहा, विजाति ये मच्छकच्छप है ? वैसे अढाई द्वीप से बाहर के समुद्रो मे भी ये सब है क्या ?

हे गौतम ! बाह्य समुद्रो मे ये नही है।

१६९ लवणे ण भंते ! किं समुद्दे ऊसिओदगे किं पत्थडोदगे किं खुभियजले किं अखुभियजले ?

गोयमा ! लवणे ण समुद्दे ऊसिओदगे नो पत्थडोदगे, खुभियजले नो अक्खुभियजले ।

तहा ण बाहिरगा समुद्दा किं ऊसिओदगा पत्थडोदगा खुभियजला अखुभियजला ?

गोयमा ! बाहिरगा समुद्दा नो ऊसिओदगा पत्थडोदगा, न खुभियजला अक्खुभियजला पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठंति ।

अत्थि ण भंते ! लवणसमुद्दे बहवो ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वा वासं वासंति वा ?

हंता अत्थि ।

जहा णं भंते ! लवणसमुद्दे बहवे ओराला बलाहका संसेयति संमुच्छंति वासं वासति वा तहा णं बाहिरएसु वि समुद्देसु बहवे ओराला बलाहका ससेयंति समुच्छांति वासं वासंति ?

णो तिणट्ठे समट्ठे ।

---

१. आह च मूलटीकाकारो अपि—"एव शेषद्वीपगतचन्द्रादित्यानामपि द्वीपा अनन्तरसमुद्रेष्वेवगन्तव्या, राजधान्यश्च तेषा पूर्वापरतो असख्येयान् द्वीपसमुद्रान् गत्वा ततोऽस्मिन् सदृशनाम्नि द्वीपे भवन्ति, अन्त्यानिमान् पचद्वीपान् मुक्त्वा देव-नाग-यक्ष-भूतस्वयभूरमणाख्यान्। न तेषु चन्द्रादित्याना राजधान्यो अन्यस्मिन् द्वीपे, अपितु स्वस्मिन्नेव पूर्वापरतो वेदिकान्तादसख्येयानि योजनसहस्राण्यवगाह्य भवन्तीति।" इह सूत्रेषु बहुधा पाठभेदा, परमेतावानेव सर्वत्राप्यर्थोऽनर्थभेदान्तरमित्येतद्व्याख्यानुसारेण सर्वेऽपि अनुगतव्या न मोग्धव्यमिति।

२ आह य चूर्णिकृत्—"अग्घा खन्ना सीहा विजाइ इति मच्छकच्छभा।"

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—बाहिरगा णं समुद्दा पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडियाए चिट्ठंति ?

गोयमा ! बाहिरएसु णं समुद्देसु बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चइ बाहिरगा समुद्दा पुण्णा पुण्णप्पमाणा जाव समभरघडत्ताए चिट्ठंति।

१६९. हे भगवन् ! लवणसमुद्र का जल उछलने वाला है या प्रस्तट की तरह स्थिर अर्थात् सर्वत: सम रहने वाला है ? उसका जल क्षुभित होने वाला है या अक्षुभित रहता है ?

गौतम ! लवणसमुद्र का जल उछलने वाला है, स्थिर नही है, क्षुभित होने वाला है, अक्षुभित रहने वाला नही।

हे भगवन् ! जैसे लवणसमुद्र का जल उछलने वाला है, स्थिर नही है, क्षुभित होने वाला है, अक्षुभित रहने वाला नही, वैसे क्या बाहर के समुद्र भी क्या उछलते जल वाले है या स्थिर जल वाले, क्षुभित जल वाले हैं या अक्षुभित जल वाले ?

गौतम ! बाहर के समुद्र उछलते जल वाले नही है, स्थिर जल वाले है, क्षुभित जल वाले नही, अक्षुभित जल वाले है। वे पूर्ण हैं, पूरे-पूरे भरे हुए हैं, पूर्ण भरे होने से मानो बाहर छलकना चाहते हैं, विशेष रूप से बाहर छलकना चाहते हैं, लबालब भरे हुए घट की तरह जल से परिपूर्ण है।

हे भगवन् ! क्या लवणसमुद्र मे बहुत से बडे मेघ सम्मूर्छिम जन्म के अभिमुख होते है, पैदा होते है अथवा वर्षा बरसाते हैं ?

हा, गौतम ! वहा मेघ होते है और वर्षा बरसाते है।

हे भगवन् ! जैसे लवणसमुद्र मे बहुत से बडे मेघ पैदा होते हैं और वर्षा बरसाते हैं, वैसे बाहर के समुद्रो मे भी क्या बहुत से मेघ पैदा होते है और वर्षा बरसाते है ?

हे गौतम ! ऐसा नही है।

हे भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि बाहर के समुद्र पूर्ण है, पूरे-पूरे भरे हुए हैं, मानो बाहर छलकना चाहते हैं, विशेष छलकना चाहते हैं और लबालब भरे हुए घट के समान जल से परिपूर्ण हैं ?

हे गौतम ! बाहर के समुद्रो मे बहुत से उदकयोनि के जीव आते-जाते है और बहुत से पुद्गल उदक के रूप मे एकत्रित होते है, विशेष रूप से एकत्रित होते हैं, इसलिए ऐसा कहा जाता है कि बाहर के समुद्र पूर्ण हैं, पूरे-पूरे भरे हुए हैं यावत् लबालब भरे हुए घट के समान जल से परिपूर्ण है।

१७०. लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइयं उव्वेह-परिवुड्ढीए पण्णत्ते ?

गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउइं-पंचाणउइं बालग्गाइं पदेसे गंता पदेसउव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते। पंचाणउइं-पंचाणउइं बालग्गं गंता बालग्गं उव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते। पचाणउइं-पंचाणउइं लिक्खाओ गंता लिक्खाउव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते। पंचाणउइं जवाओ जवमज्झे अंगुल-

विहत्थि-रयणी-कुच्छी-धणु (उव्वेहपरिवुड्ढीए) गाउय-जोयण-जोयणसय-जोयणसहस्साइं गंता जोयण-सहस्सं उव्वेहपरिवुड्ढीए।

लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइय उस्सेह-परिवुड्ढीए पण्णत्ते ?

गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउइं पदेसे गंता सोलसपएसे उस्सेह-परिवुड्ढीए पण्णत्ते।

गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स एएणेव कमेण जाव पंचाणउइं-पंचाणउइं जोयणसहस्साइं गंता सोलसजोयण उस्सेह-परिवुड्ढीए पण्णत्ते।

१७० हे भगवन् ! लवणसमुद्र की गहराई की वृद्धि किस क्रम से है अर्थात् कितनी दूर जाने पर कितनी गहराई की वृद्धि होती है ?

गौतम ! लवणसमुद्र के दोनो तरफ (जम्बूद्वीपवेदिकान्त से और लवणसमुद्रवेदिकान्त से) पचानवे-पचानवे प्रदेश (यहा प्रदेश से प्रयोजन त्रसरेणु है) जाने पर एक प्रदेश की उद्वेध-वृद्धि (गहराई मे वृद्धि) होती है, ९५-९५ बालाग्र जाने पर एक बालाग्र उद्वेध-वृद्धि होती है, ९५-९५ लिक्खा जाने पर एक लिक्खा की उद्वेध-वृद्धि होती है, ९५-९५ यवमध्य जाने पर एक यवमध्य की उद्वेध-वृद्धि होती है, इसी तरह ९५-९५ अगुल, वितस्ति (बेत), रत्नि (हाथ), कुक्षि, धनुष, कोस, योजन, सौ योजन, हजार योजन जाने पर एक-एक अगुल यावत् एक हजार योजन की उद्वेध-वृद्धि होती है।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र की उत्सेध-वृद्धि (ऊचाई मे वृद्धि) किस क्रम से होती है अर्थात् कितनी दूर जाने पर कितनी ऊचाई मे वृद्धि होती है ?

हे गौतम ! लवणसमुद्र के दोनो तरफ ९५-९५ प्रदेश जाने पर सोलह प्रदेशप्रमाण उत्सेध-वृद्धि होती है। हे गौतम ! इस क्रम से यावत् ९५-९५ हजार योजन जाने पर सोलह हजार योजन की उत्सेध-वृद्धि होती है।

विवेचन—लवणसमुद्र के जम्बूद्वीप वेदिकान्त के किनारे से और लवणसमुद्र वेदिकान्त के किनारे से दोनो तरफ ९५-९५ प्रदेश (त्रसरेणु) जाने पर एक प्रदेश की गहराई मे वृद्धि होती है। ९५-९५ बालाग्र जाने पर एक-एक बालाग्र की गहराई मे वृद्धि होती है। इसी प्रकार लिक्षा-यवमध्य-अगुल-वितस्ति-रत्नि-कुक्षि-धनुष गव्यूत (कोस), योजन, सौ योजन, हजार योजन आदि का भी कथन करना चाहिए। अर्थात् ९५-९५ लिक्षाप्रमाण आगे जाने पर एक लिक्षाप्रमाण गहराई मे वृद्धि होती है यावत् ९५ हजार योजन जाने पर एक हजार योजन की गहराई मे वृद्धि होती है।

९५ हजार योजन जाने पर जब एक हजार योजन की उत्सेधवृद्धि है तो त्रैराशिक सिद्धान्त से ९५ योजन पर कितनी वृद्धि होगी, यह जानने के लिए ९५०००/१०००/९५ इन तीन राशियो की स्थापना करनी चाहिए। आदि और मध्य की राशि के तीन-तीन शून्य ('शून्य शून्येन पातयेत्' के अनुसार) हटा देने चाहिए तो ९५/१/९५ यह राशि रहती है। मध्यराशि एक का अन्त्यराशि ९५ से गुणा करने पर ९५ गुणनफल आता है, इसमे प्रथम राशि ९५ का भाग देने पर एक भागफल आता है। अर्थात् एक योजन की वृद्धि होती है, यही बात इन गाथाओं मे कही है—

पंचाणउए सहस्से गंतूणं जोयणाणि उभओ वि ।
जोयणसहस्समेगं लवणे ओगाहओ होइ ॥ १ ॥

पंचाणउईण लवणे गंतूण जोयणाणि उभओ वि ।
जोयणमेगं लवणे ओगाहेणं मुणेयव्वा ॥ २ ॥

तात्पर्य यह हुआ कि ९५ योजन जाने पर यदि एक योजन गहराई मे वृद्धि होती है तो ९५ गव्यूत पर्यन्त जाने पर एक गव्यूत की वृद्धि, ९५ धनुष पर्यन्त जाने पर एक धनुष की वृद्धि होती है, यह सहज ही ज्ञात हो जाता है। यह बात गहराई को लेकर कही गई है। इसके आगे लवणसमुद्र की ऊंचाई की वृद्धि को लेकर प्रश्न किया गया है और उत्तर दिया गया है।

प्रश्न किया गया है कि लवणसमुद्र के दोनो किनारो से आरम्भ करने पर कितनी-कितनी दूर जाने पर कितनी-कितनी जलवृद्धि होती है ? उत्तर मे कहा गया है कि—लवणसमुद्र के पूर्वोक्त दोनो किनारो पर समतल भूभाग मे जलवृद्धि अगुल का असख्यातवे भाग प्रमाण होती है और आगे समतल से प्रदेशवृद्धि से जलवृद्धि क्रमश बढती हुई ९५ हजार योजन जाने पर सात सौ योजन की वृद्धि होती है। उससे आगे दस हजार योजन के विस्तारक्षेत्र मे सोलह हजार योजन की वृद्धि होती है। तात्पर्य यह है कि लवणसमुद्र के दोनो किनारो से ९५ प्रदेश (त्रसरेणु) जाने पर १६ प्रदेश की उत्सेध-वृद्धि कही गई है। ९५ बालाग्र जाने पर १६ बालाग्र की उत्सेधवृद्धि होती है। इसी तरह यावत् ९५ हजार योजन जाने पर १६ हजार योजन की उत्सेधवृद्धि होती है।

यहा त्रैराशिक भावना यह है कि ९५ हजार योजन जाने पर सोलह (१६) हजार योजन की उत्सेधवृद्धि होती है तो ९५ योजन जाने पर कितनी उत्सेधवृद्धि होगी ? राशित्रय की स्थापना—९५०००/१६०००/९५ दोनो—प्रथम और मध्यराशि के तीन तीन शून्य हटाने पर ९५/१६/९५ की राशि रहती है। मध्यमराशि १६ को तृतीय राशि ९५ से गुणा करने पर १५२० आते हैं। इसमे प्रथम राशि ९५ का भाग देने पर १६ भागफल होता है। अर्थात् ९५ योजन जाने पर १६ योजन की जलवृद्धि होती है। कहा है—

पंचाणउइसहस्से गंतूणं जोयणाणि उभओ वि ।
उस्सेहेणं लवणो सोलस साहिस्सओ भणिओ ॥१॥

पंचणउई लवणे गंतूण जोयणाणि उभओ वि ।
उस्सेहेणं लवणो सोलस किल जोयणे होइ ॥२॥

यदि ९५ योजन जाने पर १६ योजन का उत्सेध है तो ९५ गव्यूत जाने पर १६ गव्यूत का, ९५ धनुष जाने पर १६ धनुष का उत्सेध भी सहज ज्ञात हो जाता है।

गोतीर्थ-प्रतिपादन

१७१. लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स केमहालए गोतित्थे पण्णत्ते ?

गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओ पासिं पंचाणउइं पंचाणउइं जोयणसहस्साइं गोतित्थं पण्णत्ते ।

लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स केमहालए गोतित्थविरहिए खेत्ते पण्णत्ते ?

गोयमा ! लवणस्स णं समुद्दस्स दसजोयणसहस्साइं गोतित्थविरहिए खेत्ते पण्णत्ते।

लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स केमहालए उदगमाले पण्णत्ते ?

गोयमा ! दस जोयणसहस्साइं उदगमाले पण्णत्ते।

१७१ हे भगवन् ! लवणसमुद्र का[1] गोतीर्थ भाग कितना बड़ा है ?

(क्रमश. नीचा-नीचा गहराई वाला भाग गोतीर्थ कहलाता है।)

हे गौतम ! लवणसमुद्र के दोनों किनारो पर ९५ हजार योजन का[2] गोतीर्थ है। (क्रमशः नीचा-नीचा गहरा होता हुआ भाग है।)

हे भगवन् ! लवणसमुद्र का कितना बडा भाग गोतीर्थ से विरहित कहा गया है ?

हे गौतम ! लवणसमुद्र का दस हजार योजन प्रमाणक्षेत्र गोतीर्थ से विरहित है। (अर्थात् इतना दस हजार योजन प्रमाण क्षेत्र समतल है।)

हे गौतम ! लवणसमुद्र की उदकमाला (समपानी पर सोलह हजार योजन ऊँचाई वाली जलमाला) कितनी बडी है ?

गौतम ! उदकमाला दस हजार योजन की है।[3] (जितना गहराई रहित भाग है, उस पर रही हुई जलराशि को उदकमाला कहते है।)

१७२ **लवणे णं भंते ! समुद्दे किंसंठिए पण्णत्ते ?**

गोयमा ! गोतित्थसंठिए, नावासंठाणसंठिए, सिप्पिसंपुडसंठिए, आसखंधसंठिए, वलभिसंठिए वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं ? केवइयं परिक्खेवेणं ? केवइयं उव्वेहेणं ? केवइयं उस्सेहेणं ? केवइयं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, पण्णरस जोयणसयसहस्साइं एकासीइं च सहस्साइं सयं च इगुयालं किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, सोलसजोयणसहस्साइं उस्सेहेणं सत्तरसजोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

१७२ हे भगवन् ! लवणसमुद्र का सस्थान कैसा है ?

गौतम ! लवणसमुद्र गोतीर्थ के आकार का, नाव के आकार का, सीप के पुट के आकार का, घोडे के स्कध के आकार का, वलभीगृह के आकार का, वर्तुल और वलयाकार संस्थान वाला है।

---

१ गोतीर्थमेव गोतीर्थम्—क्रमेण नीचो नीचतर प्रवेशमार्गं।

२ "पचाणउइ सहस्से गोतित्थे उभयओ वि लवणस्स।"

३ उदकमाला—समपानीयोपरिभूता षोडशयोजनसहस्रोच्छ्या प्रज्ञप्ता।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र का चक्रवाल-विष्कभ कितना है, उसकी परिधि कितनी है ? उसकी गहराई कितनी है, उसकी ऊँचाई कितनी है ? उसका समग्र प्रमाण कितना है ?

गौतम ! लवणसमुद्र चक्रवाल-विष्कभ से दो लाख योजन का है, उसकी परिधि पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनचालीस (१५८११३९) योजन से कुछ कम है, उसकी गहराई एक हजार योजन है, उसका उत्सेध (ऊँचाई) सोलह हजार योजन का है। उद्वेध और उत्सेध दोनो मिलाकर समग्र रूप से उसका प्रमाण सत्तरह हजार योजन है।

विवेचन—लवणसमुद्र का आकार विविध अपेक्षाओ को ध्यान मे रखकर विभिन्न प्रकार का बताया गया है। क्रमश निम्न, निम्नतर गहराई बढने के कारण गोतीर्थ के आकार का कहा गया है। दोनो तरफ समतल भूभाग की अपेक्षा क्रम से जलवृद्धि होने के कारण नाव के आकार का कहा है। उद्वेध का जल और जलवृद्धि का जल एकत्र मिलने की अपेक्षा से सीप के पुट के आकार का कहा है। दोनो तरफ ९५ हजार योजन पर्यन्त उन्नत होने से सोलह हजार योजन प्रमाण ऊँची शिखा होने से अश्वस्कन्ध की आकृति वाला कहा गया है। दश हजार योजन प्रमाण विस्तार वाली शिखा वलभी-गृहाकार प्रतीत होने से वलभी (भवन की अट्टालिका—चादनी) के आकार का कहा गया है। लवणसमुद्र गोल है तथा चूडी के आकार का है।

लवणसमुद्र का चक्रवाल-विष्कभ, परिधि, उद्वेध, उत्सेध और समग्र प्रमाण मूलार्थ से ही स्पष्ट है।[1]

---

१ यहा पूर्वाचार्यों ने लवणसमुद्र के घन और प्रतर का गणित भी निकाला है जो जिज्ञासुओ के लिए यहा दिया जा रहा है। प्रतरभावना इस प्रकार है—लवणसमुद्र के दो लाख योजन विस्तार मे से दस हजार योजन निकाल कर शेष राशि का आधा किया जाता है—ऐसा करने से ९५००० की राशि होती है। इस राशि मे पहले के निकाले हुए दस हजार की राशि मिला दी जाती है तो १०५००० होते है। इस राशि को कोटी कहा जाता है। इस कोटी से लवणसमुद्र का मध्यभागवर्ती परिरय (परिधि) ९४८६८३ का गुणा किया जाता है तो प्रतर का परिमाण निकल आता है। वह परिमाण है—९९६११७१५००० । कहा है—

वित्थाराओ सोहिय दस सहस्साइ सेस अद्धम्मि ।
त चेव पक्खिवित्ता लवणसमुद्दस्स सा कोडी ॥१॥
लक्ख पचसहस्सा कोडीए तीए सगुणेऊण ।
लवणस्स मज्झपरिहि ताहे पयर इम होइ ॥२॥
नवनउई कोडिसया एगट्ठी कोडिलक्खसत्तरसा ।
पन्नरस सहस्साणि य पयर लवणस्स णिद्दिट्ठ ॥३॥

घनगणित इस प्रकार है—लवणसमुद्र की १६००० योजन की शिखा और एक हजार योजन उद्वेध कुल सत्तरह हजार योजन की सख्या से प्राक्तन प्रतर के परिमाण को गुणित करने से लवणसमुद्र का घन निकल आता है। वह है—१६९३३९९१५५००००० योजन। कहा है—

जोयणसहस्स सोलह लवणसिहा अहोगया सहस्सेग ।
पयर सत्तरसहस्सगुण लवणघणगणिय ॥१॥
सोलस कोडाकोडी ते णउइ कोडिसयसहस्साओ ।
उणयालीसहस्सा नवकोडिसया य पन्नरसा ॥२॥

(आगे के पृष्ठ मे)

१७३. जइ णं भंते ! लवणसमुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खमेणं पण्णरस जोयण-सयसहस्साइं एकासीइं च सहस्साइं सय इगुयाल किंचिविसेसूणा परिक्खेवेणं एग जोयणसहस्सं उब्वेहेण सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहेण सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेण पण्णत्ते, कम्हा णं भंते ! लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उवोलेति नो उप्पीलीलेइ नो चेव णं एक्कोदगं करेइ ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे भरहेरवएसु वासेसु अरहंत चक्कवट्टि बलदेवा वासुदेवा चारणा विज्जाधरा समणा समणीओ सावया सावियाओ मणुया पगइभद्दया पगइविणीया पगइउवसता पगइपयणु-कोह-माण-माया-लोभा मिउमद्दवसपन्ना अल्लीणा भद्दगा विणीया, तेसिं णं पणिहाए लवण-समुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उवीलेइ नो उप्पीलेइ नो चेव ण एगोदगं करेइ ।

गंगासिंधुरत्तारत्तवईसु सलिलासु देवयाओ महिड्ढीयाओ जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, तेसिं णं पणिहाय लवणसमुद्दे जाव नो चेव ण एगोदग करेइ ।

चुल्लहिमवंतसिहरेसु वासहरपव्वएसु देवा महिड्ढिया तेसि ण पणिहाय हेमवतेरण्णवएसु वासेसु मणुया पगइभद्दगा०, रोहितंस-सुवण्णकूल-रूप्पकूलासु सलिलासु देवयाओ महिड्ढियाओ तासिं पणिहाए० सद्दावइवियडावइवट्टवेयड्ढपव्वएसु देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसति, महाहिमवतरुप्पिसु वासहरपव्वएसु देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया, हरिवासरम्मयवासेसु मणुया पगईभद्दगा, गंधावइमालवंतपरियाएसु वट्टवेयड्ढपव्वएसु देवा महिड्ढिया० निसहनीलवतेसु वासधरपव्वएसु देवा महिड्ढिया० सव्वाओ दहदेवयाओ भाणियव्वाओ, पउमदहतिगिच्छकेसरिदहावसाणेसु देवा महिड्ढियाओ तासिं पणिहाए० पुव्वविदेहावरविदेहेसु वासेसु अरहतचक्कवट्टिबलदेववासुदेवा चारणा विज्जाहरा समणा समणीओ सावगा सावियाओ मणुया पगइभद्दया तेसिं पणिहाए लवण०, सीयासीतोदगासु सलिलासु देवया महिड्ढिया० देवकुरुउत्तरकुरुसु मणुया पगइभद्दगा० मंदरे पव्वए देवया महिड्ढिया०,

---

पन्नाससयसहस्सा जोयणाण भवे अणूणाइं ।
लवणसमुद्दास्सेय जोयणसखाए घणगणिय ॥३॥

यहा यह शका होती है कि लवणसमुद्र सब जगह सत्रह हजार योजन प्रमाण नही है, मध्यभाग मे तो उसका विस्तार दस हजार योजन है । फिर यह घनगणित कैसे सगत होता है । यह शका सत्य है, किन्तु जब लवणशिखा के ऊपर दोनो वेदिकान्तो के ऊपर सीधी डोरी डाली जाती है तो जो अपान्तराल मे जलशून्य क्षेत्र बनता है वह भी करणगति अनुसार सजल मान लिया जाता है, इस विषय मे मेरुपर्वत का उदाहरण है । वह सर्वत्र एकादशभाग परिहानिरूप कहा जाता है परन्तु सर्वत्र इतनी हानि नही है । कही कितनी है, कही कितनी है । केवल मूल से लेकर शिखर तक डोरी डालने पर अपान्तराल मे जो आकाश है वह सब मेरु का गिना जाता है । ऐसा मानकर गणितज्ञो ने सर्वत्र एकादश-परिभागहानि का कथन किया है । जिनभद्रगणि क्षमा-श्रमण ने भी विशेषणवती ग्रन्थ मे यही बात कही है—"एव उभयवेइयताओ सोलस-सहस्सुस्सेहस्सकन्नगईए ज लवणसमुद्दाभव्व जलसुन्नपि खेत्त तस्स गणिय । जहा मदरपव्वयस्स एक्कारसभागपरिहाणी कन्नगईए आगासस्स वि तदाभव्वतिकाउ भणिया तहा लवणसमुद्दस्स वि ।"

इसका अर्थ पूर्व विवरण से स्पष्ट ही है ।

—वृत्तिकार

जंबूए णं सुदंसणाए अंबूदीवाहिवई अणाढिए नामं देवे महिड्ढिए जाव पलिओवमठिईए परिवसति, तस्स पणिहाए लवणसमुद्दे नो उवीलेइ नो उप्पीललेइ नो चेव णं एकोदगं करेइ, अदुत्तरं च णं गोयमा ! लोगट्ठिई लोगाणुभावे जण्णं लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उवीलेइ नो उप्पीलेइ नो चेव णं एगोदगं करेइ ।

१७३ हे भगवन् ! यदि लवणसमुद्र चक्रवाल-विष्कभ से दो लाख योजन का है, पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनचालीस योजन से कुछ कम उसकी परिधि है, एक हजार योजन उसकी गहराई है और सोलह हजार योजन उसकी ऊँचाई है कुल मिलाकर सत्तरह हजार योजन उसका प्रमाण है। तो भगवन् ! वह लवणसमुद्र जम्बूद्वीप नामक द्वीप को जल से आप्लावित क्यो नही करता, क्यो प्रबलता के साथ उत्पीडित नही करता ? और क्यो उसे जलमग्न नही कर देता ?

गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत-ऐरवत क्षेत्रो मे अरिहत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, जघाचारण आदि विद्याधर मुनि, श्रमण, श्रमणिया, श्रावक और श्राविकाए हैं, (यह कथन तीसरे-चौथे-पाचवे आरे की अपेक्षा से है।) (प्रथम आरे की अपेक्षा) वहा के मनुष्य प्रकृति से भद्र, प्रकृति से विनीत, उपशान्त, प्रकृति से मन्द क्रोध-मान-माया-लोभ वाले, मृदु-मार्दवसम्पन्न, आलीन, भद्र और विनीत हैं, उनके प्रभाव से लवणसमुद्र जबूद्वीप को जल-आप्लावित, उत्पीडित और जलमग्न नही करता है। (छठे आरे की अपेक्षा से) गगा-सिन्धु-रक्ता और रक्तवती नदियो मे महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थितवाली देविया रहती हैं। उनके प्रभाव से लवणसमुद्र जबूद्वीप को जलमग्न नही करता।

क्षुल्लकहिमवत और शिखरी वर्षधर पर्वतो मे महर्द्धिक देव रहते है, उनके प्रभाव से,

हेमवत-ऐरण्यवत वर्षो (क्षेत्रो) मे मनुष्य प्रकृति से भद्र यावत् विनीत है, उनके प्रभाव से,

रोहिताश, सुवर्णकूला और रूप्यकूला नदियो मे जो महर्द्धिक देविया है, उनके प्रभाव से,

शब्दापाति विकटापाति वृत्तवैताढ्य पर्वतो मे महर्द्धिक पल्योपम की स्थितिवाले देव रहते है, उनके प्रभाव से,

महाहिमवत और रुक्मि वर्षधरपर्वतो मे महर्द्धिक यावत् पल्योपम स्थितिवाले देव रहते है, उनके प्रभाव से,

हरिवर्ष और रम्यकवर्ष क्षेत्रो मे मनुष्य प्रकृति से भद्र यावत् विनीत है, गधापति और मालवत नाम के वृत्तवैताढ्य पर्वतो मे महर्द्धिक देव हैं, निषध और नीलवत वर्षधरपर्वतो मे महर्द्धिक देव है, इसी तरह सब द्रहो की देवियो का कथन करना चाहिए, पद्मद्रह तिगिछद्रह केसरिद्रह आदि द्रहो से महर्द्धिक देव रहते हैं, उनके प्रभाव से,

पूर्वविदेहो और पश्चिमविदेहो मे अरिहत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, जघाचारण विद्याधर मुनि, श्रमण, श्रमणिया, श्रावक, श्राविकाए एव मनुष्य प्रकृति से भद्र यावत् विनीत है, उनके प्रभाव से,

मेरुपर्वत के महर्द्धिक देवो के प्रभाव से, (उत्तरकुरु मे) जम्बू सुदर्शना मे अनाहत नामक जबूद्वीप का अधिपति महर्द्धिक यावत् पल्योपम स्थिति वाला देव रहता है, उसके प्रभाव से लवणसमुद्र जबूद्वीप को जल से आप्लावित, उत्पीडित और जलमग्न नही करता है।

गौतम ! दूसरी बात यह है कि लोकस्थिति और लोकस्वभाव (लोकमर्यादा या जगत्-स्वभाव) ही ऐसा है कि लवणसमुद्र जबूद्वीप को जल से आप्लावित, उत्पीडित और जलमग्न नही करता है।

।। तृतीय प्रतिपत्ति में मन्दरोद्देशक समाप्त ।।

धातकीखण्ड की वक्तव्यता

१७४. लवणसमुद्दं धायइसंडे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ।

धायइसंडे णं भंते ! दीवे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए ?

गोयमा ! समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए।

धायइसंडे ण भंते ! दीवे केवइय चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! चत्तारि जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, एकयालीसं जोयणसयसहस्साइं दस-जोयणसहस्साइं णवएगट्ठे जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

से ण एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, दोण्ह वि वण्णओ दीवसमिया परिक्खेवेण।

धायइसंडस्स ण भते ! दीवस्स कति दारा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता—विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए।

कहि णं भंते ! धायइसंडस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! धायइसंडपुरत्थिमपेरंते कालोयसमुद्दपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीयाए महाणदीए उप्पिं एत्थ णं धायइसडस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते, तं चेव पमाणं। रायहाणीओ अण्णंमि धायइसंडे दीवे। दीवस्स वत्तव्वया भाणियव्वा। एवं चत्तारिवि दारा भाणियव्वा।

धायइसंडस्स णं भंते ! दीवस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवइय अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दस जोयणसयसहस्साइं सत्तावीसं च जोयणसहस्साइं सत्तपणतीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे दारस्स य दारस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

धायइसडस्स णं भंते ! दीवस्स पएसा कालोयगं समुद्दं पुट्ठा ? हंता, पुट्ठा। ते णं भंते ! किं धायइसंडे दीवे कालोए समुद्दे ? ते धायइसंडे, नो खलु ते कालोयसमुद्दे। एव कालोयस्सवि।

धायइसंडदीवे जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता कालोए समुद्दे पच्चायंति ?

गोयमा ! अत्थेगइया पच्चायंति अत्थेगइया नो पच्चायंति। एवं कालोएवि अत्थेगइया पच्चायंति अत्थेगइया नो पच्चायंति।

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ—धायइसंडे दीवे धायइसंडे दीवे ?

गोयमा ! धायइसंडे णं दीवे तत्थ तत्थ पएसे धायइरुक्खा धायइवणा धायइवणसंडा णिच्चं

कुसुमिया जाव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति । धायइमहाधायइरुक्खेसु सुदंसणपियदंसणा दुवे देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, से एएणट्ठेणं एवं वुच्चइ—धायइसंडे दीवे धायइसंडे दीवे । अदुत्तरं च णं गोयमा ! जाव णिच्चे ।

धायइसंडे णं दीवे कति चंदा पभासिसु वा पभासिंति वा पभासिस्संति वा ? कइ सूरिया तविसु वा ३ । कइ महग्गहा चारं चरिंसु वा ३ ? कइ णक्खत्ता जोगं जोइंसु वा ३ ? कइ तारागण-कोडाकोडीओ सोभिंसु वा ३ ?

गोयमा ! बारस चंदा पभासिंसु वा ३ एवं—

चउवीसं ससिरविणो णक्खत्तासता य तिन्नि छत्तीसा ।
एगं च गहसहस्सं छप्पन्नं धायइसंडे ॥१॥
अट्ठेव सयसहस्सा तिण्णि सहस्साइं सत्त य सयाइं ।
धायइसंडे दीवे तारागण कोडिकोडीणं ॥२॥
सोभिंसु वा सोभंति वा सोभिस्संति वा ।

१७४. धातकीखण्ड नाम का द्वीप, जो गोल वलयाकार संस्थान से संस्थित है, लवणसमुद्र को सब ओर से घेरे हुए संस्थित है ।

भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप समचक्रवाल संस्थान से संस्थित है या विषमचक्रवाल संस्थान-संस्थित है ?

गौतम ! धातकीखण्ड समचक्रवाल संस्थान-संस्थित है, विषमचक्रवालसंस्थित नहीं है ।

भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप चक्रवाल-विष्कंभ से कितना चौड़ा है और उसकी परिधि कितनी है ?

गौतम ! वह चार लाख योजन चक्रवालविष्कंभ वाला और इकतालीस लाख दस हजार नौ सौ इकसठ योजन से कुछ कम परिधि वाला है ।[1]

वह धातकीखण्ड एक पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है । दोनों का वर्णनक कहना चाहिए । धातकीखण्डद्वीप के समान ही उनकी परिधि है ।

भगवन् ! धातकीखण्ड के कितने द्वार हैं ?

गौतम ! धातकीखण्ड के चार द्वार हैं, यथा—विजय, वैजयंत, जयन्त और अपराजित ।

---

१. एयालीस लक्खा दस य सहस्साणि जोयणाण उ ।
नव य सया एगट्ठा किंचूणो परिरओ तस्स ॥१॥

हे भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप का विजयद्वार कहां पर स्थित है ?

गौतम ! धातकीखण्ड के पूर्वी दिशा के अन्त मे और कालोदसमुद्र के पूर्वार्ध के पश्चिमदिशा में शीता महानदी के ऊपर धातकीखण्ड का विजयद्वार है। जम्बूद्वीप के विजयद्वार की तरह ही इसका प्रमाण आदि जानना चाहिए। इसकी राजधानी अन्य धातकीखण्डद्वीप में है, इत्यादि वर्णन जबूद्वीप की विजया राजधानी के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार विजयद्वार सहित चारो द्वारो का वर्णन समझना चाहिए।

हे भगवन् ! धातकीखण्ड के एक द्वार से दूसरे द्वार का अपान्तराल अन्तर कितना है ?

गौतम ! दस लाख सत्तावीस हजार सात सौ पैंतीस (१०२७७३५) योजन और तीन कोस का अपान्तराल अन्तर है।[1] (एक-एक द्वार की द्वारशाखा सहित मोटाई साढ़े चार योजन है। चार द्वारो की मोटाई १८ योजन हुई। धातकीखण्ड की परिधि ४११०९६१ योजन मे से १८ योजन कम करने से ४११०९४३ योजन होते हैं। इनमे चार का भाग देने से एक-एक द्वार का उक्त अन्तर निकल आता है।)

भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप के प्रदेश कालोदधिसमुद्र से छुए हुए है क्या ? हां गौतम ! छुए हुए है।

भगवन् ! वे प्रदेश धातकीखण्ड के हैं या कालोदसमुद्र के ?

गौतम ! वे प्रदेश धातकीखण्ड के है, कालोदसमुद्र के नही। इसी तरह कालोदसमुद्र के प्रदेशो के विषय मे भी कहना चाहिए।

भगवन् ! धातकीखण्ड से निकलकर (मरकर) जीव कालोदसमुद्र मे पैदा होते हैं क्या ?

गौतम ! कोई जीव पैदा होते हैं, कोई जीव नही पैदा होते है। इसी तरह कालोदसमुद्र से निकलकर धातकीखण्डद्वीप मे कोई जीव पैदा होते हैं और कोई नही पैदा होते है।

भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि धातकीखण्ड, धातकीखण्ड है ?

गौतम ! धातकीखण्डद्वीप मे स्थान-स्थान पर यहा वहा धातकी के वृक्ष, धातकी के वन और धातकी के वनखण्ड नित्य कुसुमित रहते है यावत् शोभित होते हुए स्थित है, धातकी महाधातकी वृक्षो पर सुदर्शन और प्रियदर्शन नाम के दो महर्द्धिक पल्योपम स्थितिवाले देव रहते है, इस कारण धातकी-खण्ड, धातकीखण्ड कहलाता है। गौतम ! दूसरी बात यह है कि धातकीखण्ड नाम नित्य है। (द्रव्यापेक्षया नित्य और पर्यायापेक्षया अनित्य है) अतएव शाश्वत काल से उसका यह नाम अनिमित्तक है।

भगवन् ! धातकीखण्डद्वीप मे कितने चन्द्र प्रभासित हुए, होते है और होगे ? कितने सूर्य तपित होते थे, होते हैं और होगे ? कितने महाग्रह चलते थे, चलते हैं और चलेगे ? कितने नक्षत्र चन्द्रादि से योग करते थे, योग करते है और योग करेंगे ? और कितने कोडाकोडी तारागण शोभित होते थे, शोभित होते है और शोभित होंगे ?

---

१ पणतीसा सत्त सया सत्तावीसा सहस्स दस लक्खा।
धाइयखडे दारतर तु अवर कोसतियं ॥१॥

गौतम ! धातकीखण्डद्वीप मे बारह चन्द्र उद्योत करते थे, करते है और करेंगे। इसी प्रकार बारह सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे।[1] तीन सौ छत्तीस नक्षत्र चन्द्र सूर्य से योग करते थे, करते हैं और करेंगे। (एक-एक चन्द्र के परिवार मे २८ नक्षत्र हैं। बारह चन्द्रो के ३३६ नक्षत्र हैं।) एक हजार छप्पन महाग्रह चलते थे, चलते हैं और चलेंगे। (प्रत्येक चन्द्र के परिवार में ८८ महाग्रह है। बारह चन्द्रों के १२ × ८८ = १०५६ महाग्रह है।) आठ लाख तीन हजार सात सौ कोडाकोडी तारागण शोभित होते थे, शोभित होते है और शोभित होगे।[2]

कालोदसमुद्र की वक्तव्यता

१७५. धायइसंडं णं दीवं कालोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठइ।

कालोदे णं समुद्दे किं समचक्कवालसंठाणसंठिए विसमचक्कवालसठाणसंठिए ?

गोयमा ! समचक्कवालसंठाणसंठिए नो विसमचक्कवालसंठाणसठिए।

कालोदे णं भंते ! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेण पण्णत्ते ?

गोयमा ! अट्ठजोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं एकाणउइजोयणसयसहस्साइ सत्तरि-सहस्साइं छच्च पंचुत्तरे जोयणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं, संपरिक्खित्ते, दोण्हवि वण्णओ।

कालोयस्स णं भंते ! समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—विजए, वेजयंते, जयते, अपराजिए।

कहि णं भंते ! कालोयस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! कालोदे समुद्दे पुरत्थिमपेरंते पुक्खरवरदीवपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीतोदाए महाणईए उप्पि एत्थ णं कालोयस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते। अट्ठेव जोयणाइं तं चेव पमाण जाव रायहाणीओ।

कहि णं भंते ! कालोयस्स समुद्दस्स वेजयते णामं दारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! कालोयस्स समुद्दस्स दक्खिणपेरंते पुक्खरवरदीवस्स दक्खिणद्धस्स उत्तरेणं, एत्थ णं कालोयसमुद्दस्स वेजयंते नामं दारे पण्णत्ते।

---

१ 'चउवीस ससिरविणो' का अर्थ १२ चन्द्र और १२ सूर्य समझना चाहिये।

२. उक्त च—बारस चदा सूरा नक्खत्तसया य तिन्नि छत्तीसा।
एग च गहसहस्सं छप्पन्न धायइसडे ॥१॥
अट्ठेव सयसहस्सा तिन्नि सहस्सा य सत्त य सया य।
धायइसडे दीवे तारागणकोडिकोडीओ ॥२॥

कहि णं भंते ! कालोयसमुद्दस्स जयंते नाम दारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! कालोयसमुद्दस्स पच्चत्थिमपेरंते पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमद्धस्स पुरत्थिमेण सीताए महाणईए उप्पिं जयंते णामं दारे पण्णत्ते ।

कहि णं भंते ! कालोयसमुद्दस्स अपराजिए नामं दारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! कालोयसमुद्दस्स उत्तरद्धपेरंते पुक्खरवरदीवोत्तरद्धस्स दाहिणओ एत्थ णं कालोय-समुद्दस्स अपराजिए णाम दारे पण्णत्ते । सेस त चेव ।

कालोयस्स ण भंते ! समुद्दस्स दारस्स य दारस्स य एस ण केवइयं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा !—बावीससयसहस्सा बाणउइ खलु भवे सहस्साइं ।
छच्च सया बायाला दारंतरं तिन्नि कोसा य ।।१।।

दारस्स य दारस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।

कालोदस्स णं भंते ! समुद्दस्स पएसा पुक्खरवरदीवं पुट्ठा ? तहेव, एव पुक्खरवरदीवस्सवि जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता तहेव भाणियव्वं ।

से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ—कालोए समुद्दे कालोए समुद्दे ?

गोयमा ! कालोयस्स णं समुद्दस्स उदगे आसले मासले पेसले कालए मासरासिवण्णाभे पगईए उदगरसे णं पण्णत्ते, काल-महाकाला एत्थ दुवे देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव णिच्चे ।

कालोए ण भते ! समुद्दे कति चंदा पभासिसु वा ३ पुच्छा ?

गोयमा ! कालोए णं समुद्दे बायालीस चंदा पभासिसु वा ३ ।

बायालीस चंदा बायालीसं य दिणयरा दित्ता ।
कालोदहिम्मि एते चरंति संबद्धलेसागा ।।१।।

णक्खत्ताण सहस्सं एगं छावत्तरं च सयमण्णं ।
छच्चसया छण्णउया महागया तिण्णि य सहस्सा ।।२।।

अट्ठावीस कालोदहिम्मि बारस य सयसहस्साइं ।
नव य सया पन्नासा तारागणकोडिकोडीण ।।३।।

सोभिंसु वा ३ ।।

१७५. गोल और वलयाकार आकृति का कालोद (कालोदधि) नाम का समुद्र धातकीखण्ड द्वीप को सब ओर से घेर कर रहा हुआ है ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र समचक्रवाल रूप से सस्थित है या विषमचक्रवालसस्थान से सस्थित है ?

गौतम ! कालोदसमुद्र समचक्रवाल रूप से सस्थित है, विषमचक्रवाल रूप से नही ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र का चक्रवालविष्कंभ कितना है और उसकी परिधि कितनी है ?

गौतम ! कालोदसमुद्र आठ लाख योजन का चक्रवालविष्कभ से है और इक्यानवै लाख सत्तर हजार छह सौ पाच योजन से कुछ अधिक उसकी परिधि है। (एक हजार योजन उसकी गहराई है ।)[1]

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखंड से परिवेष्टित है । दोनो का वर्णनक कहना चाहिए ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र के कितने द्वार है ?

गौतम ! कालोदसमुद्र के चार द्वार है—विजय, वैजयंत, जयत और अपराजित ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र का विजयद्वार कहा स्थित है ?

गौतम ! कालोदसमुद्र के पूर्वदिशा के अन्त मे और पुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध के पश्चिम मे शीतोदा महानदी के ऊपर कालोदसमुद्र का विजयद्वार है । वह आठ योजन का ऊँचा है आदि प्रमाण पूर्ववत् यावत् राजधानी पर्यन्त जानना चाहिए ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र का वैजयतद्वार कहा है ?

गौतम ! कालोदसमुद्र के दक्षिण पर्यन्त मे, पुष्करवरद्वीप के दक्षिणार्ध भाग के उत्तर मे कालोदसमुद्र का वैजयतद्वार है ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र का जयन्तद्वार कहा है ?

गौतम ! कालोदसमुद्र के पश्चिमान्त मे, पुष्करवरद्वीप के पश्चिमार्ध के पूर्व मे शीता महानदी के ऊपर जयंत नाम का द्वार है ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र का अपराजितद्वार कहा है ।

गौतम ! कालोदसमुद्र के उत्तरार्ध के अन्त मे और पुष्करवरद्वीप के उत्तरार्ध के दक्षिण मे कालोदसमुद्र का अपराजितद्वार है । शेष वर्णन पूर्वोक्त जम्बूद्वीप के अपराजितद्वार के समान जानना चाहिए । (विशेष यह है कि राजधानी कालोदसमुद्र मे कहनी चाहिए ।)

भगवन् ! कालोदसमुद्र के एक द्वार से दूसरे का अपान्तराल अन्तर कितना है ?

गौतम ! बावीस लाख बानवै हजार छह सौ छियालीस योजन और तीन कोस का एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर है । (चारों द्वारो की मोटाई १८ योजन कालोदसमुद्र की परिधि मे से घटाने पर

---

१ उक्त च—अट्ठेव सयसहस्सा कालोओ चक्कवालओ रुंदो ।
जोयणसहस्समेग ओगाहेण मुणेयव्वो ॥१॥
इगनउइसयसहस्सा हवंति तह सत्तरि सहस्सा य ।
छच्च सया पंचहिया कालोयहिपरिरओ एसो ॥२॥

९१७०५८७ होते हैं। इनमे ४ का भाग देने पर २२९२६४६ योजन और तीन कोस का प्रमाण आ जाता है।)

भगवन्! कालोदसमुद्र के प्रदेश पुष्करवरद्वीप से छुए हुए हैं क्या? इत्यादि कथन पूर्ववत् करना चाहिये, यावत् पुष्करवरद्वीप के जीव मरकर कालोद समुद्र में कोई उत्पन्न होते हैं और कोई नही।

भगवन्! कालोदसमुद्र, कालोदसमुद्र क्यो कहलाता है?

गौतम! कालोदसमुद्र का पानी आस्वाद्य है, मासल (भारी होने से), पेशल (मनोज्ञ स्वाद वाला) है, काला है, उडद की राशि के वर्ण का है और स्वाभाविक उदकरस वाला है, इसलिए वह कालोद कहलाता है। वहा काल और महाकाल नाम के पल्योपम की स्थिति वाले महर्द्धिक दो देव रहते हैं। इसलिए वह कालोद कहलाता है। गौतम! दूसरी बात यह है कि कालोदसमुद्र शाश्वत होने से उसका नाम भी शाश्वत और अनिमित्तक है।

भगवन्! कालोदसमुद्र मे कितने चन्द्र उद्योत करते थे आदि प्रश्न पूर्ववत् जानना चाहिए?

गौतम! कालोदसमुद्र मे बयालीस चन्द्र उद्योत करते थे, उद्योत करते हैं और उद्योत करेगे। गाथा मे कहा है कि

कालोदधि में बयालीस चन्द्र और बयालीस सूर्य सम्बद्धलेश्या वाले विचरण करते हैं। एक हजार एक सौ छिहत्तर नक्षत्र और तीन हजार छह सौ छियानवे महाग्रह और अट्ठाईस लाख बारह हजार नौ सौ पचास कोडाकोडी तारागण शोभित हुए, शोभित होते है और शोभित होगे।[1]

पुष्करवरद्वीप की वक्तव्यता

१७६. (अ) कालोयं ण समुद्दं पुक्खरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठई, तहेव जाव समचक्कवालसंठाणसंठिए नो विसमचक्कवालसंठाणसंठिए।

पुक्खरवरे णं भंते! दीवे केवइय चक्कवालविक्खभेणं केवइयं परिक्लेवेणं पण्णत्ते?

गोयमा! सोलस जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं,—

एगा जोयणकोडी बाणउइं खलु भवे सयसहस्सा।
अउणाणउइं अट्ठसया चउणउया य परिरओ पुक्खरवरस्स।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं संपरिक्खित्ते। दोण्हवि वण्णओ।

पुक्खरवरस्स णं भंते! कति दारा पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए।

कहि णं भंते! पुक्खरवरदीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?

गोयमा! पुक्खरवरदीवपुरच्छिमपेरंते पुक्खरोदसमुद्दपुरच्छिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं

---

१ प्रस्तुत पाठ मे आई तीन गाथाए वृत्तिकार के सामने रही हुई प्रतियो मे नही थी, ऐसा लगता है, इसीलिए उन्होंने "अन्यत्राप्युक्तं" ऐसा वृत्ति मे लिखकर उक्त तीन गाथाए उद्धृत की हैं। —सम्पादक

पुक्खरवरदीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते, तं चेव सव्वं। एव चत्तारिवि दारा। सीयासीओदा णत्थि भाणियव्वाओ।

पुक्खरवरस्स णं भंते! दीवस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवइयं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?

गोयमा! अडयाल सयसहस्सा बावीस खलु भवे सहस्साइं।
अगुणुत्तरा य चउरो दारंतर पुक्खरवरस्स ॥१॥

पएसा दोण्हवि पुट्ठा, जीवा दोसुवि भाणियव्वा।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ पुक्खरवरदीवे पुक्खरवरदीवे?

गोयमा! पुक्खरवरे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे पउमरुक्खा पउमवणा पउमवणसंडा णिच्चं कुसुमिया जाव चिट्ठति; पउममहापउमरुक्खे एत्थ ण पउमपुंडरीया णामं दुवे देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, से तेणट्ठेण गोयमा! एवं वुच्चइ पुक्खरवरदीवे पुक्खरवरदीवे जाव णिच्चे।

पुक्खरवरे ण भंते! दीवे केवइया चंदा पभासिसु वा ३? एव पुच्छा—

चोयाल चदसयं चउयाल चेव सूरियाण सय।
पुक्खरवरदीवंमि चरंति एता पभासेंता ॥१॥

चत्तारि सहस्साइ बत्तीसं चेव होंति णक्खत्ता।
छच्च सया बावत्तर महग्गहा बारस सहस्सा ॥२॥

छण्णउइ सयसहस्सा चत्तालीसं भवे सहस्साइं।
चत्तारि सया पुक्खरवर तारागणकोडिकोडीणं ॥३॥

सोभिसु वा सोभन्ति वा सोभिस्संति वा।

१७६ (अ) गोल और वलयाकार सस्थान से सस्थित पुष्करवर नाम का द्वीप कालोदसमुद्र को सब ओर घेर कर रहा हुआ है। उसी प्रकार कहना चाहिए यावत् यह समचक्रवाल सस्थान वाला है, विषमचक्रवाल सस्थान वाला नही है।

भगवन्! पुष्करवरद्वीप का चक्रवालविष्कभ कितना है और उसकी परिधि कितनी है?

गौतम! वह सोलह लाख योजन चक्रवालविष्कभ वाला है और उसकी परिधि एक करोड बानवै लाख नव्यासी हजार आठ सौ चौरानवै (१९२८९८९४) योजन है।

वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से परिवेष्ठित है। दोनो का वर्णनक कहना चाहिए।

भगवन्! पुष्करवरद्वीप के कितने द्वार हैं?

गौतम! चार द्वार हैं— विजय, वैजयत, जयत और अपराजित।

भगवन् ! पुष्करवरद्वीप का विजयद्वार कहाँ है ?

गौतम ! पुष्करवरद्वीप के पूर्वी पर्यन्त मे और पुष्करोदसमुद्र के पूर्वार्ध के पश्चिम में पुष्करवरद्वीप का विजयद्वार है, आदि वर्णन जबूद्वीप के विजयद्वार के समान कहना चाहिए। इसी प्रकार चारो द्वारो का वर्णन जानना चाहिए । लेकिन शीता शीतोदा नदियो का सद्भाव नही कहना चाहिये।

भगवन् ! पुष्करवरद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर कितना है ?

गौतम ! अडतालीस लाख बावीस हजार चार सौ उनहत्तर (४८२२४६९) योजन का अन्तर है। (चारो द्वारो की मोटाई १८ योजन है। पुष्करवरद्वीप की परिधि १९२८९८९४ योजन मे से १८ योजन कम करने पर १९२८९८७६ योजन की राशि को ४ से भाग देने पर उक्त प्रमाण निकल आता है।)

पुष्करवरद्वीप के प्रदेश पुष्करवरसमुद्र से स्पृष्ट हैं और वे प्रदेश उसी के हैं, इसी तरह पुष्करवरसमुद्र के प्रदेश पुष्करवरद्वीप से छुए हुए है और उसी के हैं। पुष्करवरद्वीप और पुष्करवर-समुद्र के जीव मरकर कोई कोई उनमे उत्पन्न होते है और कोई कोई उनमे उत्पन्न नही भी होते हैं।

भगवन् ! पुष्करवरद्वीप पुष्करवरद्वीप क्यो कहलाता है ?

गौतम ! पुष्करवरद्वीप मे स्थान-स्थान पर यहा-वहा बहुत से पद्मवृक्ष, पद्मवन और पद्मवनखण्ड नित्य कुसुमित रहते है तथा पद्म और महापद्म वृक्षो पर पद्म और पु डरीक नाम के पल्योपम स्थिति वाले दो महर्द्धिक देव रहते है, इसलिए पुष्करवरद्वीप पुष्करवरद्वीप कहलाता है यावत् नित्य है।

भगवन् ! पुष्करवरद्वीप मे कितने चन्द्र उद्योत करते थे, करते हैं और करेंगे—इत्यादि प्रश्न करना चाहिए ?

गौतम ! एक सौ चवालीस चन्द्र और एक सौ चवालीस सूर्य पुष्करवरद्वीप मे प्रभासित होते हुए विचरते है। चार हजार बत्तीस (४०३२) नक्षत्र और बारह हजार छह सौ बहत्तर (१२६७२) महाग्रह है। छियानवें लाख चवालीस हजार चार सौ (९६४४४००) कोडाकोडी तारागण पुष्करवर-द्वीप में शोभित हुए, शोभित होते हैं और शोभित होगे।

मानुषोत्तरपर्वत की वक्तव्यता

१७६ (आ) पुक्खरवरदीवस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं माणुसुत्तरे नामं पव्वए पण्णत्ते, वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए, जे णं पुक्खरवरदीव दुहा विभयमाणे विभयमाणे चिट्ठइ, त जहा—अब्भितर-पुक्खरद्धं च बाहिरपुक्खरद्धं च।

अब्भितरपुक्खरद्धे णं भंते ! केवइयं चक्कवालेणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! अट्ठजोयण सयसहस्साइं चक्कवालविक्खभेणं—

कोडी बायालीसा तीसं दोण्णि य सया अगुणवण्णा।
पुक्खरवद्धपरिरओ एवं च मणुस्सखेत्तस्स ॥ १ ॥

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अब्भितरपुक्खरद्धे य अब्भितरपुक्खरद्धे य ?

गोयमा ! अब्भितरपुक्खरद्धेण माणुसुत्तरेणं पव्वएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते । से एएणट्ठेणं गोयमा ! अब्भितरपुक्खरद्धे य अब्भितरपुक्खरद्धे य । अदुत्तरं च णं जाव णिच्चे ।

अब्भितरपुक्खरद्धे णं भंते ! केवइया चंदा पभासिंसु ३, सा चेव पुच्छा जाव तारागणकोडिकोडीओ ? गोयमा !

बावत्तरिं च चंदा बावत्तरिमेव दिणकरा दित्ता ।
पुक्खरवरदीवड्ढे चरंति एते पभासेंता ॥ १ ॥
तिण्णि सया छत्तीसा छच्च सहस्सा महग्गहाणं तु ।
णक्खत्ताणं तु भवे सोलाइं दुवे सहस्साइं ॥ २ ॥
अडयाल सयसहस्सा बावीसं खलु भवे सहस्साइं ।
दोण्णि सया पुक्खरद्धे तारागण कोडिकोडीणं ॥ ३ ॥

१७६ (आ) पुष्करवरद्वीप के बहुमध्यभाग मे मानुषोत्तर नामक पर्वत है, जो गोल है और वलयकार सस्थान से सस्थित है। वह पर्वत पुष्करवरद्वीप को दो भागो मे विभाजित करता है—आभ्यन्तर पुष्करार्ध और बाह्य पुष्करार्ध।

भगवन् ! आभ्यन्तर पुष्करार्ध का चक्रवालविष्कभ कितना है और उसकी परिधि कितनी है?

गौतम ! आठ लाख योजन का उसका चक्रवालविष्कभ है और उसकी परिधि एक करोड, बयालीस लाख, तीस हजार, दो सौ उनपचास (१,४२,३०,२४९) योजन की है। मनुष्यक्षेत्र की परिधि भी यही है।

भगवन् ! आभ्यन्तर पुष्करार्ध आभ्यन्तर पुष्करार्ध क्यो कहलाता है ?

गौतम ! आभ्यन्तर पुष्करार्ध सब ओर से मानुषोत्तरपर्वत से घिरा हुआ है। इसलिये वह आभ्यन्तर पुष्करार्ध कहलाता है। दूसरी बात यह है कि वह नित्य है (अत यह अनिमित्तक नाम है।)

भगवन् ! आभ्यन्तर पुष्करार्ध मे कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, होते है और होगे, आदि वही प्रश्न तारागण कोडाकोडी पर्यन्त करना चाहिए।

गौतम ! बहत्तर चन्द्रमा और बहत्तर सूर्य प्रभासित होते हुए पुष्करवरद्वीपार्ध मे विचरण करते हैं ॥ १ ॥

छह हजार तीन सौ छत्तीस महाग्रह और दो हजार सोलह नक्षत्र गति करते है और चन्द्रादि से योग करते है ॥ २ ॥

अडतालीस लाख बावीस हजार दो सौ ताराओ की कोडाकोडी वहा शोभित होती थी, शोभित होती है और शोभित होगी ॥ ३ ॥

विवेचन—सब जगह तारा-परिमाण मे कोटी-कोटी से मतलब क्रोड (कोटि) ही समझना चाहिए। पूर्वाचार्यों ने ऐसी ही व्याख्या की है। क्योकि क्षेत्र थोडा है। अन्य आचार्य उत्सेधागुलप्रमाण से कोटिकोटि की सगति करते हैं। कहा है—

"कोडाकोडी सन्नंतरं तु मन्नंति केई थोवतया ।
अन्ने उस्सेहांगुलमाणं काऊण ताराणं" ।।१।। —वृत्ति

समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र) का वर्णन

१७७. (अ) समयखेत्ते णं भंते ! केवइयं आयामविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं एगा जोयणकोडी जाव अब्भिंतर पुक्खरद्धपरिरओ से भाणियव्वो जाव अउणपण्णे ।

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ—माणुसखेत्ते माणुसखेत्ते ?

गोयमा ! माणुस्सखेत्तेणं तिविहा मणुस्सा परिवसंति, तं जहा—कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवगा । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ माणुसखेत्ते माणुसखेत्ते ।

माणुसखेत्ते णं भंते ! कति चंदा पभासिसु वा ३, कइ सूरा तविंसु वा ३ ?

बत्तीसं चंदसयं बत्तीसं चेव सूरियाण सयं ।
सयलं मणुस्सलोयं चरेंति एए पभासेंता ।। १ ।।
एक्कारस य सहस्सा छप्पि य सोलसमहग्गहाणं तु ।
छच्च सया छण्णउया णक्खत्ता तिण्णि य सहस्सा ।। २ ।।
अडसीइ सयसहस्सा चत्तालीस सहस्स मणुयलोगंमि ।
सत्त य सया अणूणा तारागणकोडिकोडीणं ।। ३ ।।

सोभं सोभेंसु वा ३ ।

१७७ (अ) हे भगवन् ! समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र) का आयाम-विष्कंभ कितना और परिधि कितनी है ?

गौतम ! समयक्षेत्र आयाम-विष्कंभ से पैंतालीस लाख योजन का है और उसकी परिधि वही है जो आभ्यन्तर पुष्करवरद्वीप की कही है । अर्थात् एक करोड, बयालीस लाख, तीस हजार, दो सौ उनपचास योजन की परिधि है ।

हे भगवन् ! मनुष्यक्षेत्र, मनुष्यक्षेत्र क्यों कहलाता है ?

गौतम ! मनुष्यक्षेत्र मे तीन प्रकार के मनुष्य रहते हैं, यथा—कर्मभूमक, अकर्मभूमक और अन्तर्द्वीपक । इसलिए यह मनुष्यक्षेत्र कहलाता है ।

हे भगवन् ! मनुष्यक्षेत्र मे कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, प्रभासित होते है और प्रभासित होंगे ? कितने सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे ? आदि प्रश्न कर लेना चाहिए ।

गौतम ! समयक्षेत्र मे एक सौ बत्तीस चन्द्र और एक सौ बत्तीस सूर्य प्रभासित होते हुए सकल मनुष्यक्षेत्र में विचरण करते हैं ।। १ ।।

ग्यारह हजार छह सो सोलह महाग्रह यहा अपनी चाल चलते है और तीन हजार छह सो छियानवै नक्षत्र चन्द्रादिक के साथ योग करते है ।। २ ।।

अठासी लाख चालीस हजार सात सौ (८८४०७००) कोटाकोटी तारागण मनुष्यलोक मे शोभित होते थे, शोभित होते है और शोभित होगे ।। ३ ।।

१७७. (आ) एसो तारापिंडो सव्वसमासेण मणुयलोगम्मि ।
बहिया पुण ताराओ जिणेहिं भणिया असंखेज्जा ।।१।।
एवइयं तारग्गं जं भणियं माणुसम्मि लोगम्मि ।
चार कलुंबयापुप्फसंठियं जोइस चरइ ।।२।।
रवि-ससि-गह-नक्खत्ता एवइया आहिया मणुयलोए ।
जेसिं नामागोयं न पागया पन्नवेहिंति ।।३।।
छावट्ठि पिडगाइ चंदाइच्चा मणुयलोगम्मि ।
छप्पन्नं नक्खत्ता य होंति एक्केक्कए पिडए ।।५।।
छावट्ठि पिडगाइं महग्गहाणं तु मणुयलोगम्मि ।
छावत्तर गहसयं य होइ एक्केक्कए पिडए ।।६।।
चत्तारि य पंतीओ चंदाइच्चाण मणुयलोगम्मि ।
छावट्ठि य छावट्ठि य होइ य एक्केक्किया पंती ।।७।।
छप्पनं पंतीओ नक्खत्ताणं तु मणुयलोगम्मि ।
छावट्ठी छावट्ठी य होइ एक्केक्किया पंती ।।८।।
छावत्तरं गहाण पंतिसयं होई मणुयलोगम्मि ।
छावट्ठी छावट्ठी य होई एक्केक्किया पती ।।९।।
ते मेरु परियडता पयाहिणावत्तमंडला सव्वे ।
अणवट्ठिय जोगेहिं चंदा सूरा गहगणा य ।।१०।।

१७७ (आ) इस प्रकार मनुष्यलोक मे तारापिण्ड पूर्वोक्त सख्याप्रमाण है। मनुष्यलोक मे बाहर तारापिण्डो का प्रमाण जिनेश्वर देवो ने असख्यात कहा है। (असख्यात द्वीप समुद्र होने से प्रति द्वीप मे यथायोग सख्यात असख्यात तारागण हैं।) ।। १ ।।

मनुष्यलोक मे जो पूर्वोक्त तारागणो का प्रमाण कहा गया है वे सब ज्योतिष्क देवो के विमानरूप हैं, वे कदम्ब के फूल के आकार के (नीचे सक्षिप्त ऊपर विस्तृत उत्तानीकृत अर्धकवीठ के आकार के) है तथाविध जगत्-स्वभाव से गतिशील हैं ।। २ ।।

सूर्य, चन्द्र, गृह, नक्षत्र, तारागण का प्रमाण मनुष्यलोक मे इतना ही कहा गया है। इनके नाम-गोत्र (अन्वर्थयुक्त नाम) अनतिशायी सामान्य व्यक्ति कदापि नही कह सकते, अतएव इनको सर्वज्ञोपदिष्ट मानकर सम्यक् रूप से इन पर श्रद्धा करनी चाहिए ।। ३ ।।

दो चन्द्र और दो सूर्यों का एक पिटक होता है। इस मान से मनुष्यलोक मे चन्द्रो और सूर्यों के ६६-६६ (छियासठ-छियासठ) पिटक हैं। १ पिटक जम्बूद्वीप मे, २ पिटक लवणसमुद्र मे, ६ पिटक धातकीखण्ड में, २१ पिटक कालोदधि में और ३६ पिटक अर्धपुष्करवरद्वीप मे, कुल मिलाकर ६६ पिटक सूर्यों के और ६६ पिटक चन्द्रो के हैं ।। ४ ।।

मनुष्यलोक मे नक्षत्रो मे ६६ पिटक है। एक-एक पिटक में छप्पन-छप्पन नक्षत्र हैं ।। ५ ।।

मनुष्यलोक मे महाग्रहो के ६६ पिटक है। एक-एक पिटक मे १७६-१७६ महाग्रह हैं ।। ६ ।।

इस मनुष्यलोक मे चन्द्र और सूर्यों की चार-चार पक्तियां हैं। एक-एक पक्ति मे ६६-६६ चन्द्र और सूर्य हैं ।। ७ ।।

इस मनुष्यलोक मे नक्षत्रो की ५६ पक्तिया हैं। प्रत्येक पक्ति मे ६६-६६ नक्षत्र हैं ।। ८ ।।

इस मनुष्यलोक मे ग्रहो की १७६ पक्तिया है। प्रत्येक पक्ति मे ६६-६६ ग्रह हैं।

ये चन्द्र-सूर्यादि सब ज्योतिष्क मण्डल मेरुपर्वत के चारो ओर प्रदक्षिणा करते हैं। प्रदक्षिणा करते हुए इन चन्द्रादि के दक्षिण मे ही मेरु होता है, अतएव इन्हे प्रदक्षिणावर्तमण्डल कहा है। (मनुष्यलोकवर्ती सब चन्द्रसूर्यादि प्रदक्षिणावर्तमण्डल गति से परिभ्रमण करते है।) चन्द्र, सूर्य और ग्रहो के मण्डल अनवस्थित है (क्योकि यथायोग रूप से अन्य मण्डल पर ये परिभ्रमण करते रहते है।)

१७७. (इ) नक्खत्ततारगाण अवट्ठिया मंडला मुणेयव्वा ।
तेवि य पयाहिणा-वत्तमेव मेरुं अणुचरंति ।।११।।
रयणियरदिणयराण उड्ढे व अहे व संकमो णत्थि ।
मंडलसंकमण पुण अब्भितरबाहिरं तिरिए ।।१२।।
रयणियरदिणयराणं नक्खत्ताणं महग्गहाणं च ।
चारविसेसेण भवे सुहदुक्खविही मणुस्साणं ।।१३।।
तेसिं पविसंताणं तावक्खेत्तं तु वड्ढए नियमा ।
तेणेव कमेण पुणो परिहायई निक्खमंताणं ।।१४।।
तेसिं कलंबुयापुप्फसंठिया होई तावखेत्तपहा ।
अंतो य संकुया बाहिं वित्थडा चंदसूराणं ।।१५।।
केणं वड्ढइ चंदो परिहाणी केण होई चंदस्स ।
कालो वा जोण्हो वा केण अणुभावेण चंदस्स ।।१६।।
किण्हं राहुविमाणं निच्चं चंदेण होइ अविरहियं ।
चउरंगुलमप्पत्तं हिट्ठा चंदस्स तं चरइ ।।१७।।
बावट्ठिं बावट्ठिं दिवसे दिवसे उ सुक्कपक्खस्स ।
जं परिवड्ढेइ चंदो, खवेइ तं चेव कालेणं ।।१८।।

पन्नरसइभागेण य चंदं पन्नरसमेव तं वरइ ।
पन्नरसइभागेण य पुणो वि तं चेवतिक्कमइ ॥१९॥

एवं वड्ढइ चंदो परिहाणी एव होई चंदस्स ।
कालो वा जोण्हा वा तेणणुभावेण चंदस्स ॥२०॥

अंतो मणुस्सखेत्ते हवंति चारोवगा य उववण्णा ।
पंचविहा जोइसिया चंदा सूरा गहगणा य ॥२१॥

तेण परं जे सेसा चंदाइच्चगहतारनक्खत्ता ।
नत्थि गई न वि चारो अवट्ठिया ते मुणेयव्वा ॥२२॥

दो चंदा इह दीवे चत्तारि य सागरे लवणतोए ।
धायइसडे दीवे बारस चंदा य सूरा य ॥२३॥

दो दो जबुद्दीवे ससिसूरा दुगुणिया भवे लवणे ।
लावणिगा य तिगुणिया ससिसूरा धायइसंडे ॥२४॥

धायइसंडप्पभिई उद्दिट्ठ तिगुणिया भवे चंदा ।
आइल्ल चंदसहिया अणतराणंतरे खेत्ते ॥२५॥

रिक्खग्गहतारग्गं दीवसमुद्दे जहिच्छ से नाउ ।
तस्स ससीहिं गुणियं रिक्खग्गहतारगाण तु ॥२६॥

चंदाओ सूरस्स य सूरा चंदस्स अंतरं होइ ।
पन्नास सहस्साइ तु जोयणाणं अणूणाइ ॥२७॥

सूरस्स य सूरस्स य ससिणो ससिणो य अंतर होई ।
बहियाओ मणुस्सनगस्स जोयणाण सयसहस्स ॥२८॥

सूरंतरिया चंदा चंदतरिया य दिणयरा दित्ता ।
चित्ततरलेसागा सुहलेसा मंदलेसा य ॥२९॥

अट्ठासीइं च गहा अट्ठावीसं च होंति नक्खत्ता ।
एगससिपरिवारो एत्तो ताराण वोच्छामि ॥३०॥

छावट्ठिसहस्साइं नव चेव सयाइ पंचसयराइं ।
एगससिपरिवारो तारागणकोडिकोडीणं ॥३१॥

बहियाओ मणुस्सनगस्स चंदसूराण अवट्ठिया जोगा ।
चंदा अभीइजुत्ता सूरा पुण होंति पुस्सेहिं ॥३२॥

१७७ (इ) नक्षत्र और ताराओ के मण्डल अवस्थित हैं। अर्थात् ये नियतकाल तक एक मण्डल में रहते हैं। (किन्तु इसका मतलब यह नही कि ये विचरण नही करते), ये भी मेरुपर्वत के चारो ओर प्रदक्षिणावर्तमण्डल गति से परिभ्रमण करते है ॥ ११ ॥

चन्द्र और सूर्य का ऊपर और नीचे संक्रम नही होता (क्योकि ऐसा ही जगत् स्वभाव है ।)

इनका विचरण तिर्यक् दिशा मे सर्वआभ्यन्तरमण्डल से सर्वबाह्यमण्डल तक और सर्वबाह्यमण्डल से सर्वआभ्यन्तरमण्डल तक होता रहता है ।। १२ ।।

चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, महाग्रह और ताराओ की गतिविशेष से मनुष्यो के सुख-दुःख प्रभावित होते है ।। १३ ।।

सर्वबाह्यमण्डल से आभ्यन्तरमण्डल मे प्रवेश करते हुए सूर्य और चन्द्रमा का तापक्षेत्र प्रतिदिन क्रमशः नियम से आयाम की अपेक्षा बढता जाता है और जिस क्रम से वह बढता है उसी क्रम से सर्वाभ्यन्तरमण्डल से बाहर निकलने वाले सूर्य और चन्द्रमा का तापक्षेत्र प्रतिदिन क्रमश घटता जाता है ।। १४ ।।

उन चन्द्र-सूर्यों के तापक्षेत्र का मार्ग कदबपुष्प के आकार जैसा है । यह मेरु की दिशा मे सकुचित है और लवणसमुद्र की दिशा मे विस्तृत है ।। १५ ।।

भगवन् ! चन्द्रमा शुक्लपक्ष मे क्यो बढता है और कृष्णपक्ष में क्यो घटता है ? किस कारण से कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष होते है ? ।। १६ ।।

गौतम ! कृष्ण वर्ण का राहु-विमान चन्द्रमा से सदा चार अगुल दूर रहकर चन्द्रविमान के नीचे चलता है । (इस तरह चलता हुआ वह शुक्लपक्ष मे धीरे-धीरे चन्द्रमा को प्रकट करता है और कृष्णपक्ष मे धीरे-धीरे उसे ढक लेता है ।। १७ ।।

शुक्लपक्ष मे चन्द्रमा प्रतिदिन चन्द्रविमान के ६२ भाग प्रमाण बढता है और कृष्णपक्ष मे ६२ भाग प्रमाण घटता है । [यहा ६२ भाग का स्पष्टीकरण ऐसा करना चाहिए कि चन्द्रविमान के ६२ भाग करने चाहिए । इनमे से ऊपर के दो भाग स्वभावत आवार्य (आवृत होने योग्य) न होने से उन्हे छोड देना चाहिए । शेष ६० भागो को १५ से भाग देने पर चार-चार भाग प्राप्त होते है । ये चार-चार भाग ही यहा ६२ भाग का अर्थ समझना चाहिए । चूर्णिकार ने भी ऐसी ही व्याख्या की है । परम्परानुसार सूत्रव्याख्या करनी चाहिए स्व-बुद्धि से नही ।) ।। १८ ।।

चन्द्रविमान के पन्द्रहवे भाग को कृष्णपक्ष मे राहुविमान अपने पन्द्रहवे भाग से ढक लेता है और शुक्लपक्ष मे उसी पन्द्रहवें भाग को मुक्त कर देता है ।। १९ ।।

इस प्रकार चन्द्रमा की वृद्धि और हानि होती है और इसी कारण कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष होते है ।। २० ।।

मनुष्यक्षेत्र के भीतर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र एव तारा—ये पाच प्रकार के ज्योतिष्क गतिशील हैं ।। २१ ।।

अढाई द्वीप से आगे—(बाहर) जो पाच प्रकार के चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा है वे गति नही करते, (मण्डल गति से) विचरण नही करते अतएव अवस्थित (स्थित) है ।। २२ ।।

इस जम्बूद्वीप मे दो चन्द्र और दो सूर्य है । लवणसमुद्र मे चार चन्द्र और चार सूर्य हैं । धातकीखण्ड मे बारह चन्द्र और बारह सूर्य है ।। २३ ।।

जम्बूद्वीप मे दो चन्द्र और दो सूर्य है । इनसे दुगुने लवणसमुद्र मे है और लवणसमुद्र के चन्द्र-सूर्यों के तिगुने चन्द्र-सूर्य धातकीखण्ड मे हैं ।। २४ ।।

धातकीखण्ड के आगे के समुद्र और द्वीपो मे चन्द्रो और सूर्यों का प्रमाण पूर्व के द्वीप या समुद्र के प्रमाण से तिगुना करके उसमे पूर्व-पूर्व के सब चन्द्रो और सूर्यों को जोड देना चाहिए। (जैसे धातकीखण्ड मे १२ चन्द्र और १२ सूर्य कहे है तो कालोदधिसमुद्र मे इनसे तिगुने अर्थात् १२ × ३ = ३६ तथा पूर्व-पूर्व के—जम्बूद्वीप के २ और लवणसमुद्र के ४, कुल ६ जोडने पर ४२ चन्द्र और सूर्य कालोद समुद्र मे हैं। इसी विधि से आगे के द्वीप समुद्रो मे चन्द्रो और सूर्यों की सख्या का प्रमाण जाना जा सकता है ।। २५ ।।

जिन द्वीपो और समुद्रो मे नक्षत्र, ग्रह एव तारा का प्रमाण जानने की इच्छा हो तो उन द्वीपो और समुद्रो के चन्द्र सूर्यों के साथ—एक-एक चन्द्र-सूर्य परिवार से गुणा करना चाहिए। (जैसे लवण-समुद्र मे ४ चन्द्रमा हैं। एक-एक चन्द्र के परिवार मे २८ नक्षत्र है तो २८ को ४ से गुणा करने पर ११२ नक्षत्र लवणसमुद्र मे जानने चाहिए। एक-एक चन्द्र के परिवार मे ८८-८८ ग्रह हैं, ८८ × ४ = ३५२ ग्रह लवणसमुद्र मे जाने चाहिए। एक चन्द्र के परिवार मे छियासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोडाकोडी तारागण हैं तो इस राशि मे चार का गुणा करने पर दो लाख सडसठ हजार नौ सौ कोडाकोडी तारागण लवणसमुद्र मे हैं।) ।। २६ ।।

मनुष्यक्षेत्र के बाहर जो चन्द्र और सूर्य हैं, उनका अन्तर पचास-पचास हजार योजन का है। यह अन्तर चन्द्र से सूर्य का और सूर्य से चन्द्र का जानना चाहिए ।।२७।।

सूर्य से सूर्य का और चन्द्र से चन्द्र का अन्तर मानुषोत्तरपर्वत के बाहर एक लाख योजन का है ।।२८।।

(मनुष्यलोक से बाहर पक्तिरूप मे अवस्थित) सूर्यान्तरित चन्द्र और चन्द्रान्तरित सूर्य अपने अपने तेज.पु ज से प्रकाशित होते है। इनका अन्तर और प्रकाशरूप लेश्या विचित्र प्रकार की है। (अर्थात् चन्द्रमा का प्रकाश शीतल है और सूर्य का प्रकाश उष्ण है। इन चन्द्र सूर्यों का प्रकाश एक दूसरे से अन्तरित होने से न तो मनुष्यलोक की तरह अति शीतल या अति उष्ण होता है किन्तु सुख-रूप होता है) ।।२९।।

एक चन्द्रमा के परिवार मे ८८ ग्रह और २८ नक्षत्र होते है। ताराओ का प्रमाण आगे की गाथाओ मे कहते है ।।३०।।

एक चन्द्र के परिवार मे ६६ हजार ९ सौ ७५ कोडाकोडी तारे है ।।३१।।

मनुष्यक्षेत्र के बाहर के चन्द्र और सूर्य अवस्थित योग वाले हैं। चन्द्र अभिजित्‌नक्षत्र से और सूर्य पुष्यनक्षत्र से युक्त रहते है। (कही कही "अवट्ठिया तेया" ऐसा पाठ है, उसके अनुसार अवस्थित तेज वाले है, अर्थात् वहा मनुष्यलोक की तरह कभी अतिउष्णता और कभी अतिशीतलता नही होती है।) ।।३२।।

विवेचन—उक्त गाथाए स्पष्टार्थ वाली है। केवल १३वी गाथा मे जो कहा गया है कि इन चन्द्र सूर्य नक्षत्र ग्रह और ताराओ की चालविशेष से मनुष्यो के सुख-दु.ख प्रभावित होते हैं, इसका स्पष्टीकरण करते हुए वृत्तिकार लिखते है कि—मनुष्यो के कर्म सदा दो प्रकार के होते हैं—शुभवेद्य और अशुभवेद्य। कर्मों के विपाक (फल) के हेतु सामान्यतया पाच हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव। कहा है—

उदयक्खयखओवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिया ।
दव्वं खेत्तं कालं भावं भवं च संपप्प ॥१॥

अर्थात्—कर्मों के उदय, क्षय, क्षयोपशम और उपशम मे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव निमित्त होते हैं।

प्राय. शुभवेद्य कर्मों के विपाक मे शुभ द्रव्य-क्षेत्रादि सामग्री हेतुरूप होती है और अशुभवेद्य कर्मो के विपाक मे अशुभ द्रव्य-क्षेत्र आदि सामग्री कारणभूत होती है। इसलिए जब जिन व्यक्तियो के जन्मनक्षत्रादि के अनुकूल चन्द्रादि की गति होती है तब उन व्यक्तियो के प्राय· शुभवेद्य कर्म तथाविध विपाक सामग्री पाकर उदय मे आते है, जिनके कारण शरीर नीरोगता, धनवृद्धि, वैरोपशमन, प्रिय-सम्प्रयोग, कार्यसिद्धि आदि होने से सुख प्राप्त होता है। अतएव परम विवेकी बुद्धिमान् व्यक्ति किसी भी कार्य को शुभ तिथि नक्षत्रादि मे आरम्भ करते हैं, चाहे जब नही। तीर्थंकरो की भी आज्ञा है कि प्रवाजन (दीक्षा) आदि कार्य शुभक्षेत्र मे, शुभ दिशा मे मुख रखकर, शुभ तिथि नक्षत्र आदि मुहूर्त में करना चाहिए, जैसा कि पचवस्तुक ग्रन्थ मे कहा है—

एसा जिणाण आणा खेत्ताइया य कम्मुणो भणिया ।
उदयाइकारणं जं तम्हा सव्वत्थ जइयव्वं ॥१॥

अतएव छद्मस्थो को शुभ क्षेत्र और शुभ मुहूर्त का ध्यान रखना चाहिए। जो अतिशय ज्ञानी भगवन्त है वे तो अतिशय के बल से ही सविघ्नता या निर्विघ्नता को जान लेते हैं अतएव वे शुभ तिथि-मुहूर्तादि की अपेक्षा नही रखते। छद्मस्थो के लिए वैसा करना ठीक नही है। जो लोग यह कहते हैं कि भगवान् ने अपने पास प्रव्रज्या के लिए आये हुए व्यक्तियो के लिए शुभ तिथि आदि नही देखी, उनका यह कथन ठीक नही है। भगवान् तो अतिशय ज्ञानी हैं। उनका अनुकरण छद्मस्थो के लिए उचित नही है। अतएव शुभ तिथि आदि शुभ मुहूर्त मे कार्यारम्भ करना उचित है। उक्त रीति से ग्रहादि की गति मनुष्यो के सुख-दु ख मे निमित्तभूत होती है।

१७८ (अ) माणुसुत्तरे णं भंते ! पव्वए केवइयं उड्ढं उच्चत्तेणं ? केवइयं उव्वेहेणं ? केवइय मूले विक्खभेण ? केवइयं सिहरे विक्खंभेणं ? केवइय अतो गिरिपरिरएणं ? केवइय बाहिं गिरिपरिरएण ? केवइयं मज्झे गिरिपरिरएणं ? केवइयं उवरि गिरिपरिरएणं ?

गोयमा ! माणुसुत्तरे णं पव्वए सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि तीसे जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं, मूले दसबावीसे जोयणसए विक्खभेणं, मज्झे सत्ततेवीसे जोयणसए विक्खंभेणं, उवरि चत्तारिचउवीसे जोयणसए विक्खंभेणं, अंतो गिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी, बायालीसं च सयसहस्साइं तीसं च सहस्साइं, दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं। बाहिरगिरिपरिरएणं—एगा जोयणकोडी, बायालीसं च सयसहस्साइं छत्तीसं च सहस्साइं सत्तचोद्दसोत्तरे जोयणसए परिक्खेवेणं। मज्झे गिरिपरिरएणं—एगा जोयणाकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं चोत्तीसं च सहस्सा अट्ठतेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं। उवरि गिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं बत्तीसं च सहस्साइं नव य बत्तीसे जोयणसए परिक्खेवेणं। मूले विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए अंतो सण्हे मज्झे उदग्गे बाहिं दरिसणिज्जे ईसिं सण्णिसण्णे

सीहणिसाइ, अवद्धजवरासिसंठाणसंठिए सव्वजंबूणयामए अच्छे, सण्हे जाव पडिरूवे। उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहि य वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, वण्णओ दोण्हवि ।।

१७८. (अ) हे भगवन्! मानुषोत्तरपर्वत की ऊँचाई कितनी है? उसकी जमीन में गहराई कितनी है? वह मूल में कितना चौड़ा है? मध्य मे कितना चौडा है और शिखर पर कितना चौडा है? उसकी अन्दर की परिधि कितनी है? उसकी बाहरी परिधि कितनी है, मध्य मे उसकी परिधि कितनी है और ऊपर की परिधि कितनी है?

गौतम! मानुषोत्तरपर्वत १७२१ योजन पृथ्वी से ऊँचा है। ४३० योजन और एक कोस पृथ्वी मे गहरा है। यह मूल मे १०२२ योजन चौडा है, मध्य मे ७२३ योजन चौडा और ऊपर ४२४ योजन चौड़ा है।

पृथ्वी के भीतर की इसकी परिधि एक करोड बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनपचास (१,४२,३०,२४९) योजन है। बाह्यभाग में नीचे की परिधि एक करोड बयालीस लाख, छत्तीस हजार सात सौ चौदह (१,४२,३६,७१४) योजन है। मध्य मे एक करोड बयालीस लाख चौतीस हजार आठ सौ तेईस (१,४२,३४,८२३) योजन की है। ऊपर की परिधि एक करोड बयालीस लाख बत्तीस हजार नौ सौ बत्तीस (१,४२,३२,९३२) योजन की है।

यह पर्वत मूल में विस्तीर्ण, मध्य मे सक्षिप्त और ऊपर पतला (सकुचित) है। यह भीतर से चिकना है, मध्य मे प्रधान (श्रेष्ठ) और बाहर से दर्शनीय है। यह पर्वत कुछ बैठा हुआ है अर्थात् जैसे सिंह अपने आगे के दोनो पैरो को लम्बा करके पीछे के दोनो पैरो को सिकोडकर बैठता है, उस रीति से बैठा हुआ है। (शिर प्रदेश मे उन्नत और पिछले भाग मे निम्न निम्नतर है। इसी को और स्पष्ट करते हैं कि) यह पर्वत आधे यव की राशि के आकार में रहा हुआ है (उर्ध्व-अधोभाग से छिन्न और मध्यभाग मे उन्नत है)। यह पर्वत पूर्णरूप से जाबूनद (स्वर्ण) मय है, आकाश और स्फटिकमणि की तरह निर्मल है, चिकना है यावत् प्रतिरूप है। इसके दोनो ओर दो पद्मवरवेदिकाए और दो वनखण्ड इसे सब ओर से घेरे हुए स्थित है। दोनो का वर्णनक कहना चाहिए।

१७८. (आ) से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—माणुसुत्तरे पव्वए माणुसुत्तरे पव्वए?

गोयमा! माणुसुत्तरस्स णं पव्वयस्स अन्तो मणुया उप्पिं सुवण्णा बाहिं देवा। अदुत्तरं च ण गोयमा! माणुसुत्तरपव्वयं मणुया ण कयावि वीइवइंसु वा वीइवयंति वा वीइवइस्सति वा णण्णत्थ चारणेहिं वा विज्जाहरेहिं वा देवकम्मुणा वा वि, से तेणट्ठेणं गोयमा! ० अदुत्तरं च णं जाव णिच्चे त्ति। जावं च णं माणुसुत्तरे पव्वए तावं च ण अस्सिं लोए त्ति पवुच्चइ जावं च ण वासाइं वा वासधराइ वा ताव च णं अस्सिं लोए त्ति पवुच्चइ जाव च णं गेहाइं वा गेहावयणाइ वा तावं च ण अस्सिं लोए त्ति पवुच्चइ, जावं च णं गामाइ वा जाव रायहाणीइ वा तावं च णं अस्सिं लोए त्ति पवुच्चइ, जावं च णं अरहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा पडिवासुदेवा चारणा विज्जाहरा समणा समणीओ सावया सावियाओ मणुया पगइभद्दगा विणीया ताव च णं अस्सिं लोए त्ति पवुच्चइ।

जावं च णं समयाइ वा आवलियाइ वा आणपाणुइ वा थोवाइ वा लवाइ वा मुहुत्ताइ वा दिवसाइ वा अहोरत्ताइ वा पक्खाइ वा मासाइ वा उऊइ वा अयणाइ वा संवच्छराइ वा जुगाइ वा वाससयाइ वा वाससहस्साइ वा वाससयसहस्साइ वा पुव्वंगाइ वा पुव्वाइ वा तुडियंगाइ वा

एवं पुव्वे तुडिए अडडे अववे हूहुकए उप्पले पउमे णलिणे अच्छिणिउरे अउए पउए णउए चूलिया सीसपहेलिया जाव य सीसपहेलियंगेइ वा सीसपहेलियाइ वा पलिओवमेइ वा सागरोवमेइ वा अवसप्पिणीइ वा ओसप्पिणीइ वा तावं च णं अस्सि लोए पवुच्चइ ।

जावं च णं बादरे विज्जुकारे बायरे थणियसद्दे ताव च णं अस्सि लोए पवुच्चइ, जावं च णं बहवे ओराला बलाहका ससेयति संमुच्छंति वासं वासंति ताव च ण अस्सि लोए पवुच्चइ, जावं च णं बायरे तेउकाए तावं च णं अस्सि लोए पवुच्चइ, जावं च ण आगराइं वा नदीउइ वा निहीइ वा तावं च णं अस्सि लोएसि पवुच्चइ; जावं च णं अगडाइ वा णईत्ति वा ताव च णं अस्सि लोए जाव च णं चंदोवरागाइ वा सूरोवरागाइ वा चंदपरिएसाइ वा सूरपरिएसाइ वा पडिचंदाइ वा पडिसूराइ वा इंदधणूइ वा उदगमच्छेइ वा कपिहसियाइ वा तावं च णं अस्सि लोएत्ति पवुच्चइ । जावं च णं चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवाणं अभिगमण-णिग्गमण-वुड्ढि-णिव्वुड्ढि-अणवट्ठियसंठाणसठिई आघविज्ज इ तावं च णं अस्सि लोए पवुच्चइ ।।

१७८ (आ) हे भगवन् ! यह मानुषोत्तरपर्वत क्यो कहलाता है ?

गौतम ! मानुषोत्तर पर्वत के अन्दर-अन्दर मनुष्य रहते हैं, इसके ऊपर सुपर्णकुमार देव रहते है और इससे बाहर देव रहते है। गौतम ! दूसरा कारण यह है कि इस पर्वत के बाहर मनुष्य (अपनी शक्ति से) न तो कभी गये है, न कभी जाते है और न कभी जाएगे, केवल जघाचारण और विद्याचारण मुनि तथा देवो द्वारा सहरण किये मनुष्य ही इस पर्वत से बाहर जा सकते हैं। इसलिए यह पर्वत मानुषोत्तरपर्वत कहलाता है।[1] अथवा हे गौतम ! यह नाम शाश्वत होने से अनिमित्तिक है।

जहा तक यह मानुषोत्तरपर्वत है वही तक यह मनुष्य-लोक है (अर्थात् मनुष्यलोक मे ही वर्ष, वर्षधर, गृह आदि है इससे बाहर नही। आगे सर्वत्र ऐसा ही समझना चाहिए।)

जहा तक भरतादि क्षेत्र और वर्षधर पर्वत है वहा तक मनुष्यलोक है। जहा तक घर या दुकान आदि है वहा तक मनुष्यलोक है। जहा तक ग्राम यावत् राजधानी है, वहा तक मनुष्यलोक है। जहा तक अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, जघाचारण मुनि, विद्याचारण मुनि, श्रमण, श्रमणिया, श्रावक, श्राविकाए और प्रकृति से भद्र विनीत मनुष्य हैं, वहा तक मनुष्यलोक है।

जहा तक समय, आवलिका, आन-प्राण (श्वासोच्छ्वास), स्तोक (सात श्वासोच्छ्वास), लव (सात स्तोक), मुहूर्त, दिन, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु (दो मास), अयन (छ मास), सवत्सर (वर्ष,) युग (पाच वर्ष), सौ वर्ष, हजार वर्ष, लाख वर्ष, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटिताग, त्रुटित, इसी क्रम से अड्डु, अवव, हूहुक, उत्पल, पद्म, नलिन, अर्थनिकुर (अच्छिणेउर), अयुत, प्रयुत, नयुत, चूलिका, शीर्ष-प्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी और उत्सपिणी काल है, वहा तक मनुष्यलोक है।

जहा तक बादर विद्युत और बादर स्तनित (मेघगर्जन) है, जहा तक बहुत से उदार-बडे मेघ उत्पन्न होते हैं, सम्मूर्छित होते है (बनते-बिखरते हैं), वर्षा बरसाते है, वहा तक मनुष्यलोक है। जहा तक बादर तेजस्काय (अग्नि) है, वहा तक मनुष्यलोक है। जहा तक खान, नदियां और निधिया हैं, कुए, तालाब आदि है, वहा तक मनुष्यलोक है।

---

१ मनुष्याणामुत्तर—पर इति मानुषोत्तर। —वृत्ति

जहा तक चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, चन्द्रपरिवेष, सूर्यपरिवेष, प्रतिचन्द्र, प्रतिसूर्य, इन्द्रधनुष, उदक-मत्स्य और कपिहसित आदि हैं, वहा तक मनुष्यलोक है। जहा तक चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओ का अभिगमन, निर्गमन, चन्द्र की वृद्धि-हानि तथा चन्द्रादि की सतत गतिशीलता रूप स्थिति कही जाती है, वहा तक मनुष्यलोक है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे कहा गया है कि जहा तक भरतादि वर्ष (क्षेत्र), वर्षधर पर्वत, घर दुकान-मकान, ग्राम, नगर, राजधानी, अरिहतादि श्लाघ्य पुरुष, प्रकृतिभद्रिक विनीत मनुष्यादि, समय आदि का व्यवहार, विद्युत, मेघगर्जन, मेघोत्पत्ति, बादर अग्नि, खान, नदिया, निधियाँ, कुए-तालाब तथा आकाश मे चन्द्र-सूर्यादि का गमनादि है, वहा तक मनुष्यलोक है। इसका फलितार्थ यह है कि उक्त सब का अस्तित्व मनुष्यलोक मे ही है। मनुष्यलोक से बाहर उक्त सबका अस्तित्व नही है। मनुष्यलोक की सीमा करने वाला होने से मानुषोत्तरपर्वत, मानुषोत्तरपर्वत कहलाता है। मानुषोत्तरपर्वत से परे--बाहर की ओर उक्त सब पदार्थों और व्यवहारों का सद्भाव नही है।

प्रस्तुत सूत्र मे आये हुए कालचक्र के सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण आवश्यक है अत उसका सक्षेप मे निरूपण किया जाता है—

काल का सबसे सूक्ष्म अश, जिसका फिर विभाग न हो सके, वह समय कहा जाता है। इसकी सूक्ष्मता को समझाने के लिए शास्त्रकारो ने एक स्थूल उदाहरण दिया है। जैसे कोई तरुण, बलवान्, हृष्टपुष्ट, स्वस्थ और निपुण कलाकुशल दर्जी का पुत्र किसी जीर्ण-शीर्ण शाटिका (साडी) को हाथ मे लेते ही एकदम बिना हाथ फैलाये शीघ्र ही फाड देता है। देखने वालो को ऐसा प्रतीत होता है कि इसने पलभर मे साड़ी को फाड दिया है, परन्तु तत्त्वदृष्टि से उस साडी को फाडने मे असख्यात समय लगे है। साडी मे अगणित तन्तु है। ऊपर का तन्तु फटे बिना नीचे का तन्तु नही फट सकता है। अतएव यह मानना पडता है कि प्रत्येक तन्तु के फटने का काल अलग-अलग है। वह तन्तु भी कई रेशो से बना होता है। वे रेशे भी क्रम से ही फटते हैं। अतएव साडी के उपरितन तन्तु के उपरितन रेशे के फटने मे जितना समय लगा उससे भी बहुत सूक्ष्मतर समय कहा गया है।

जघन्ययुक्तासख्यात समयो की एक आवलिका होती है। सख्येय आवलिकाओ का एक उच्छ्वास होता है और सख्येय आवलिकाओ का एक नि श्वास होता है। एक उच्छ्वास और एक नि श्वास मिलकर एक आन-प्राण होता है। तात्पर्य यह है कि एक हृष्ट और नीरोग व्यक्ति श्रम और बुभुक्षा आदि से रहित अवस्था में स्वाभाविक रूप से जो श्वासोच्छ्वास लेता है, वह एक श्वासोच्छ्वास का काल आन-प्राण कहलाता है।[1] सात आन-प्राणो का एक स्तोक और सात स्तोको का एक लव

---

१ हट्ठस्स अणवगल्लस निरुवकिट्ठस्स जन्तुणो।
एगे उसासनीसासे एस पाणुत्ति वुच्चइ ॥१॥
सत्त पाणूणि से थोवे सत्त थोवाणि से लवे।
लवाण सत्तहत्तरिए एस मुहुत्ते वियाहिए ॥२॥
एगा कोडी सत्तट्ठी लक्खा सत्तत्तरी सहस्सा य।
दो य सया सोलहिया आवलियाण मुहुत्तम्मि ॥३॥
तिन्नि सहस्सा सत्त य सयाइ तेवत्तरि च ऊसासा।
एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणतणाणीहिं ॥४॥

होता है । ७७ लवो का एक मुहूर्त होता है । एक मुहूर्त में एक करोड सडसठ लाख सतत्तर हजार दो सौ सोलह (१,६७,७७,२१६) आवलिकाए होती हैं । एक मुहूर्त में तीन हजार सात सौ तिहत्तर (३७७३) उच्छ्वास होते है ।

तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र, पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्षो का एक मास, दो मास की एक ऋतु होती है । जैनसिद्धान्तानुसार प्रावृट्, वर्षा, शरद, हेमन्त, वसन्त और ग्रीष्म—ये छह ऋतुए हैं ।[1] आषाढ और श्रावण मास प्रावृट् ऋतु है, भाद्रपद-आश्विन वर्षाऋतु, कार्तिक-मृगशिर शरदऋतु, पौष-माघ हेमन्तऋतु, फाल्गुन-चैत्र वसन्तऋतु और वैशाख-ज्येष्ठ ग्रीष्मऋतु है ।

तीन ऋतुओ का एक अयन, दो अयन का एक सवत्सर (वर्ष), पाच सवत्सर का एक युग, वीस युग का सौ वर्ष ।

पूर्वाचार्यों ने एक अहोरात्र, एक मास और एक वर्ष में जितने उच्छ्वास होते हैं, उनका सकलन इन गाथाओ मे किया है—

एगं च सयसहस्सं ऊसासाण तु तेरस सहस्सा ।
नउयसएण अहिया दिवस-निसि होंति विन्नेया ।।१।।

मासे वि य उस्सासा लक्खा तित्तीस सहसपणनउइ ।
सत्त सयाइ जाणसु कहियाइं पुव्वसूरीहिं ।।२।।

चत्तारि य कोडीओ लक्खा सत्तेव होंति नायव्वा ।
अडयालीस सहस्सा चार सया होंति वरिसेणं ।।३।।

एक लाख तेरह हजार नौ सौ (१,१३,९००) उच्छ्वास एक दिन मे होते हैं । तेतीस लाख पचानवै हजार सात सौ (३३,९५,७००) उच्छ्वास एक मास मे होते है । चार करोड सात लाख अडतालीस हजार चार सौ (४,०७,४८,४००) उच्छ्वास एक वर्ष मे होते है । दस सौ वर्ष का हजार वर्ष और सौ हजार वर्ष का एक लाख वर्ष होते हैं । ८४ लाख वर्ष का एक पूर्वांग, ८४ लाख पूर्वांग का एक पूर्व होता है । ८४ लाख पूर्वों का एक त्रुटितांग, ८४ लाख त्रुटितांगो का एक त्रुटित,

८४ लाख त्रुटितो का एक अड्डांग,
८४ लाख अड्डांगो का एक अड्ड,
८४ लाख अड्डो का एक अववांग
८४ लाख अववांगों का एक अवव,
८४ लाख अववो का एक हूहुकांग,
८४ लाख हूहुकांगो का एक हूहुक,
८४ लाख हूहुको का एक उत्पलांग,
८४ लाख उत्पलांगों का एक उत्पल,
८४ लाख उत्पलो का एक पद्मांग,

---

१ "आषाढाद्या ऋतव इतिवचनात् । ये त्वभिदधति वसन्ताद्या ऋतव तदप्रमाणमवसातव्यम् जैनमतोत्तीर्णत्वात् ।"
—इति वृत्ति ।

८४ लाख पद्मागो का एक पद्म,
८४ लाख पद्मो का एक नलिनाग,
८४ लाख नलिनागो का एक अर्थनिकुराग,
८४ लाख अर्थनिकुरागो का एक नलिन,
८४ लाख नलिनो का एक अर्थनिकुर,
८४ लाख अर्थनिकुरो का एक अयुताग,
८४ लाख अयुतागो का एक अयुत,
८४ लाख अयुतो का एक प्रयुताग,
८४ लाख प्रयुतागो का एक प्रयुत,
८४ लाख प्रयुतो का एक नयुताग,
८४ लाख नयुतागो का एक नयुत,
८४ लाख नयुतो का एक चूलिकाग,
८४ लाख चूलिकागो की एक चूलिका,
८४ लाख चूलिकाओ का एक शीर्षप्रहेलिकाग,
८४ लाख शीर्षप्रहेलिकागो की एक शीर्षप्रहेलिका।

इस प्रकार समय से लगाकर शीर्षप्रहेलिकापर्यन्त काल ही गणित का विषय है। इससे आगे का काल उपमाओ से ज्ञेय होने से औपमिक है। पल्य की उपमा से ज्ञेय काल पल्योपम है और सागर की उपमा से ज्ञेय काल सागरोपम है। पल्योपम और सागरोपम का वर्णन पहले किया जा चुका है। दस कोडाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। दस कोडाकोडी सागरोपम का एक अवसर्पिणी काल होता है। इतने ही समय का एक उत्सर्पिणी काल होता है। एक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल अर्थात् बीस कोडाकोडी सागरोपम का एक कालचक्र होता है।

उक्त कालचक्र का व्यवहार मनुष्यलोक मे ही है। क्योकि कालद्रव्य मनुष्यक्षेत्र मे ही है।

वृत्तिकार ने अरिहतादि पाठ के बाद विद्युत्काय उदार बलाहक आदि पाठ की व्याख्या की है और इसके बाद समयादि की व्याख्या की है। इससे प्रतीत होता है कि वृत्तिकार के सामने जो प्रति थी उसमे इसी क्रम से पाठ का होना सभवित है। किन्तु क्रम का भेद है अर्थ का भेद नही है।

१७९ अंतो णं भते ! मणुस्सखेत्तस्स जे चंदिमसूरियगहगणनक्खत्ततारारूवा ते णं भंते ! देवा किं उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठितीया गतिरइया गइसमावण्णगा ?

गोयमा ! ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा णो कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा नो चारट्ठिईया गतिरतिया गतिसमावण्णगा उड्ढमुहकलंबुयपुप्फसठाणसंठिएहिं जोयणसाहस्सीएहिं तावखेत्तेहिं साहस्सीयाहिं बाहिरियाहिं वेउव्वियाहिं परिसाहिं महयाहयनट्टगीतवाइततंतीतालतुडिय-घणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा महया उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलसद्देणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा अच्छ य पव्वयरायं पयाहिणावत्तमंडलयारं मेरुं अणुपरियट्टंति ।

तेसिं णं भंते ! देवाणं इंदे चवइ से कहमिदाणिं पकरेंति ?

गोयमा ! ताहे चत्तारि पंच सामाणिया तं ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति जाव तत्थ अन्ने इंदे उववण्णे भवइ ।

इंदट्ठाणे णं भंते ! केवइयं कालं विरहिए उववएणं ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समय उक्कोसेणं छम्मासा ।

बहिया णं भंते ! मणुस्सखेत्तस्स जे चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवा ते णं भंते ! देवा किं उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठतीया गतिरतिया गतिसमावण्णगा ?

गोयमा ! ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा नो कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा, नो चारोववण्णगा चारट्ठिईया, नो गतिरतिया नो गतिसमावण्णगा पक्किट्टगसंठाणसठिएहिं जोयणसयसाहस्सिएहिं तावक्खेत्तेहिं साहस्सियाहि य बाहिराहिं वेउव्वियाहिं परिसाहिं महयाहयनट्टगीयवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा सुहलेस्सा सीयलेस्सा मंदलेस्सा मंदायवलेस्सा, चित्तंतरलेसागा, कूडा इव ठाणट्ठिया अण्णोण्णसमोगाढाहिं लेसाहिं ते पएसे सव्वओ समंता ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति ।

जया ण भते ! तेसिं देवाणं इंदे चयइ, से कहमिदाणिं पकरेंति ?

गोयमा ! जाव चत्तारि पंच सामाणिया त ठाणं उवसपज्जित्ताणं विहरंति जाव तत्थ अण्णे उववण्णे भवइ ।

इंदट्ठाणे णं भंते ! केवइयं कालं विरहओ उववाएणं ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्क समयं उक्कोसेणं छम्मासा ।

१७९ भदन्त ! मनुष्यक्षेत्र के अन्दर जो चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागण है, वे ज्योतिष्क देव क्या ऊर्ध्वविमानो मे (बारह देवलोक से ऊपर के विमानो मे) उत्पन्न हुए हैं या सौधर्म आदि कल्पो मे उत्पन्न हुए हैं या (ज्योतिष्क) विमानो मे उत्पन्न हुए है ? वे गतिशील हैं या गतिरहित हैं ? गति मे रति करने वाले हैं और गति को प्राप्त हुए है ?

गौतम ! वे देव ऊर्ध्वविमानो मे उत्पन्न हुए नही है, बारह देवकल्पो मे उत्पन्न हुए नही है, किन्तु ज्योतिष्क विमानो मे उत्पन्न हुए है । वे गतिशील है, स्थितिशील नही है, गति मे उनकी रति है और वे गतिप्राप्त हैं । वे ऊर्ध्वमुख कदम्ब के फूल की तरह गोल आकृति से सस्थित है हजारो योजन प्रमाण उनका तापक्षेत्र है, विक्रिया द्वारा नाना रूपधारी बाह्य पर्षदा के देवो से ये युक्त हैं । जोर से बजने वाले वाद्यो, नृत्यो, गीतो, वादित्रो, तत्री, ताल, त्रुटित, मृदग आदि की मधुर ध्वनि के साथ दिव्य भोगो का उपभोग करते हुए, हर्ष से सिंहनाद, बोल (मुख से सीटी बजाते हुए) और कलकल ध्वनि करते हुए, स्वच्छ पर्वतराज मेरु की प्रदक्षिणावर्त मडलगति से परिक्रमा करते रहते है ।

भगवन् ! जब उन ज्योतिष्क देवो का इन्द्र च्यवता है तब वे देव इन्द्र के विरह मे क्या करते है ?

गौतम ! चार-पाच सामानिक देव सम्मिलित रूप से उस इन्द्र के स्थान पर तब तक कार्यरत रहते हैं तब जक कि दूसरा इन्द्र वहा उत्पन्न हो ।

भगवन् ! इन्द्र का स्थान कितने समय तक इन्द्र की उत्पत्ति से रहित रहता है ?

गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक इन्द्र का स्थान खाली रहता है ।

भदन्त ! मनुष्यक्षेत्र से बाहर के चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा रूप ये ज्योतिष्क देव क्या ऊर्ध्वोपपन्न हैं, कल्पोपपन्न है, विमानोपपन्न हैं, गतिशील है या स्थिर है, गति मे रति करने वाले हैं और क्या गति प्राप्त हैं ?

गौतम ! वे देव ऊर्ध्वोपपन्नक नही हैं, कल्पोपपन्नक नही हैं, किन्तु विमानोपपन्नक हैं। वे गतिशील नही हैं, वे स्थिर है, वे गति मे रति करने वाले नही हैं, वे गति-प्राप्त नही है। वे पकी हुई ईट के आकार के हैं, लाखो योजन का उनका तापक्षेत्र है। वे विकुर्वित हजारो बाह्य परिषद् के देवो के साथ जोर से बजने वाले वाद्यो, नृत्यो, गीतो और वादित्रो की मधुर ध्वनि के साथ दिव्य भोगोपभोगो का अनुभव करते हैं। वे शुभ प्रकाश वाले हैं, उनकी किरणे शीतल और मद (मृदु) हैं, उनका आतप और प्रकाश उग्र नही है, विचित्र प्रकार का उनका प्रकाश है। कूट (शिखर) की तरह ये एक स्थान पर स्थित हैं। इन चन्द्रो और सूर्यों आदि का प्रकाश एक दूसरे से मिश्रित है। वे अपनी मिली-जुली प्रकाश किरणो से उस प्रदेश को सब ओर से अवभासित, उद्योतित, तपित और प्रभासित करते है।

भदत ! जब इन देवो का इन्द्र च्यवित होता है तो वे देव क्या करते है ?

गौतम ! यावत् चार-पाच सामानिक देव उसके स्थान पर सम्मिलित रूप से तब तक कार्यरत रहते है जब तक कि दूसरा इन्द्र वहा उत्पन्न हो।

भगवन् ! उस इन्द्र-स्थान का विरह कितने काल तक होता है ?

गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक इन्द्रस्थान इन्द्रोत्पत्ति से विरहित हो सकता है।

पुष्करोदसमुद्र की वक्तव्यता

१८०. (अ) पुखरवरं णं दीवं पुक्खरोदे णाम समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव संपरिक्खित्ताण चिट्ठइ। पुक्खरोदे णं भंते ! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेण पण्णत्ते ?

गोयमा ! संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेण संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

पुक्खरोदस्स णं समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तहेव सव्वं पुक्खरोदसमुद्दपुरत्थिमपेरंते वरुणवरदीवपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेण एत्थ ण पुक्खरोदस्स विजए नामं दारे पण्णत्ते, एवं सेसाणवि। दारंतरम्मि संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। पदेसा जीवा य तहेव।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ पुक्खरोदे पुक्खरोदे ?

गोयमा ! पुक्खरोदस्स णं समुद्दस्स उदगे अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फलिहवण्णाभे पगईए उदगरसेणं सिरिधर-सिरिप्पभा य दो देवा जाव महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसंति। से एतेणट्ठेणं जाव णिच्चे।

पुक्खरोदे णं भंते ! समुद्दे केवइया चंदा पभासिंसु वा ३ ? संखेज्जा चंदा पभासेंसु वा ३ जाव तारागणकोडीकोडीओ सोभेंसु वा ३ ।

१८० (अ) गोल और वलयाकार सस्थान से सस्थित पुष्करोद नाम का समुद्र पुष्करवरद्वीप को सब ओर से घेरे हुए स्थित है ।

भगवन् ! पुष्करोदसमुद्र का चक्रवालविष्कभ कितना है और उसकी परिधि कितनी है ?

गौतम ! सख्यात लाख योजन का उसका चक्रवालविष्कभ है और सख्यात लाख योजन की ही उसकी परिधि है । (वह पुष्करोद एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है ।)

भगवन् ! पुष्करोदसमुद्र के कितने द्वार है ?

गौतम ! चार द्वार हैं आदि पूर्ववत् कथन करना चाहिए यावत् पुष्करोदसमुद्र के पूर्वी पर्यन्त मे और वरुणवरद्वीप के पूर्वार्ध के पश्चिम मे पुष्करोदसमुद्र का विजयद्वार है (जम्बूद्वीप के विजयद्वार की तरह सब कथन करना चाहिए ।) यावत् राजधानी अन्य पुष्करोदसमुद्र मे कहनी चाहिए । इसी प्रकार शेष द्वारो का भी कथन कर लेना चाहिए ।

इन द्वारो का परस्पर अन्तर सख्यात लाख योजन का है । प्रदेशस्पर्श सबधी तथा जीवो की उत्पत्ति का कथन भी पूर्ववत् कह लेना चाहिए ।

भगवन् ! पुष्करोदसमुद्र, पुष्करोदसमुद्र क्यो कहा जाता है ?

गौतम ! पुष्करोदसमुद्र का पानी स्वच्छ, पथ्यकारी, जातिवत (विजातीय नही), हल्का, स्फटिकरत्न की आभा वाला तथा स्वभाव से ही उदकरस वाला (मधुर) है, श्रीधर और श्रीप्रभ नाम के दो महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले देव वहा रहते हैं । इससे उसका जल वैसे ही सुशोभित होता है जैसे चन्द्र-सूर्य और ग्रह-नक्षत्रो से आकाश सुशोभित होता है ।) इसलिए पुष्करोद, पुष्करोद कहलाता है यावत् वह नित्य होने से अनिमित्तिक नाम वाला भी है ।

भगवन् ! पुष्करोदसमुद्र मे कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, होते है और होगे आदि प्रश्न पूर्ववत् करना चाहिए ?

गौतम ! सख्यात चन्द्र प्रभासित होते थे, होते हैं और होगे आदि पूर्ववत् कथन करना चाहिए यावत् सख्यात कोटि-कोटि तारागण वहा शोभित होते थे, होते है और शोभित होगे ।

१८०. (आ) **पुक्खरोदे णं समुद्दे वरुणवरेणं दीवेणं सपरिक्खित्ते वट्टे वलयागारे जाव चिट्ठइ, तहेव समचक्कवालसंठिए ।**

केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं ? केवइयं परिक्खेवेण पण्णत्ते ?

गोयमा ! संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, पउमवरवेइयावणसंडवण्णओ । दारंतरं, पएसा, जीवा तहेव सव्व ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—वरुणवरे दीवे वरुणवरे दीवे ?

गोयमा ! वरुणवरे णं दीवे तत्थ-तत्थ देसे-देसे तहिं-तहिं बहुओ खुड्डा-खुड्डियाओ जाव बिलपंतियाओ अच्छाओ पत्तेयं-पत्तेयं पउमवरवेइयावनसडपरिक्खित्ताओ वारुणिवरोदगपडिहत्थाओ पासाईयाओ ४। तासु खुड्डा-खुड्डियासु जाव बिलपतियासु बहवे उप्पायपव्वया जाव ण हडहडगा सव्वफलियामया अच्छा तहेव वरुणवरुणप्पभा य एत्थ दो देवा महिड्डिया परिवसंति, से तेणट्ठेणं जाव णिच्चे। जोतिसं सव्वं संखेज्जगेणं जाव तारागणकोडीओ।

१८० (आ) गोल और वलयाकार पुष्करोद नाम का समुद्र वरुणवरद्वीप से चारो ओर से घिरा हुआ स्थित है। पूर्ववत् कथन करना चाहिए यावत् वह समचक्रवालसस्थान से सस्थित है।

भगवन् ! उसका चक्रवालविष्कभ और परिधि कितनी है ?

गौतम ! वरुणवरद्वीप का विष्कभ सख्यात लाख योजन का है और सख्यात लाख योजन की उसकी परिधि है। उसके सब ओर एक पद्मवरवेदिका और वनखण्ड है। पद्मवरवेदिका और वनखण्ड का वर्णन कहना चाहिए। द्वार, द्वारो का अन्तर, प्रदेश-स्पर्शना, जीवोत्पत्ति आदि सब पूर्ववत् कहना चाहिए।

भगवन् ! वरुणवरद्वीप, वरुणवरद्वीप क्यो कहा जाता है ?

गौतम ! वरुणवरद्वीप मे स्थान-स्थान पर यहा-वहा बहुत सी छोटी-छोटी बावडिया यावत् बिल-पक्तिया है, जो स्वच्छ है, प्रत्येक पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से परिवेष्टित है तथा श्रेष्ठ वारुणी के समान जल से परिपूर्ण है यावत् प्रासादिक दर्शनीय अभिरूप और प्रतिरूप है।

उन छोटी-छोटी बावड़ियो यावत् बिलपक्तियो मे बहुत से उत्पातपर्वत यावत् खडहडग है जो सर्वस्फटिकमय है, स्वच्छ है आदि वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। वहा वरुण और वरुणप्रभ नाम के दो महर्द्धिक देव रहते है, इसलिए वह वरुणवरद्वीप कहलाता है। अथवा वह वरुणवरद्वीप शाश्वत होने से उसका यह नाम भी नित्य और अनिमित्तिक है। वहा चन्द्र-सूर्यादि ज्योतिष्को की सख्या सख्यात-सख्यात कहनी चाहिए यावत् वहा सख्यात कोटीकोटी तारागण सुशोभित थे, हैं और होगे।

१८०. (इ) **वरुणवर ण दीवं वरुणोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव चिट्ठइ। समचक्कवालसंठाणसठिए, नो विसमचक्कवालसंठाणसंठिए। तहेव सव्व भाणियव्वं। विक्खंभपरिक्खेवो संखिज्जाइं जोयणसयसहस्साइं पउमवरवेइया वणसंडे दारंतरे य पएसा जीवा अट्ठो। गोयमा! वारुणोदस्स ण समुद्दस्स उदए से जहाणामए चदप्पभाइ वा मणिसिलागाइ वा वरसीधु-वरवारुणी-इ वा पत्तासवेइ वा पुप्फासवेइ वा चोयासवेइ वा फलासवेइ वा महुमेरएइ वा जाइप्पसन्नाइ वा खज्जूरसारेइ वा मुद्दियासारेइ वा कापिसायणाइ वा सुपक्कखोयरसेइ वा पभूयसंभारसंचिया पोसमाससतभिसयजोगवत्तिया निरुवहतमविसिट्ठदिन्नकालोवयारा सुधोया उक्कोसगमयपत्ता अट्ठपिट्ठ-निट्ठिया जंबूफलकालिवरप्पसन्ना आसला मासला पेसला ईसीओट्ठावलंबिणी ईसीतंबच्छिकरणी ईसी-वोच्छेया कडुआ, वण्णेणं उववेया, गंधेणं उववेया, रसेणं उववेया फासेणं उववेया आसायणिज्जा विस्सायणिज्जा पीणणिज्जा दप्पणिज्जा मयणिज्जा सव्विंदियगायपल्हायणिज्जा,**[1] **भवे एयारूवे सिया ?**

---

१ प्रस्तुत पाठ मे प्रतियो मे बहुत पाठभेद हैं। वृत्तिकार के व्याख्यात पाठ को मान्य करते हुए हमने मूलपाठ दिया है। अन्य प्रतियो मे 'अट्ठपिट्ठिणिट्ठिया' के आगे ऐसा पाठ भी है— [शेष अगले पृष्ठ पर]

णो इणट्ठे समट्ठे, वारुणस्स णं समुद्दस्स उदए एत्तो इट्ठतरे जाव उदए। से एएणट्ठेणं एवं वुच्चइ०। तत्थ णं वारुणि-वारुणकता देवा महिड्डिया जाव परिवसंति, से एएणट्ठेणं जाव णिच्चे।

वारुणिवरे णं दीवे कइ चंदा पभासिसु ३ ? सव्वं जोइससंखिज्जगेण णायव्वं।[1]

१८०. (इ) वरुणोद नामक समुद्र, जो गोल और वलयाकार रूप से सस्थित है, वरुणवरद्वीप को चारो ओर से घेरकर स्थित है। वह वरुणोदसमुद्र समचक्रवालसस्थान से सस्थित है, विषमचक्रवाल-सस्थान से सस्थित नही है इत्यादि सब कथन पूर्ववत् कहना चाहिए। विष्कभ और परिधि सख्यात लाख योजन की कहनी चाहिए। पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वार, द्वारान्तर, प्रदेशो की स्पर्शना, जीवोत्पत्ति और अर्थ सम्बन्धी प्रश्न पूर्ववत् कहना चाहिए।

[भगवन् ! वरुणोदसमुद्र, वरुणोदसमुद्र क्यो कहलाता है ?]

गौतम ! वरुणोदसमुद्र का पानी लोकप्रसिद्ध चन्द्रप्रभा नामक सुरा, मणिशलाकासुरा, श्रेष्ठ सीधुसुरा, श्रेष्ठ वारुणीसुरा, धातकीपत्रो का आसव, पुष्पासव, चोयासव, फलासव, मधु, मेरक, जातिपुष्प से वासित प्रसन्नासुरा, खजूर का सार, मृद्वीका (द्राक्षा) का सार, कापिशायनसुरा, भलीभाति पकाया हुआ इक्षु का रस, बहुत सी सामग्रियो से युक्त पौष मास मे सैकडो वैद्यो द्वारा तैयार की गई, निरुपहृत और विशिष्ट कालोपचार से निर्मित, पुन. पुन· धोकर उत्कृष्ट मादक शक्ति से युक्त, आठ बार पिष्ट (आटा) प्रदान से निष्पन्न, जम्बूफल कालिवर प्रसन्न नामक सुरा, आस्वाद वाली गाढ पेशल (मनोज्ञ), अति प्रकृष्ट रसास्वाद वाली होने से शीघ्र ही ओठ को छूकर आगे बढ जाने वाली, नेत्रों को कुछ-कुछ लाल करने वाली, इलायची आदि से मिश्रित होने के कारण पीने के बाद थोडी कटुक(तीखी) लगने वाली, वर्णयुक्त, सुगन्धयुक्त, सुस्पर्शयुक्त, आस्वादनीय, विशेष आस्वादनीय, धातुओ को पुष्ट करने वाली, दीपनीय (जठराग्नि को दीप्त करने वाली), मदनीय (काम पैदा करने वाली) एव सर्व इन्द्रियों और शरीर मे आह्लाद उत्पन्न करने वाली सुरा आदि होती है, क्या वैसा वरुणोदसमुद्र का पानी है ?

गौतम ! नही। वरुणोदसमुद्र का पानी इनसे भी अधिक इष्टतर, कान्ततर, प्रियतर, मनोज्ञतर और मनस्तुष्टि करने वाला है। इसलिए वह वरुणोदसमुद्र कहा जाता है। वहा वारुणि और वारुणकात नाम के दो देव महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले रहते है। इसलिए भी वह वरुणोदसमुद्र कहा जाता है। अथवा हे गौतम ! वरुणोदसमुद्र (द्रव्यापेक्षया) नित्य है, वह सदा था, है और रहेगा इसलिए उसका यह नाम भी शाश्वत होने से अनिमित्तिक है।

(अट्ठपिट्ठपुट्ठा मुरवइतवरकिमदिण्णकद्दमा कोपसन्ना अच्छा वरवारुणी अतिरसा जबूफलपुट्ठवण्णा सुजाता ईसिउट्ठावलबिणी अहियमधुरपेज्जा ईसीसिरत्तणेत्ता कोमलकवोलकरणी जाव आसादिया विसादिया अणि-हुयसलावकरणहरिसपीइजणणी सतोसतक विबोक्क-हाव-बिब्भम-विलास-वेल्ल-हल-गमणकरणी विरणम-धियसत्तजणणी य होइ सगाम देसकालेकयरणसमरपसरकरणी कढियाणविज्जुपयतिहिययाण मउयकरणी य होइ उववेसिया समाणा गति खलावेति य सयलमिवि सुभासवुप्पालिया समरभग्गवणोसहयारसुरभिरसदीविया सुगधा आसायणिज्जा विस्सायणिज्जा पीणणिज्जा दप्पणिज्जा मयणिज्जा सव्विदियगायपल्हायणिज्जा।)

१ 'सव्व जोइससखिज्जकेण णायव्व वारुणवरे ण दीवे कइ चदा पभासिसु वा ३' ऐसा प्रतियो मे पाठ है। सगति की दृष्टि से उक्त पाठ दिया गया है। —सम्पादक

भगवन् ! वरुणोदसमुद्र मे कितने चन्द्र प्रभासित होते थे, होते है और होगे—इत्यादि प्रश्न करना चाहिए।

गौतम ! वरुणोदसमुद्र मे चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, तारा आदि सब सख्यात-सख्यात कहने चाहिए।

क्षीरवरद्वीप और क्षीरोदसमुद्र

१८१ वारुणवरं ण दीव खीरवरे णाम दीवे वट्टे जाव चिट्ठइ। सव्व संखेज्जगं विक्खभो य परिक्खेवो य जाव अट्ठो। बहूओ खुड्डा-खुड्डियाओ वावीओ जाव सरसरपतियाओ खीरोदग पडिहत्थाओ पासाईयाओ ४। तासु ण खुड्डियासु जाव बिलपंतियासु बहवे उप्पायपव्वयगा० सव्वरयणामया जाव पडिरूवा। पुंडरीगपुक्खरदता एत्थ दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति; से एएणट्ठेण जाव णिच्चे जोतिसं सव्वं संखेज्ज।

खीरवर णं दीव खीरोए णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसठाणसठिए जाव परिक्खवित्ताण चिट्ठइ समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए, संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं विक्खभ-परिक्खेवो तहेव सव्व जाव अट्ठो। गोयमा ! खीरोयस्स णं समुद्दस्स उदगं[1] खडगुडमच्छंडियोववेए रण्णो चाउरतचक्कवट्टिस्स उवट्ठविए आसायणिज्जे विस्सायणिज्जे पीणणिज्जे जाव सव्विदियगाय-पल्हायणिज्जे जाव वण्णेणं उवचिए जाव फासेणं भवे एयारूवे सिया ?

णो इणट्ठे समट्ठे। खीरोदस्स ण से उदए एत्तो इट्ठयराए चेव जाव आसाएण पण्णत्ते। विमलविमलप्पभा एत्थ दो देवा महिड्ढिया जाव परिवसंति। से तेणट्ठेण, संखेज्जं चदा जाव तारा।

१८१ वर्तुल और वलयाकार क्षीरवर नामक द्वीप वरुणवरसमुद्र को सब ओर से घेर कर रहा हुआ है। उसका विष्कभ (विस्तार) और परिधि सख्यात लाख योजन की है आदि कथन पूर्ववत् कहना चाहिए यावत् नाम सम्बन्धी प्रश्न करना चाहिए। क्षीरवर नामक द्वीप मे बहुत-सी छोटी-छोटी बावडिया यावत् सरसरपक्तिया और बिलपक्तिया है जो क्षीरोदक से परिपूर्ण है यावत् प्रतिरूप है। पुण्डरीक और पुष्करदन्त नाम के दो महर्द्धिक देव वहा रहते हैं यावत् वह शाश्वत है। उस क्षीरवर नामक द्वीप मे सब ज्योतिष्को की सख्या सख्यात-सख्यात कहनी चाहिए।

उक्त क्षीरवर नामक द्वीप को क्षीरोद नामका समुद्र सब ओर से घेरे हुए स्थित है। वह वर्तुल और वलयाकार है। वह समचक्रवालसस्थान से सस्थित है, विषमचक्रवालसस्थान से नही।

---

१ अत्र एवभूतोऽपि पाठ दृश्यते प्रतिषु पर टीकाकारेण न व्याख्यात टीकामूलपाठयोर्महद्वैषम्यमत्रान्यत्रापि।

"से जहाणामए—सुउसुहीमारुपण्णअज्जुणतरुगणसरसपत्तकोमलअत्थिग्गत्तणग्गपोडगवरुच्छुचारिणीण लवगपत्तपुप्फपल्लवकक्कोलगमफल-रुक्खबहुगुच्छगुम्मकलियमलट्ठिमधुपयुरपिपपलीफलितवल्लिवरविवरचारिणीण अप्पोदगपीतसइरस समभूमिभागणिभयसुहोसियाण सुप्पेसियसुहात-रोगपरिवज्जिताणं णिरुवहयसरीराण कालप्पसविणीण बितियततियममप्पसूयाण अजणवरगवलवलयजलधरजच्चणरिट्ठभमरपभूयसमप्पभाण कुडदोहणाण बद्धत्थिपत्थुयाण रूढाण मधुमासकाले सगहनेहो अज्जचातुरक्केव होज्ज तासि खीरे मधुररस विवगच्छ-बहुदव्वसपउत्ते पत्तेय मदग्गिसुकढिए आउत्ते खडगुड ।

सख्यात लाख योजन उसका विष्कभ और परिधि है आदि सब वर्णन पूर्ववत् करना चाहिए यावत् नाम सम्बन्धी प्रश्न करना चाहिए कि क्षीरोद, क्षीरोद क्यो कहलाता है ?

गौतम ! क्षीरोदसमुद्र का पानी चक्रवर्ती राजा के लिये तैयार किये गये गोक्षीर (खीर) जो चतु स्थान-परिणाम परिणत है, शक्कर, गुड, मिश्री आदि से अति स्वादिष्ट बताई गई है, जो मदअग्नि पर पकायी गई है, जो आस्वादनीय, विस्वादनीय, प्रीणनीय यावत् सर्व-इन्द्रियो और शरीर को आह्लादित करने वाली है, जो वर्ण मे सुन्दर है यावत् स्पर्श से मनोज्ञ है। (क्या ऐसा क्षीरोद का पानी है ?)

गौतम ! नही, इससे भी अधिक इष्टतर यावत् मन को तृप्ति देने वाला है। विमल और विमलप्रभ नाम के दो महर्द्धिक देव वहा निवास करते है। इस कारण क्षीरोदसमुद्र क्षीरोदसमुद्र कहलाता है। उस समुद्र मे सब ज्योतिष्क चन्द्र से लेकर तारागण तक सख्यात-सख्यात हैं।

घृतवर, घृतोद, क्षोदवर, क्षोदोद की वक्तव्यता

१८२ (अ) खीरोदं ण समुद्द घयवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसठाणसठिए जाव चिट्ठइ समचक्कवालसठाणसठिए नो विसमचक्कवालसठाणसंठिए, संखेज्जविक्खभपरिक्खेवे०पएसा जाव अट्ठो।

गोयमा ! घयवरे ण दीवे तत्थ-तत्थ बहूओ खुड्डाखुड्डियाओ वावीओ जाव घयोदगपडिहत्थाओ उप्पायपव्वगा जाव खडहड० सव्वकचणमया अच्छा जाव पडिरूवा। कणयकणयप्पभा एत्थ दो देवा महिड्डिया, चदा संखेज्जा।

घयवर ण दीव घयोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसठाणसठिए जाव चिट्ठइ समचक्क० तहेव दार पदेसा जीवा य अट्ठो ? गोयमा ! घयोदस्स णं समुद्दस्स उदए—से जहाणामए पप्फुल्लसल्लइ-विमुक्कल कण्णियारसरसवसुविसुद्धकोरंटदामपिंडिततरस्सनिद्धगुणतेयदीवियनिरुवहयविसिट्ठसुन्दर-तरस्स सुजाय-दहिमथियतद्दिवसगहियणवणीयपडुवणावियमुक्कड्डिय उद्दावसज्जवीसदियस्स अहिय पीवर-सुरहिगंधमणहरमहुरपरिणामदरिसणिज्जस्स पत्थनिम्मलसुहोवभोगस्स सरयकालम्मि होज्ज गोघयवरस्स मंडए, भवे एयारूवे सिया ? णो तिणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! घयोदस्स ण समुद्दस्स एत्तो इट्ठतरे जाव अस्साएण पण्णत्ते, कंतसुकता एत्थ दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति, सेस तं चेव जाव तारागण कोडीकोडीओ।

१८२ (अ) वर्तुल और वलयाकार सस्थान-सस्थित घृतवर नामक द्वीप क्षीरोदसमुद्र को सब ओर से घेर कर स्थित है। वह समचक्रवालसस्थान वाला है, विषमचक्रवालसस्थान वाला नही है। उसका विस्तार और परिधि सख्यात लाख योजन की है। उसके प्रदेशो की स्पर्शना आदि से लेकर यह घृतवरद्वीप क्यो कहलाता है, यहा तक का वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।

गौतम ! घृतवरद्वीप में स्थान-स्थान पर बहुत-सी छोटी-छोटी बावडिया आदि है जो घृतोदक से भरी हुई हैं। वहा उत्पात पर्वत यावत् खडहड आदि पर्वत है, वे सर्वकचनमय स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। वहा कनक और कनकप्रभ नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। उसके ज्योतिष्को की संख्या संख्यात-संख्यात है।

उक्त घृतवरद्वीप को घृतोद नामक समुद्र चारों ओर से घेरकर स्थित है। वह गोल और वलय की आकृति से संस्थित है। वह समचक्रवालसंस्थान वाला है। पूर्ववत् द्वार, प्रदेशस्पर्शना, जीवोत्पत्ति और नाम का प्रयोजन सम्बन्धी प्रश्न कहने चाहिए।

गौतम ! घृतोदसमुद्र का पानी गोघृत के मंड (सार) के जैसा श्रेष्ठ है।[1] (घी के ऊपर जमे हुए थर को मंड कहते हैं) यह गोघृतमंड फूले हुए सल्लकी, कनेर के फूल, सरसों के फूल, कोरण्ट की माला की तरह पीले वर्ण का होता है, स्निग्धता के गुण से युक्त होता है, अग्निसंयोग से चमकवाला होता है, यह निरुपहत और विशिष्ट सुन्दरता से युक्त होता है, अच्छी तरह जमाये हुए दही को अच्छी तरह मथित करने पर प्राप्त मक्खन को उसी समय तपाये जाने पर, अच्छी तरह उकाले जाने पर उसे अन्यत्र न ले जाते हुए उसी स्थान पर तत्काल छानकर कचरे आदि के उपशान्त होने पर उस पर जो थर जम जाती, वह जैसे अधिक सुगन्ध से सुगन्धित, मनोहर, मधुर-परिणाम वाली और दर्शनीय होती है, वह पथ्यरूप, निर्मल और सुखोपभोग्य होती है, ऐसे शरत्कालीन गोघृतवरमंड के समान वह घृतोद का पानी होता है क्या, यह पूछने पर भगवान् कहते है— गौतम! वह घृतोद का पानी इससे भी अधिक इष्टतर यावत् मन को तृप्त करने वाला है। वहां कान्त और सुकान्त नाम के दो महर्द्धिक देव रहते है। शेष सब कथन पूर्ववत् करना चाहिए यावत् वहां संख्यात तारागण-कोटिकोटि शोभित होती थी, शोभित होती है और शोभित होगी।

१८२ (आ) घयोदं णं समुद्दं खोदवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव चिट्ठइ तहेव जाव अट्ठो।

खोयवरे णं दीवे तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं खुड्डा वावीओ जाव खोदोदगपडिहत्थाओ, उप्पाय-पव्वया, सव्ववेरुलियामया जाव पडिरूवा। सुप्पभमहप्पभा य दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति। से एएणट्ठेणं सव्वं जोतिसं तं चेव जाव तारागणकोडिकोडीओ।

खोयवरं णं दीवं खोदोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव संखेज्जाइं जोयण-सयसहस्साइं परिक्खेवेणं जाव अट्ठो।

गोयमा ! खोदोदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहाणामए—आसल-मासल-पसत्थ-वीसंत-निद्धसुकमाल-भूमिभागे सुच्छिन्ने सुकट्ठलट्ठविसिट्ठनिरुवहयाजीयवाविते-सुकासगपयत्तनिउणपरिकम्म-अणुपालिय-सुवुड्ढिवुड्ढाणं सुजाताणं लवणतणदोसवज्जियाणं णयाय-परिवड्ढियाणं निम्मातसुंदराणं रसेणं परिणय-मउपीणपोरभंगुरसुजायमहुररसपुप्फविरहियाणं उवद्दवविवज्जियाणं सीयपरिफासियाणं अभिणवतवग्गाणं अपालिताणं तिभायणिच्छोडियवाडगाणं अवणीतमूलाणं गंठिपरिसोहियाणं कुसलणरकप्पियाणं उव्वणं जाव पोंडियाणं बलवगणरजंतजन्तपरिगालितमेत्ताणं खोयरसे होज्जा वत्थपरिपूए चाउज्जातगसुवासिए अहियपत्थलहुए वण्णोववेए तहेव[2], भवे एयारूवे सिया ? णो तिणट्ठे समट्ठे। खोयोदस्स णं समुद्दस्स उदए एत्तो इट्ठतरए चेव जाव आसाएणं पण्णत्ते।

---

१. "घृतमण्डो घृतसार" —इति मूल टीकाकार

२. वृत्तिकारानुसारेण अयमेव पाठ सम्भाव्यते—
खोदोदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहाणामए—वरपुंडगाणं भेरण्डेक्खूण वा कालपोराणं अवणीयमूलाणं तिभायणि-च्छोडियवाडिगाणं गंठिपरिसोहियाणं वत्थपरिपूए चाउज्जायगसुवासिए अहियपत्थलहुए वण्णोववेए तहेव।

पुण्णभद्दमाणिभद्दा य (पुण्णपुण्णभद्दा य) इत्थ दुवे देवा जाव परिवसंति, सेसं तहेव। जोइसं संखेज्जं चंदा०।

१८२. (आ) गोल और वलयाकार क्षोदवर नाम का द्वीप घृतोदसमुद्र को सब ओर से घेरे हुए स्थित है, आदि वर्णन अर्थपर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिए। क्षोदवरद्वीप में जगह-जगह छोटी-छोटी बावड़िया आदि हैं जो क्षोदोदग (इक्षुरस) से परिपूर्ण है। वहां उत्पात पर्वत आदि हैं जो सर्ववैडूर्यरत्नमय यावत् प्रतिरूप है। वहा सुप्रभ और महाप्रभ नाम के दो महर्द्धिक देव रहते है। इस कारण यह क्षोदवरद्वीप कहा जाता है। यहा सख्यात-सख्यात चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागण कोटिकोटि हैं।

इस क्षोदवरद्वीप को क्षोदोद नाम का समुद्र सब ओर से घेरे हुए है। यह गोल और वलयाकार है यावत् सख्यात लाख योजन का विष्कभ और परिधि वाला है आदि सब कथन अर्थ सम्बन्धी प्रश्न तक पूर्ववत् जानना चाहिए। अर्थ इस प्रकार है— हे गौतम ! क्षोदोदसमुद्र का पानी जातिवत श्रेष्ठ इक्षुरस से भी अधिक इष्ट यावत् मन को तृप्ति देने वाला है। वह इक्षुरस स्वादिष्ट, गाढ़, प्रशस्त, विश्रान्त, स्निग्ध और सुकुमार भूमिभाग मे निपुण कृषिकार द्वारा काष्ठ के सुन्दर विशिष्ट हल से जोती गई भूमि मे जिस इक्षु का आरोपण किया गया है और निपुण पुरुष के द्वारा जिसका सरक्षण किया गया हो, तृणरहित भूमि मे जिसकी वृद्धि हुई हो और इससे जो निर्मल एव पककर विशेष रूप से मोटी हो गई हो और मधुररस से जो युक्त बन गई हो, शीतकाल के जन्तुओ के उपद्रव से रहित हो, ऊपर और नीचे की जड का भाग निकाल कर और उसकी गाँठो को भी अलग कर बलवंत बैलो द्वारा यत्र से निकाला गया हो तथा वस्त्र से छाना गया हो और चार प्रकार के—(दालचीनी, इलायची, केशर, कालीमिर्च) सुगधित द्रव्यो से युक्त किया गया हो, अधिक पथ्यकारी और पचने मे हल्का हो तथा शुभ वर्ण गध रस स्पर्श से समन्वित हो, ऐसे इक्षुरस के समान क्या क्षोदोद का पानी है ?' गौतम ! इससे भी अधिक इष्टतर यावत् मन को तृप्ति करने वाला है। पूर्णभद्र और माणिभद्र (पूर्ण और पूर्णभद्र) नाम के दो महर्द्धिक देव यहा रहते है। इस कारण यह क्षोदोदसमुद्र कहा जाता है। शेष कथन पूर्ववत् करना चाहिए यावत् वहा सख्यात-सख्यात चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागण-कोटि-कोटि शोभित थे, शोभित है और शोभित होगे।

नंदीश्वरद्वीप की वक्तव्यता

१८३. (क) खोदोद णं समुद्दं णंदीसरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए तहेव जाव परिक्खेवो। पउमवरवेदिआवणसंडपरिक्खित्ते। दारा दारंतरपएसे जीवा तहेव।

से केणट्ठेणं भंते० ?

गोयमा ! तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं बहूओ खुड्डाओ वावीओ जाव बिलपंतियाओ खोदोदग-पडिहत्थाओ उप्पायपव्वया सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! णंदीसरदीवस्स चक्कवालविक्खंभस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं चउद्दिसिं चत्तारि अंजणपव्वया पण्णत्ता। ते णं अंजणपव्वया चउरासीइजोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं एगमेगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं मूले साइरेगाइं धरणियले दसजोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, तओ अणंतरं च णं मायाए-मायाए पएसपरिहाणीए परिहायमाणा परिहायमाणा उवरिं एगमेगं जोयणसहस्सं

आयामविक्खंभेणं, मूले एक्कतीस जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए किंचिविसेसाहिया परिक्खेवेणं धरणियले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए देसूणे परिक्खेवेणं, सिहरतले तिण्णि जोयणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोयणसयं किंचिविसेसाहिया परिक्खेवेणं पण्णत्ता, मूले वित्थिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया, गोपुच्छसंठाणसंठिया सव्वंजणमया अच्छा जाव पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ता, पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता, वण्णओ।

तेसि णं अंजणपव्वयाणं उवरिं पत्तेय-पत्तेयं बहुसमरमणिज्जो भूमिभागो पण्णत्तो, से जहाणामए-आलिंगपुक्खरेइ वा जाव सयंति। तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं सिद्धायतणा एगमेगं जोयणसयं आयामेणं पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभसयसंनिविट्ठा, वण्णओ।

१८३ (क) क्षोदोदकसमुद्र को नदीश्वर नाम का द्वीप चारों ओर से घेर कर स्थित है। यह गोल और वलयाकार है। यह नन्दीश्वरद्वीप समचक्रवालविष्कंभ से युक्त है। परिधि आदि के कथन से लेकर जीवोपपाद सूत्र तक सब कथन पूर्ववत् कहना चाहिए।

भगवन्! नदीश्वरद्वीप के नाम का क्या कारण है?

गौतम! नदीश्वरद्वीप मे स्थान-स्थान पर बहुत-सी छोटी-छोटी बावडिया यावत् विलपंक्तिया हैं, जिनमे इक्षुरस जैसा जल भरा हुआ है। उसमे अनेक उत्पातपर्वत हैं जो सर्व वज्रमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है।

गौतम! दूसरी बात यह है कि नदीश्वरद्वीप के चक्रवालविष्कंभ के मध्यभाग मे चारो दिशाओ मे चार अजनपर्वत कहे गये है। वे अजनपर्वत चौरासी हजार योजन ऊचे, एक हजार योजन गहरे, मूल मे दस हजार योजन से अधिक लम्बे-चौडे, धरणितल मे दस हजार योजन लम्बे-चौडे है। इसके बाद एक-एक प्रदेश कम होते-होते ऊपरी भाग मे एक हजार योजन लम्बे-चौडे है। इनकी परिधि मूल मे इकतीस हजार छह सौ तेवीस योजन से कुछ अधिक, धरणितल मे इकतीस हजार छह सौ तेवीस योजन से कुछ कम और शिखर मे तीन हजार एक सौ बासठ योजन से कुछ अधिक है। ये मूल मे विस्तीर्ण, मध्य मे सक्षिप्त और ऊपर पतले है, अत गोपुच्छ के आकार के हैं। ये सर्वात्मना अजनरत्नमय है, स्वच्छ है यावत् प्रत्येक पर्वत पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से वेष्टित है। यहा पद्मवरवेदिका और वनखण्ड का वर्णनक कहना चाहिए।

उन अजनपर्वतो मे से प्रत्येक पर बहुत सम और रमणीय भूमिभाग है। वह भूमिभाग मृदग के मढे हुए चर्म के समान समतल है यावत् वहा बहुत से वानव्यन्तर देव-देविया निवास करते है यावत् अपने पुण्य-फल का अनुभव करते हुए विचरते है।

उन समरमणीय भूमिभागो के मध्यभाग में अलग-अलग सिद्धायतन हैं, जो एक सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौडे और बहत्तर योजन ऊँचे हैं, सैकडो स्तम्भो पर टिके हुए है आदि वर्णन सुधर्मसभा की तरह जानना चाहिए।

१८३ (ख) तेसि णं सिद्धायतणाणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता—देवदारे, असुरदारे, णागदारे, सुवण्णदारे। तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति,

तं जहा—देवे, असुरे, णागे, सुवण्णे। ते णं दारा सोलसजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं, तावइयं चेव पवेसेणं सेया वरकणग० वण्णओ जाव वणमाला।

तेसि णं दाराणं चउद्दिसिं चत्तारि मुहमंडवा पण्णत्ता। ते णं मुहमंडवा जोयणसयं आयामेणं पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं साइरेगाइं सोलसजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं वण्णओ।

तेसि णं मुहमंडवाणं चउद्दिसिं (तिदिसिं) चत्तारि (तिण्णि) दारा पण्णत्ता। ते णं दारा सोलसजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अट्ठजोयणाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेसं तं चेव जाव वणमालाओ। एवं पेच्छाघरमंडवा वि, तं चेव पमाणं जं मुहमंडवाणं दारा वि तहेव, णवरि बहुमज्झदेसे पेच्छाघरमंडवाणं अक्खाडगा मणिपेढियाओ अट्ठजोयणपमाणाओ सीहासणा अपरिवारा जाव दामा थूभाइं चउद्दिसिं तहेव णवरि सोलसजोयणप्पमाणा साइरेगाइं सोलसजोयणाइं उच्चा सेसं तहेव जाव जिणपडिमा। चेइयरुक्खा तहेव चउद्दिसिं तं चेव पमाणं जहा विजयाए रायहाणीए णवरि मणिपेढियाओ सोलसजोयणप्पमाणाओ। तेसिं णं चेइयरुक्खाणं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ अट्ठजोयण-विक्खंभाओ चउजोयणबाहल्लाओ महिंदज्झया चउसट्ठिजोयणुच्चा जोयणोव्वेधा जोयणविक्खंभा सेसं तं चेव।

एवं चउद्दिसिं चत्तारि णंदापुक्खरणीओ, णवरि खोयरस पडिपुण्णाओ जोयणसयं आयामेणं पन्नासं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णासं जोयणाइं उव्वेहेणं सेसं तं चेव। मणोगुलियाणं गोमाणसीण य अडयालीसं अडयालीसं सहस्साइं पुरच्छिमेणवि सोलस पच्चत्थिमेणवि सोलस दाहिणेणवि अट्ठ उत्तरेणवि अट्ठ साहस्सीओ तहेव सेसं उल्लोया भूमिभागा जाव बहुमज्झदेसभाए मणिपेढिया सोलस-जोयणा आयामविक्खंभेणं अट्ठजोयणाइं बाहल्लेणं तारिसं मणिपेढियाणं उप्पिं देवच्छंदगा सोलस-जोयणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं सोलसजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं सव्वरयणामया० अट्ठसयं जिणपडिमाणं सो चेव गमो जहेव वेमाणियसिद्धाययणस्स।

१८३. (ख) उन प्रत्येक सिद्धायतनो की चारो दिशाओं मे चार द्वार कहे गये है, उनके नाम है—देवद्वार, असुरद्वार, नागद्वार और सुपर्णद्वार। उनमे महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले चार देव रहते है, उनके नाम हैं—देव, असुर, नाग और सुपर्ण। वे द्वार सोलह योजन ऊँचे, आठ योजन चौडे और उतने ही प्रमाण के प्रवेश वाले है। ये सब द्वार सफेद है, कनकमय इनके शिखर है आदि वनमाला पर्यन्त सब वर्णन विजयद्वार के समान जानना चाहिए। उन द्वारो की चारो दिशाओ मे चार मुखमडप है। वे मुखमडप एक सौ योजन विस्तार वाले, पचास योजन चौडे और सोलह योजन से कुछ अधिक ऊँचे हैं। विजयद्वार के समान वर्णन कहना चाहिए।

उन मुखमडप की चारो (तीनो) दिशाओ मे चार (तीन) द्वार कहे गये हैं। वे द्वार सोलह योजन ऊँचे, आठ योजन चौडे और आठ योजन प्रवेश वाले है आदि वर्णन वनमाला पर्यन्त विजयद्वार तुल्य ही है।

इसी तरह प्रेक्षागृहमंडपो के विषय में भी जानना चाहिए। मुखमडपो के समान ही उनका प्रमाण है। द्वार भी उसी तरह के हैं। विशेषता यह है कि बहुमध्यभाग में प्रेक्षागृहमंडपो के अखाडे, (चौक) मणिपीठिका आठ योजन प्रमाण, परिवार रहित सिंहासन यावत् मालाए, स्तूप आदि चारों

दिशाओ में उसी प्रकार कहने चाहिए। विशेषता यह है कि वे सोलह योजन से कुछ अधिक प्रमाण वाले और कुछ अधिक सोलह योजन ऊँचे है। शेष उसी तरह जिनप्रतिमा पर्यन्त वर्णन करना चाहिए। चारो दिशाओ मे चैत्यवृक्ष हैं। उनका प्रमाण वही है जो विजया राजधानी के चैत्यवृक्षो का है। विशेषता यह है कि मणिपीठिका सोलह योजन प्रमाण है।

उन चैत्यवृक्षो की चारो दिशाओ मे चार मणिपीठिकाए है जो आठ योजन चौडी, चार योजन मोटी है। उन पर चौसठ योजन ऊँची, एक योजन गहरी, एक योजन चौडी महेन्द्रध्वजा है। शेष पूर्ववत्। इसी तरह चारो दिशाओ मे चार नदा पुष्करिणिया है। विशेषता यह है कि वे इक्षुरस से भरी हुई है। उनकी लम्बाई सौ योजन, चौडाई पचास योजन और गहराई पचास योजन है। शेष पूर्ववत्।

उन सिद्धायतनो मे प्रत्येक दिशा मे—पूर्वदिशा मे सोलह हजार, पश्चिम में सोलह हजार, दक्षिण मे आठ हजार और उत्तर मे आठ हजार—यो कुल ४८ हजार मनोगुलिकाए (पीठिकाविशेष) हैं और इतनी ही गोमानुषी (शय्यारूप स्थानविशेष) है। उसी तरह उल्लोक (छत, चन्देवा) और भूमिभाग का वर्णन जानना चाहिए। यावत् मध्यभाग मे मणिपीठिका है जो सोलह योजन लम्बी-चौडी और आठ योजन मोटी है। उन मणिपीठिकाओ के ऊपर देवच्छदक हैं जो सोलह योजन लम्बे-चौडे, कुछ अधिक सोलह योजन ऊँचे है, सर्वरत्नमय है। इन देवच्छदको मे १०८ जिन प्रतिमाए है। जिनका सब वर्णन वैमानिक की विजया राजधानी के सिद्धायतनो के समान जानना चाहिए।

१८३ (ग) तत्थ ण जे से पुरत्थिमिल्ले अजणपव्वए, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—

> **णंदुत्तरा, य णंदा, आणदा णदिवद्धणा।**
>
> **नदिसेणा अमोघा य गोथूभा य सुदंसणा॥**

ताओ ण णंदापुक्खरिणीओ एगमेग जोयणसयसहस्स आयामविक्खभेण, दस जोयणाइ उव्वेहेण अच्छाओ सण्हाओ पत्तेय पत्तेय पउमवरवेइयापरिक्खित्ताओ पत्तेय पत्तेय वणसडपरिक्खित्ताओ, तत्थ तत्थ जाव सोवाणपडिरूवगा, तोरणा।

तासि ण पुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं दहिमुहपव्वया चउसट्ठि जोयणसहस्साइ उड्ढं उच्चत्तेण एग जोयणसहस्सं उव्वेहेणं सव्वत्थ समा पल्लगसंठाणसंठिया दस जोयणसहस्साइ विक्खभेणं इक्कतीसं जोयणसहस्साइ छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं पण्णत्ता, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा। तहा पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइया० वणसंडवण्णओ। बहुसम० जाव आसयति सयंति। सिद्धायवणं चेव पमाण अजणपव्वएसु सच्चेव वत्तव्वया णिरवसेसं भाणियव्वं जाव अट्ठट्ठमग-लगा।

१८३ (ग) उनमे जो पूर्वदिशा का अजनपर्वत है, उसकी चारों दिशाओ मे चार नदा पुष्करिणिया हैं। उनके नाम हैं—नदुत्तरा, नदा, आनदा और नदिवर्धना। (नदिसेना, अमोघा, गोस्तूपा और सुदर्शना—ये नाम भी कही-कही कहे गये हैं।) ये नदा पुष्करिणिया एक लाख योजन की लम्बी-चौडी है, इनकी गहराई दस योजन की है। ये स्वच्छ हैं, श्लक्ष्ण हैं। प्रत्येक के आसपास चारो

और पद्मवरवेदिका और वनखड हैं। इनमे त्रिसोपान-पंक्तियां और तोरण है। उन प्रत्येक पुष्करिणियो के मध्यभाग मे दधिमुखपर्वत है जो चौसठ हजार योजन ऊँचे, एक हजार योजन जमीन मे गहरे और सब जगह समान है। ये पल्यक के आकार के हैं। दस हजार योजन की इनकी चौडाई है। इकतीस हजार छह सौ तेवीस योजन इनकी परिधि है। ये सर्वरत्नमय है, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप है। इनके प्रत्येक के चारो ओर पद्मवरवेदिका और वनखण्ड है। यहा इनका वर्णनक कहना चाहिए। उनमे बहुसमरमणीय भूमिभाग है यावत वहा बहुत वान-व्यन्तर देव-देविया बैठते है और लेटते है और पुण्यफल का अनुभव करते है। सिद्धायतनो का प्रमाण अजनपर्वत के सिद्धायतनो के समान जानना चाहिए, सब वक्तव्यता वैसी ही कहनी चाहिए यावत् आठ-आठ मगलों का कथन करना चाहिए।

१८३. (घ) तत्थ णं जे से दक्खिणिल्ले अजणपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

भद्दा य विसाला य कुमुया पुंडरिगिणो।
नदुत्तरा य नदा आनदा नदिवद्धणा॥

त चेव दहिमुहा पव्वया तं चेव पमाणं जाव सिद्धाययणा।

तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले अजणपव्वए तस्स ण चउद्दिसिं चत्तारि णंदा पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, त जहा—

णंदिसेणा अमोहा य गोथूभा य सुदंसणा।
भद्दा विसाला कुमुया पुडरिगिणी॥

त चेव सव्वं भाणियव्वं जाव सिद्धाययणा।

तत्थ ण जे से उत्तरिल्ले अंजणपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदा पुक्खरिणीओ तं जहा— विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिया। सेसं तहेव जाव सिद्धाययणा। सव्वा य चिय वण्णणा णायव्वा।

तत्थ ण बहवे भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया देवा चाउमासियासु पडिवयासु संवच्छरीएसु वा अण्णेसु बहुसु जिणजम्मण-निक्खमण-णाणुप्पत्ति-परिणिव्वाणमाइएसु सुभदेवकज्जेसु य देवसमुदएसु य देवसमिईसु य देवसमवाएसु य देवपओयणेसु य एगतओ सहिया समुवागया समाणा पमुइयपक्कीलिया अट्ठाहियारूवाओ महामहिमाओ करेमाणा पालेमाणा सुहंसुहेणं विहरति। कइलास-हरिवाहणा य तत्थ दुवे देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसति; से तेणट्ठेण गोयमा! जाव णिच्चा, जोइसं सखेज्जं।

१८३ (घ) उनमे जो दक्षिणदिशा का अजनपर्वत है, उसकी चारो दिशाओ मे चार नदा पुष्करिणिया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—भद्रा, विशाला, कुमुदा और पुडरीकिणी। (अथवा नदोत्तरा, नदा, आनन्दा और नदिवर्धना)। उसी तरह दधिमुख पर्वतो का वर्णन उतना ही प्रमाण आदि सिद्धायतन पर्यन्त कहना चाहिए।

दक्षिणदिशा के अजनपर्वत की चारो दिशाओ मे चार नदा पुष्करिणिया है। उनके नाम है— नदिसेना, अमोघा, गोस्तूपा और सुदर्शना। अथवा भद्रा, विशाला, कुमुदा और पुडरीकिणी। सिद्धायतन पर्यन्त सब कथन पूर्ववत् कहना चाहिए।

उत्तरदिशा के अजनपर्वत की चारों दिशाओ मे चार नदा पुष्करिणिया हैं। उनके नाम है— विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता। शेष सब वर्णन सिद्धायतन पर्यन्त पूर्ववत् जानना चाहिए।

उन सिद्धायतनो में बहुत से भवनपति, वान-व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव चातुर्मासिक प्रतिपदा आदि पर्व दिनो मे, सावत्सरिक उत्सव के दिनो मे तथा अन्य बहुत से जिनेश्वर देव के जन्म, दीक्षा, ज्ञानोत्पत्ति और निर्वाण कल्याणको के अवसर पर देवकार्यो मे, देव-मेलो मे, देवगोष्ठियो मे, देवसम्मेलनों मे और देवो के जीतव्यवहार सम्बन्धी प्रयोजनो के लिए एकत्रित होते हैं, सम्मिलित होते हैं और आनन्द-विभोर होकर महामहिमाशाली अष्टाह्निका पर्व मनाते हुए सुखपूर्वक विचरते हैं । कैलाश और हरिवाहन नाम के दो महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले देव वहा रहते हैं। इस कारण हे गौतम ! इस द्वीप का नाम नदीश्वरद्वीप है। अथवा द्रव्यापेक्षया शाश्वत होने से यह नाम शाश्वत और नित्य है। सदा से चला आ रहा है। यहा सब चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा संख्यात-सख्यात हैं।

१८४ नंदीस्सरवर णं दीव नंदीसरोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव सव्वं तहेव अट्ठो जो खोदोदगस्स जाव सुमणसोमणसभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया जाव परिवसंति, सेसं तहेव जाव तारग्ग।

१८४. उक्त नदीश्वरद्वीप को चारो ओर से घेरे हुए नदीश्वर नामक समुद्र है, जो गोल है एव वलयकार सस्थित है इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् (क्षोदोदकवत्) कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यहा सुमनस और सौमनसभद्र नामक दो महर्द्धिक देव रहते है। शेष सब वर्णन तारागण की सख्या पर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिए।

अरुणद्वीप का कथन

१८५. (अ) नंदीसरोदं समुद्दं अरुणे णामं दीवे वट्टे वलयागार जाव संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ। अरुणे ण भंते ! दीवे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए ? गोयमा ! समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए । केवइय समचक्कवालविक्खंभेणं संठिए ? संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेण संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेण पण्णत्ते। पउमवरवेदिया-वणसंड-दारा-दारंतरा तहेव संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं दारंतरं जाव अट्ठो वावीओ खोदोदगे पडिहत्थाओ उप्पायपव्वयगा सव्ववइरामया अच्छा; असोग-वीतसोगा य एत्थ दुवे देवा महिड्डिया जाव परिवसंति। से तेणट्ठेणं० जाव संखेज्ज सव्व।

१८५ (अ) नदीश्वर नामक समुद्र को चारो ओर से घेरे हुए अरुण नाम का द्वीप है जो गोल है और वलयाकार रूप से संस्थित है।

हे भगवन् ! अरुणद्वीप समचक्रवालविष्कभ वाला है या विषमचक्रवालविष्कभ वाला है ?

गौतम ! वह समचक्रवालविष्कभ वाला है, विषमचक्रवालविष्कभ वाला नही है।

भगवन् ! उसका चक्रवालविष्कभ कितना है ?

गौतम ! सख्यात लाख योजन उसका चक्रवालविष्कभ है और सख्यात लाख योजन उसकी परिधि है। पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वार, द्वारान्तर भी सख्यात लाख योजन प्रमाण है। इसी द्वीप का ऐसा नाम इस कारण है कि यहा पर बावड़िया इक्षुरस जैसे पानी से भरी हुई हैं। इसमे उत्पातपर्वत

हैं जो सर्ववज्रमय है और स्वच्छ है। यहा अशोक और वीतशोक नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। इस कारण से इसका नाम अरुणद्वीप है। यहा सब ज्योतिष्को की सख्या सख्यात जाननी चाहिए।

१८५ (आ) अरुणं णं दीव अरुणोदे णामं समुद्दे, तस्सवि तहेव परिक्खेवो अट्ठो, खोवोदगे, णवरिं सुभद्दसुमणभद्दा एत्थ दुवे देवा महिड्ढिया सेसं तहेव।

अरुणोदग समुद्दं अरुणवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए तहेव सखेज्जगं सव्वं जाव अट्ठो खोदोदगपडिहत्थाओ० उप्पायपव्वया सव्ववइरामया अच्छा। अरुणवरभद्द-अरुणवरमहाभद्द एत्थ दो देवा महिड्ढिया०। एवं अरुणवरोदेवि समुद्दे जाव देवा अरुणवर-अरुणमहावरा य एत्थ दो देवा, सेसं तहेव।

अरुणवरोदं णं समुद्द अरुणवरावभासे णाम दीवे वट्टे जाव देवा अरुणवरावभासभद्द-अरुणवरावभासमहाभद्दा य एत्थ दो देवा महिड्ढिया।

एवं अरुणवरावभासे समुद्दे णवर देवा अरुणवरावभासवर-अरुणवरावभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढिया।

कुण्डले दीवे कुंडलभद्द-कुंडलमहाभद्दा दो देवा महिड्ढिया। कुंडलोदे समुद्दे चक्खसुभ-चक्खुकंता एत्थ दो देवा महिड्ढिया।

कुंडलवरे दीवे कुण्डलवरभद्द-कुण्डलवरमहाभद्दा एत्थ णं दो देवा महिड्ढिया। कुंडलवरोदे समुद्दे कुण्डलवर-कुंडलवरमहावर एत्थ दो देवा महिड्ढिया।

कुंडलवरावभासे दीवे कुंडलवरावभासभद्द-कुंडलवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढिया। कुंडलवरोभासोदे समुद्दे कुंडलवरोभासवर-कुंडलवरोभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसति।

१८५ (आ) अरुणद्वीप को चारो ओर से घेरकर अरुणोद नाम का समुद्र अवस्थित है। उसका विष्कभ, परिधि, अर्थ, उसका इक्षुरस जैसा पानी आदि सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए। विशेषता यह है कि इसमे सुभद्र और सुमनभद्र नामक दो महर्द्धिक देव रहते है, शेष पूर्ववत् कहना चाहिए।

उस अरुणोदक नामक समुद्र को अरुणवर नाम का द्वीप चारो ओर से घेरकर स्थित है। वह गोल और वलयाकार सस्थान वाला है। उसी तरह सख्यात लाख योजन का विष्कभ, परिधि आदि जानना चाहिए। अर्थ के कथन मे इक्षुरस जैसे जल से भरी बावडिया, सर्ववज्रमय एवं स्वच्छ, उत्पात-पर्वत और अरुणवरभद्र एव अरुणवरमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव वहा निवास करते हैं आदि कथन करना चाहिए। इसी प्रकार अरुणवरोद नामक समुद्र का वर्णन भी जानना चाहिए यावत् वहा अरुणवर और अरुणमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष पूर्ववत्।

अरुणवरोदसमुद्र को अरुणवरावभास नाम का द्वीप चारो ओर से घेर कर स्थित है। वह गोल है यावत् वहा अरुणवरावभासभद्र एव अरुणवरावभासमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं।

इसी तरह अरुणवरावभाससमुद्र मे अरुणवरावभासवर एव अरुणवरावभासमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव वहा रहते हैं। शेष पूर्ववत्।

कुण्डलद्वीप में कुण्डलभद्र एव कुण्डलमहाभद्र नाम के दो देव रहते हैं और कुण्डलोदसमुद्र मे चक्षुशुभ और चक्षुकात नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

कुण्डलवरद्वीप मे कुण्डलवरभद्र और कुण्डलवरमहाभद्र नामक दो महर्द्धिक देव रहते हैं। कुण्डलवरोदसमुद्र मे कुण्डलवर और कुण्डलवरमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं।

कुण्डलवरावभासद्वीप मे कुण्डलवरावभासभद्र और कुण्डलवरावभासमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। कुण्डलवरावभासोदकसमुद्र मे कुण्डलवरोभासवर एव कुण्डलवरोभासमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते है। ये देव पल्योपम की स्थिति वाले है आदि वर्णन जानना चाहिए।

१८५ (इ) कुण्डलवरोभास ण समुद्दं रुचगे णाम दीवे वलयागार० जाव चिट्ठइ। किं समचक्कवाल० विसमचक्कवाल० ?

गोयमा ! समचक्कवाल० नो विसमचक्कवालसंठिए। केवइय चक्कवाल० पण्णत्ते ? सव्वट्ठ-मणोरमा एत्थ दो देवा, सेसं तहेव।

रुयगोवे णाम समुद्दे जहा खोदोदे समुद्दे सखेज्जाइ जोयणसयसहस्साइ चक्कवालविक्खंभेण, संखेज्जाइ जोयणसयसहस्साइ परिक्खेवेण। दारा, दारंतर वि संखेज्जाइं, जोइसं पि सव्वं सखेज्ज भाणियव्वं। अट्ठो वि जहेव खोदोदस्स णवरि सुमण-सोमणसा एत्थ दो देवा महिड्डिया तहेव। रुयगाओ आढत्तं असखेज्ज विक्खंभ परिक्खेवो दारा दारंतरं जोइस च सव्व असखेज्ज भाणियव्वं।

रुयवोग ण समुद्द रुयगवरे ण दीवे वट्टे रुयगवरभद्द-रुयगवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा। रुयगवरोदे रुयगवर-रुयगवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया।

रुयगवराभासे दीवे रुयगवरावभासभद्द-रुयगवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया। रुयगवरावभासे समुद्दे रुयगवरावभावसर-रुयगवरावभासमहावरा एत्थ दो देवा०।

हारद्दीवे। हारभद्द-हारमहाभद्दा दो देवा। हारसमुद्दे हारवर-हारवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया। हारवरदीवे हारवरभद्द-हारवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया। हारवरोए समुद्दे हारवर-हारवरमहावरा एत्थ दो देवा०। हारवरावभासे दीवे हारवरावभासभद्द-हारवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा०। हारवरावभासोए समुद्दे हारवरावभावर-हारवरावभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया।

एव सव्वेवि तिपडोयारा णेयव्वा जाव सूरवरावभोसोदे समुद्दे।
दीवेसु भद्दनामा वरनामा होंति उवहीसु।
जाव पच्छिमभावं च खोयवरादीसु सयंभूरमणपज्जन्तेसु॥
वावीओ खोवोदग पडिहत्थाओ पव्वया य सव्ववइरामया॥

१८५ (इ) कुण्डलवराभाससमुद्र को चारो ओर से घेरकर रुचक नामक द्वीप अवस्थित है, जो गोल और वलयाकार है।

भगवन् ! वह रुचकद्वीप समचक्रवालविष्कभ वाला है या विषमचक्रवालविष्कभ वाला है ।
गौतम ! समचक्रवालविष्कभ वाला है, विषमचक्रवालविष्कंभ वाला नही है ।

भगवन् ! उसका चक्रवालविष्कभ कितना है ? यहा से लगाकर सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये यावत् वहा सर्वार्थ और मनोरम नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं । शेष कथन पूर्ववत् । रुचकोदक नामक समुद्र क्षोदोद समुद्र की तरह सख्यात लाख योजन चक्रवालविष्कभ वाला, सख्यात लाख योजन परिधि वाला और द्वार, द्वारान्तर भी सख्यात लाख योजन वाले हैं । वहा ज्योतिष्को की सख्या भी सख्यात कहनी चाहिए । क्षोदोदसमुद्र की तरह अर्थ आदि की वक्तव्यता कहनी चाहिए । विशेषता यह है कि यहा सुमन और सौमनस नामक दो महर्द्धिक देव रहते हैं । शेष पूर्ववत् जानना चाहिए ।

रुचकद्वीप समुद्र से आगे के सब द्वीप समुद्रो का विष्कभ, परिधि, द्वार, द्वारान्तर, ज्योतिष्को का प्रमाण —ये सब असख्यात कहने चाहिए ।

रुचकोदसमुद्र को सब ओर से घेरकर रुचकवर नाम का द्वीप अवस्थित है, जो गोल है आदि कथन करना चाहिए यावत् रुचकवरभद्र और रुचकवरमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं । रुचकवरोदसमुद्र मे रुचकवर और रुचकवरमहावर नाम के दो देव रहते हैं, जो महर्द्धिक है ।

रुचकवरावभासद्वीप मे रुचकवरावभासभद्र और रुचकवरावभाससमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव रहते है । रुचकवरावभाससमुद्र मे रुचकवरावभासवर और रुचकवरावभासमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव है ।

हार द्वीप मे हारभद्र और हारमहाभद्र नाम के दो देव है । हारसमुद्र मे हारवर और हारवर-महावर नाम के दो महर्द्धिक देव है । हारवरद्वीप में हारवरभद्र और हारवरमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव है । हारवरोदसमुद्र मे हारवर और हारवरमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव है । हारवरावभासद्वीप मे हारवरावभासभद्र और हारवरावभासमहाभद्र नाम के दो महर्द्धिक देव है । हारवरावभासोदसमुद्र मे हारवरावभासवर और हारवरावभासमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं ।

इस तरह आगे सर्वत्र त्रिप्रत्यवतार और देवो के नाम उद्भावित कर लेने चाहिए । द्वीपो के नामो के साथ भद्र और महाभद्र शब्द लगाने से एव समुद्रो के नामो के साथ "वर" शब्द लगाने से उन द्वीपो और समुद्रो के देवो के नाम बन जाते हैं यावत् १ सूर्यद्वीप, २ सूर्यसमुद्र, ३ सूर्यवरद्वीप, ४ सूर्यवरसमुद्र, ५ सूर्यवराभासद्वीप और ६ सूर्यवरावभाससमुद्र मे क्रमश १ सूर्यभद्र और सूर्यमहाभद्र, २ सूर्यवर और सूर्यमहावर, ३ सूर्यवरभद्र और सूर्यवरमहाभद्र, ४ सूर्यवरवर और सूर्यवरमहावर, ५ सूर्यवरावभासभद्र और सूर्यवरावभासमहाभद्र, ६ सूर्यवरावभासवर और सूर्यवरावभासमहावर नाम के देव रहते हैं ।

क्षोदवरद्वीप से लेकर स्वयभूरमण तक के द्वीप और समुद्रो मे वापिकाए यावत् बिलपक्तिया इक्षुरस जैसे जल से भरी हुई हैं और जितने भी पर्वत हैं, वे सब सर्वात्मना वज्रमय हैं ।

१८५. (ई) देवदीवे दीवे दो देवा महिड्डिया देवभद्द-देवमहाभद्दा एत्थ०। देवोदे समुद्दे देववर-देवमहावरा एत्थ० जाव सयंभूरमणे दीवे सयंभूरमणभद्द-सयंभूरमणमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्डिया।

सयंभूरमणं णं दीवं सयंभूरमणोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं जाव अट्ठो ?

गोयमा ! सयंभूरमणोदए उदए अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फलिहवण्णाभे पगईए उदगरसेणं पण्णत्ते। सयंभूरमणवर-सयंभूरमणमहावरा एत्थ दो देवा महिड्डिया सेसं तहेव असंखेज्जाओ तारागण-कोडिकोडीओ सोभेंसु वा।

१८५ (ई) देवद्वीप नामक द्वीप मे दो महर्द्धिक देव रहते हैं—देवभद्र और देवमहाभद्र। देवोदसमुद्र मे दो महर्द्धिक देव है—देववर और देवमहावर यावत् स्वयभूरमणद्वीप मे दो महर्द्धिक देव रहते है—स्वयभूरमणभद्र और स्वयभूरमणमहाभद्र।

स्वयभूरमणद्वीप को सब ओर से घेरे हुए स्वयभूरमणसमुद्र अवस्थित है, जो गोल है और वलयाकार रहा हुआ है यावत् असख्यात लाख योजन उसकी परिधि है यावत् वह स्वयभूरमणसमुद्र क्यो कहा जाता है ?

गौतम ! स्वयभूरमणसमुद्र का पानी स्वच्छ है, पथ्य है, जात्य-निर्मल है, हल्का है, स्फटिकमणि की कान्ति जैसा है और स्वाभाविक जल के रस से परिपूर्ण है। यहा स्वयभूरमणवर और स्वयभूरमणमहावर नाम के दो महर्द्धिक देव रहते हैं। शेष कथन पूर्ववत् कहना चाहिए। यहा असख्यात कोडाकोडी तारागण शोभित होते थे, होते है और होगे।

विवेचन—द्वीप-समुद्रो का क्रम सम्बन्धी वर्णन इस प्रकार है—पहला द्वीप जम्बूद्वीप है। इसको घेरे हुए लवणसमुद्र है। लवणसमुद्र को घेरे हुए धातकीखण्ड है। धातकीखण्ड को घेरे हुए कालोद-समुद्र है। कालोदसमुद्र को सब ओर से घेरे पुष्करवरद्वीप है। पुष्करवरद्वीप को घेरे हुए वरुणसमुद्र है। वरुणसमुद्र को घेरे हुए क्षीरवरद्वीप है। क्षीरवरद्वीप को घेरे हुए घृतोदसमुद्र है। घृतोदसमुद्र को घेरे हुए क्षोदवरद्वीप है। क्षोदवरद्वीप को घेरे हुए क्षोदोदकसमुद्र है। क्षोदोदकसमुद्र को घेरे हुए नदीश्वरद्वीप है। नदीश्वरद्वीप के बाद नदीश्वरोदसमुद्र है। उसको घेरे हुए अरुण नामक द्वीप है, फिर अरुणोदसमुद्र है, फिर अरुणवरद्वीप, अरुणवरोदसमुद्र, अरुणवराभासद्वीप और अरुणवरावभाससमुद्र है। इस प्रकार अरुणद्वीप से त्रिप्रत्यवतार हुआ है। इन द्वीप समुद्रो के बाद जो शख, ध्वज, कलश, श्रीवत्स आदि शुभ नाम है, उन नाम वाले द्वीप और समुद्र है। ये सब त्रिप्रत्यवतार वाले हैं। अपान्तराल मे भुजगवर कुशवर और क्रौंचवर हैं तथा जितने भी हार-अर्धहार आदि शुभ नाम वाले आभरणो के नाम हैं, अजिन आदि जितने भी वस्तु-नाम हैं, कोष्ठ आदि जितने भी गंधद्रव्यो के नाम है, जलरुह, चन्द्रोद्योत आदि जितने भी कमल के नाम हैं, तिलक आदि जितने भी वृक्ष-नाम हैं, पृथ्वी, शर्करा-बालुका, उप्पल, शिला आदि जितने भी ३६ प्रकार के पृथ्वी के नाम हैं, नौ निधियों और चौदह रत्नो के, चुल्लहिमवान् आदि वर्षधर पर्वतों के, पद्म महापद्म आदि ह्रदो के, गगा-सिंधु आदि महानदियो के, अन्तरनदियो के, ३२ कच्छादि विजयो के, माल्यवन्त आदि वक्षस्कार पर्वतो के, सौधर्म आदि १२ जाति के कल्पो के, शक्र आदि दस इन्द्रों के, देवकुरु-उत्तरकुरु के, सुमेरुपर्वत के, शक्रादि सम्बन्धी आवास पर्वतों के, मेरुप्रत्यासन्न भवनपति आदि

के कूटो के, चुल्लहिमवान आदि के कूटो के, कृत्तिका आदि २८ नक्षत्रो के, चन्द्रो के और सूर्यों के जितने भी नाम हैं, उन नामों वाले द्वीप और समुद्र हैं। ये सब त्रिप्रत्यवतारवाले हैं। इसके बाद देवद्वीप देवोदसमुद्र है, अन्त के स्वयभूरमणद्वीप और स्वयभूरमणसमुद्र है।

जम्बूद्वीप आदि नामवाले द्वीपों की संख्या

१८६ (अ) केवइया णं भंते ! जंबुद्दीवा दीवा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा जंबुद्दीवा दीवा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता।

केवइया ण भंते ! लवणसमुद्दा समुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा लवणसमुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता। एवं धायइसंडावि। एवं जाव असंखेज्जा सूरदीवा नामधेज्जेहि य।

एगे देवे दीवे पण्णत्ते। एगे देवोदे समुद्दे पण्णत्ते। एगे नागे जक्खे भूए जाव एगे सयंभूरमणे दीवे, एगे सयंभूरमणसमुद्दे णामधेज्जेणं पण्णत्ते।

१८६ (अ) भगवन् जम्बूद्वीप नाम के कितने द्वीप हैं ?

गौतम ! जम्बूद्वीप नाम के असख्यात द्वीप कहे गये हैं।

भगवन् ! लवणसमुद्र नाम के समुद्र कितने कहे गये हैं ?

गौतम ! लवणसमुद्र नाम के असख्यात समुद्र कहे गये हैं। इसी प्रकार धातकीखण्ड नाम के द्वीप भी असख्यात है यावत् सूर्यद्वीप नाम के द्वीप असख्यात कहे गये है।

देवद्वीप नामक द्वीप एक ही है। देवोदसमुद्र भी एक ही है। इसी तरह नागद्वीप, यक्षद्वीप, भूतद्वीप, यावत् स्वयभूरमणद्वीप भी एक ही है। स्वयभूरमण नामक समुद्र भी एक है।

विवेचन—पूर्ववर्ती सूत्र मे द्वीप-समुद्रो के क्रम का कथन किया गया है। उसमे अरुणद्वीप से लगाकर सूर्यद्वीप तक त्रिप्रत्यवतार (अरुण, अरुणवर, अरुणवरावभास, इस तरह तीन-तीन) का कथन किया गया है। इसके पश्चात् त्रिप्रत्यवतार नही है। सूर्यद्वीप के बाद देवद्वीप देवोदसमुद्र, नागद्वीप नागोदसमुद्र, यक्षद्वीप यक्षोदसमुद्र, इस प्रकार से यावत् स्वयभूरमणद्वीप और स्वयभूरमणसमुद्र है।

समुद्रों के उदकों का आस्वाद

१८६ (आ) लवणस्स ण भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! लवणस्स उदए आइले, रइले, लिंदे, लवणे, कडुए, अपेज्जे बहूणं दुप्पय-चउप्पय-मिग-पसु-पक्खि-सरिसवाणं णण्णत्थ तज्जोणियाणं सत्ताणं।

कालोयस्स णं भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते !

गोयमा ! आसले पेसले कालए मासरासिवण्णाभे पगईए उदगरसेणं पण्णत्ते।

पुक्खरोदस्स णं भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए पण्णत्ते ? गोयमा ! अच्छे, जच्चे, तणुए फालिहवण्णाभे पगईए उदगरसेणं पण्णत्ते।

वरुणोदस्स णं भंते० ? गोयमा ! से जहाणामए पत्तासवेइ वा, चोयासवेइ वा, खज्जूरसारेइ वा, सुपक्कखोयरसेइ वा, मेरएइ वा, काविसायणेइ वा, चंदप्पभाइ वा, मणसिलाइ वा, वरसीधूइ वा, वरवारुणीइ वा, अट्ठपिट्ठपरिणिट्ठियाइ वा, जंबूफलकालिया वरप्पसण्णा उक्कोसमदपत्ता ईसि उट्ठावलंबिणो, ईसितंबच्छिकरणो, ईसिवोच्छेयकरणो, आसला मासला पेसला वण्णेणं उववेया जाव णो इणट्ठे समट्ठे, वरुणोदए इत्तो इट्ठतरे चेव अस्साएणं पण्णत्ते ।

खीरोदस्स णं भंते ! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! से जहाणामए चाउरंतचक्कवट्टिस्स चाउरक्के गोखीरे पज्जत्तमंदग्गिसुकढिए आउत्तरखण्डमच्छंडिओववेए वण्णेण उववेए जाव फासेणं उववेए, भवे एयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! खीरोयस्स० एत्तो इट्ठयरे जाव अस्साएणं पण्णत्ते ।

घयोदस्स ण से जहाणामए सारइयस्स गोघयवरस्स मंडे सल्लइकण्णियारपुप्फवण्णाभे सुकढिय-उदारसज्झवीसंदिए वण्णेणं उववेए जाव फासेण य उववेए--भवे एयारूवे ? णो इणट्ठे समट्ठे, एत्तो इट्ठयरो० ।

खोदोदस्स से जहाणामए उच्छूण जच्चपुंडयाण हरियालपिंडिएण भेरुंडुप्पणाण वा कालपेराण तिभागनिव्वडियवाडगाण बलवगणरजतपरिगालियमित्ताण जे य रसे होज्जा । वत्थपरिपूए चाउज्जतग-सुवासिए अहियपत्थे लहुए वण्णेण उववेए जाव भवे एयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे, एत्तो इट्ठयरे० । एव सेसगाणवि समुद्दाण भेदो जाव सयभूरमणस्स णवरि अच्छे जच्चे पत्थे जहा पुक्खरोदस्स ।

कइ ण भते ! समुद्दा पत्तेयरसा पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि समुद्दा पत्तेयरसा पण्णत्ता, त जहा—लवणोदे, वरुणोदे, खीरोदे, घओदए । कइ ण भंते ! समुद्दा पगईए उदगरसेण पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ समुद्दा पगईए उदगरसेण पण्णत्ता, तं जहा—कालोए, पुक्खरोए, सयंभूरमणे । अवसेसा समुद्दा उस्सण्णं खोयरसा पण्णत्ता समणाउसो !

१८६ (आ) भगवन् लवणसमुद्र के पानी का स्वाद कैसा है ?

गौतम ! लवणसमुद्र का पानी मलिन, रजवाला, शैवालरहित चिरसचित जल जैसा, खारा, कडुआ अतएव बहुसख्यक द्विपद-चतुष्पद-मृग-पशु-पक्षी-सरीसृपो के लिए पीने योग्य नही है, किन्तु उसी जल मे उत्पन्न और सवधित जीवो के लिये पेय है ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र के जल का आस्वाद कैसा है ?

गौतम ! कालोदसमुद्र के जल का आस्वाद पेशल (मनोज्ञ), मासल (परिपुष्ट करनेवाला), काला, उडद की राशि की कृष्णकाति जैसी कातिवाला है और प्रकृति से अकृत्रिम रस वाला है ।

भगवन् ! पुष्करोदसमुद्र का जल स्वाद मे कैसा है ?

गौतम ! वह स्वच्छ है, उत्तम जाति का है, हल्का है और स्फटिकमणि जैसी कातिवाला और प्रकृति से अकृत्रिम रस वाला है ।

भगवन् ! वरुणोदसमुद्र का जल स्वाद मे कैसा है ?

गौतम ! जैसे पत्रासव, त्वचासव, खजूर का सार, भली-भाति पकाया हुआ इक्षुरस होता है तथा मेरक-कापिशायन-चन्द्रप्रभा-मन शिला-वरसीधु-वरवारुणी तथा आठ बार पीसने से तैयार की गई जम्बूफल-मिश्रित वरप्रसन्ना जाति की मदिराए उत्कृष्ट नशा देने वाली होती है, ओठो पर लगते ही आनन्द देनेवाली, कुछ-कुछ आँखे लाल करनेवाली, शीघ्र नशा-उत्तेजना देने वाली होती है, जो आस्वाद्य, पुष्टिकारक एव मनोज्ञ हैं, शुभ वर्णादि से युक्त है, उसके जैसा वह जल है। इस पर गौतम पूछते है कि क्या वह जल उक्त उपमाओ जैसा ही है ? इस पर भगवान् कहते है कि, "नही" यह बात ठीक नही है, इससे भी इष्टतर वह जल कहा गया है।

भगवन् ! क्षीरोदसमुद्र का जल आस्वाद मे कैसा है ?

गौतम ! जैसे चातुरन्त चक्रवर्ती के लिए चतु स्थान-परिणत गोक्षीर (गाय का दूध) जो मदमद अग्नि पर पकाया गया हो, आदि और अन्त मे मिसरी मिला हुआ हो, जो वर्ण गध रस और स्पर्श से श्रेष्ठ हो, ऐसे दूध के समान वह जल है। यह उपमामात्र है, वह जल इससे भी अधिक इष्टतर है।

घृतोदसमुद्र के जल का आस्वाद शरदऋतु के गाय के घी के मड (सार-थर) के समान है जो सल्लकी और कनेर के फूल जैसा वर्णवाला है, भली-भाति गरम किया हुआ है, तत्काल नितारा हुआ है तथा जो श्रेष्ठ वर्ण-गध-रस-स्पर्श से युक्त है। यह केवल उपमामात्र है, इससे भी अधिक इष्ट घृतोदसमुद्र का जल है।

भगवन् ! क्षोदोदसमुद्र का जल स्वाद मे कैसा है ?

गौतम ! जैसे भेरुण्ड देश मे उत्पन्न जातिवत उन्नत पौण्ड्रक जाति का ईख होता है जो पकने पर हरिताल के समान पीला हो जाता है, जिसके पर्व काले है, ऊपर और नीचे के भाग को छोडकर केवल बिचले त्रिभाग को ही बलिष्ठ बैलो द्वारा चलाये गये यत्र से रस निकाला गया हो, जो वस्त्र से छाना गया हो, जिसमे चतुर्जातक—दालचीनी, इलायची, केसर, कालीमिर्च —मिलाये जाने से सुगन्धित हो, जो बहुत पथ्य, पाचक और शुभ वर्णादि से युक्त हो —ऐसे इक्षुरस जैसा वह जल है। यह उपमामात्र है, इससे भी अधिक इष्ट क्षोदोदसमुद्र का जल है।

इसी प्रकार स्वयभूरमणसमुद्र पर्यन्त शेष समुद्रो के जल का आस्वाद जानना चाहिए। विशेषता यह है कि वह जल वैसा ही स्वच्छ, जातिवत और पथ्य है जैसा कि पुष्करोद का जल है।

भगवन् ! कितने समुद्र प्रत्येक रस वाले कहे गये है ?

गौतम ! चार समुद्र प्रत्येक रसवाले है अर्थात् वैसा रस अन्य किसी दूसरे समुद्र का नही है। वे है—लवण, वरुणोद, क्षीरोद और घृतोद।

भगवन् ! कितने समुद्र प्रकृति से उदगरस वाले है ?

गौतम ! तीन समुद्र प्रकृति से उदग रसवाले है अर्थात् इनका जल स्वाभाविक पानी जैसा ही है। वे है—कालोद, पुष्करोद और स्वयभूरमण समुद्र।

आयुष्मन् श्रमण ! शेष सब समुद्र प्राय. क्षोदरस (इक्षुरस) वाले कहे गये है।

१८७. कइ णं भंते ! समुद्दा बहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ समुद्दा बहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता, तं जहा—लवणे, कालोए, सयंभूरमणे। अवसेसा समुद्दा अप्पमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता समणाउसो !

लवणे णं भंते ! समुद्दे कइमच्छजाइकुलजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सत्त मच्छजाइकुलकोडीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ।

कालोए णं भंते ! समुद्दे कइ मच्छजाइ पण्णत्ता ?

गोयमा ! नवमच्छकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता । सयंभूरमणे ण भंते ! समुद्दे कइमच्छजाइ० ?

गोयमा ! अद्धतेरसमच्छजाइकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ।

लवणे णं भंते ! समुद्दे मच्छाण केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं पंचजोयणसयाइं । एवं कालोए सत्तजोयणसयाइ । सयंभूरमणे जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जभागं उक्कोसेणं दस जोयणसयाइ ।

१८७ भगवन् ! कितने समुद्र बहुत मत्स्य-कच्छपो वाले है ?

गौतम ! तीन समुद्र बहुत मत्स्य-कच्छपो वाले हैं, उनके नाम हैं—लवण, कालोद और स्वयभूरमण समुद्र । आयुष्मन् श्रमण ! शेष सब समुद्र अल्प मत्स्य-कच्छपो वाले कहे गये हैं ।

भगवन् ! कालोदसमुद्र मे मत्स्यो की कितनी लाख जातिप्रधान कुलकोडियो की योनिया कही गई हैं ?

गौतम ! नव लाख मत्स्य-जातिकुलकोडी योनिया कही हैं ।

भगवन् ! स्वयभूरमणसमुद्र मे मत्स्यो की कितनी लाख जातिप्रधान कुलकोडियों की योनिया है ?

गौतम ! साढे बारह लाख मत्स्य-जातिकुलकोडी योनिया है ।

भगवन् ! लवणसमुद्र मे मत्स्यो के शरीर की अवगाहना कितनी बडी है ?

गौतम ! जघन्य से अगुल का असख्यात भाग और उत्कृष्ट पाच सौ योजन की उनकी अवगाहना है ।

इसी तरह कालोदसमुद्र मे (जघन्य अगुल का असख्यात भाग) उत्कृष्ट सात सौ योजन की अवगाहना है । स्वयभूरमणसमुद्र में मत्स्यो की जघन्य अवगाहना अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण है ।

१८८ केवइया णं भंते ! दीवसमुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जावइया लोगे सुभा णामा सुभा वण्णा जाव सुभा फासा, एवइया दीवसमुद्दा णामधेज्जेहिं पण्णत्ता ।

केवइया ण भंते ! दीवसमुद्दा उद्धारसमएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जावइया अड्ढाइज्जाणं सागरोवमाणं उद्धारसमया एवइया दीवसमुद्दा उद्धारसमएणं पण्णत्ता ।

दीवसमुद्दा णं भंते ! किं पुढविपरिणामा आउपरिणामा जीवपरिणामा पोग्गलपरिणामा ?

गोयमा ! पुढवीपरिणामावि, आउपरिणामावि, जीवपरिणामावि, पोग्गलपरिणामावि ।

दीवसमुद्देसु णं भंते ! सव्वपाणा, सव्वभूया, सव्वजीवा सव्वसत्ता पुढविकाइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववण्णपुव्वा ?

हंता गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो ।

इति दीवसमुद्दा समत्ता ।

१८८ भंते ! नामो की अपेक्षा द्वीप और समुद्र कितने नाम वाले हैं ?

गौतम ! लोक मे जितने शुभ नाम है, शुभ वर्ण है यावत् शुभ स्पर्श हैं, उतने ही नामो वाले द्वीप और समुद्र है ।

भंते ! उद्धारसमयो की अपेक्षा से द्वीप-समुद्र कितने है ?

गौतम ! अढाई सागरोपम के जितने उद्धारसमय है, उतने द्वीप और सागर हैं ।

भगवन् ! द्वीप-समुद्र पृथ्वी के परिणाम है, अप् के परिणाम है, जीव के परिणाम है तथा पुद्गल के परिणाम हैं ?

गौतम ! द्वीप-समुद्र पृथ्वीपरिणाम भी है, जलपरिणाम भी है, जीवपरिणाम भी हैं और पुद्गलपरिणाम भी है ।

भगवन् ! इन द्वीप-समुद्रो मे सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्व पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय के रूप मे पहले उत्पन्न हुए है क्या ?

गौतम ! हा, कईबार अथवा अनन्तबार उत्पन्न हो चुके हैं ।

इस तरह द्वीप-समुद्र की वक्तव्यता पूर्ण हुई ।

इन्द्रिय पुद्गल परिणाम

१८९. कइविहे णं भंते ! इंदियविसए पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे इंदियविसए पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदियविसए जाव फासिंदियविसए ।

सोइंदियविसए णं भंते ! पोग्गलपरिणामे कइविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुब्भिसद्दपरिणामे य दुब्भिसद्दपरिणामे य ।

एवं चक्खिंदियविसयादिएहिवि सुरूवपरिणामे य दुरूवपरिणामे य । एवं सुरभिगंधपरिणामे य दुरभिगंधपरिणामे य । एवं सुरसपरिणामे य दुरसपरिणामे य । एवं सुफासपरिणामे य दुफासपरिणामे य ।

से नूणं भंते ! उच्चावएसु सद्दपरिणामेसु उच्चावएसु रूवपरिणामेसु एवं गंधपरिणामेसु रसपरिणामेसु फासपरिणामेसु परिणममाणा पोग्गला परिणमंतीति वत्तव्वं सिया ? हंता गोयमा ! उच्चावएसु सद्दपरिणामेसु परिणममाणा पोग्गला परिणमंतीति वत्तव्वं सिया ।

से नूणं भंते ! सुब्भिसद्दा पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, दुब्भिसद्दा पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति ? हंता गोयमा ! सुब्भिसद्दा पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, दुब्भिसद्दा पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति ।

से नूणं भंते ! सुरूवा पोग्गला दुरूवत्ताए परिणमंति, दुरूवा पोग्गला सुरूवत्ताए परिणमंति ? हंता गोयमा ! एवं सुब्भिगंधा पोग्गला दुब्भिगंधत्ताए परिणमंति, दुब्भिगंधा पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति ? हंता गोयमा ! एवं सुफासा दुफासत्ताए० ? सुरसा दुरसत्ताए० ? हंता गोयमा !

१८९ भगवन् ! इन्द्रियों का विषयभूत पुद्गलपरिणाम कितने प्रकार का है ?

गौतम ! इन्द्रियों का विषयभूत पुद्गलपरिणाम पांच प्रकार का है, यथा—श्रोत्रेन्द्रिय का विषय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय का विषय ।

भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय का विषयभूत पुद्गलपरिणाम कितने प्रकार का है ?

गौतम ! दो प्रकार का है—शुभ शब्दपरिणाम और अशुभ शब्दपरिणाम । इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय आदि के विषयभूत पुद्गलपरिणाम भी दो-दो प्रकार के हैं—यथा सुरूपपरिणाम और कुरूपपरिणाम, सुरभिगंधपरिणाम और दुरभिगंधपरिणाम, सुरसपरिणाम एवं दुरसपरिणाम और सुस्पर्शपरिणाम एवं दुःस्पर्शपरिणाम ।

भगवन् ! उत्तम अधम शब्दपरिणामों में, उत्तम-अधम रूपपरिणामों में, इसी तरह गंधपरिणामों में, रसपरिणामों में और स्पर्शपरिणामों में परिणत होते हुए पुद्गल परिणत होते हैं- बदलते हैं—ऐसा कहा जा सकता है क्या ? (अवस्था के बदलने से वस्तु का बदलना कहा जा सकता है क्या ?)

हां, गौतम ! उत्तम-अधम रूप में बदलने वाले शब्दादि परिणामों के कारण पुद्गलों का बदलना कहा जा सकता है । (पर्यायों के बदलने पर द्रव्य का बदलना कहा जा सकता है ।)

भगवन् ! क्या उत्तम शब्द अधम शब्द के रूप में बदलते हैं ? अधम शब्द उत्तम शब्द के रूप में बदलते हैं क्या ?

गौतम ! उत्तम शब्द अधम शब्द के रूप में और अधम शब्द उत्तम शब्द के रूप में बदलते हैं ।

भगवन् ! क्या शुभ रूप वाले पुद्गल अशुभ रूप में और अशुभ रूप के पुद्गल शुभ रूप में बदलते हैं ?

हां, गौतम ! बदलते हैं । इसी प्रकार सुरभिगंध के पुद्गल दुरभिगंध के रूप में और दुरभिगंध के पुद्गल सुरभिगंध के रूप में बदलते हैं । इसी प्रकार शुभस्पर्श के पुद्गल अशुभस्पर्श के रूप में और अशुभस्पर्श वाले शुभस्पर्श के रूप में तथा इसी तरह शुभरस के पुद्गल अशुभरस के रूप में और अशुभरस के पुद्गल शुभरस में परिणत हो सकते हैं ।

देवशक्ति सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

१९० देवे णं भंते ! महिड्ढिए जाव महाणुभागे पुव्वामेव पोग्गलं खिवित्ता पभू तमेव अणुपरियट्टित्ताणं गिण्हित्तए ? हंता पभू ! से केणट्ठेणं एवं वुच्चइ देवे णं भंते ! महिड्ढिए जाव गिण्हित्तए ?

गोयमा ! पोग्गले खित्तेसमाणे पुव्वामेव सिग्घगई भवित्ता तओ पच्छा मंदगई भवइ, देवे ण महिड्ढिए जाव महाणुभागे पुव्वपि पच्छावि सिग्घे सिग्घगई (तुरिए तुरियगई) चेव, से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ।जाव अणुपरियत्ताणं गेण्हित्तए।

देवे ण भते ! महिड्ढिए बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पुव्वामेव बाल अच्छित्ता अभित्ता पभू गठित्तए ? नो इणट्ठे।समट्ठे।

देवे ण भते ! महिड्ढिए बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पुव्वामेव बाल अच्छित्ता अभित्ता पभू गठित्ता ? नो इणट्ठे समट्ठे।

देवे ण भते ! महिड्ढिए जाव महाणुभागे बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पुव्वामेव बाल अछेत्ता अभेत्ता पभू गठित्तए ? हता पभू। त चेव णं गंठिं छउमत्थे ण जाणइ, ण पासइ, एवं सुहुमं च ण गठिया।

देवे ण भते ! महिड्ढिए पुव्वामेव बाल अच्छेत्ता अभेत्ता पभू दीहीकरित्तए वा हस्सी-करित्तए वा ? नो इणट्ठे समट्ठे। एव चत्तारिवि गमा, पढमबिइयभंगेसु अपरियाइत्ता एगतरियगा अच्छेत्ता, अभेत्ता सेस तवेव। त चेव सिद्धं छउमत्थे ण जाणइ, ण पासइ। एवं सुहुम च ण दीहीकरेज्ज वा हस्सीकरेज्ज वा।

१९० भगवन् ! कोई महर्द्धिक यावत् महाप्रभावशाली देव (अपने गमन से) पहले किसी वस्तु को फेके और फिर वह गति करता हुआ उस वस्तु को बीच मे ही पकडना चाहे तो वह ऐसा करने मे समर्थ है ?

हा, गौतम ! वह ऐसा करने मे समर्थ हे।

भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि वह वैसा करने में समर्थ है ?

गौतम ! फेकी गई वस्तु पहले शीघ्रगति वाली होती है और बाद मे उसकी गति मन्द हो जाती है, जबकि उस महर्द्धिक और महाप्रभावशाली देव की गति पहले भी शीघ्र होती है और बाद मे भी शीघ्र होती है, इसलिए ऐसा कहा जाता है कि वह देव उस वस्तु को पकडने मे समर्थ है।

भगवन् ! कोई महर्द्धिक यावत् महाप्रभावशाली देव बाह्य पुद्गलो को ग्रहण किये बिना और किसी बालक को पहले छेदे-भेदे बिना उसके शरीर को साधने मे समर्थ है क्या ?

नही, गौतम ! ऐसा नही हो सकता ?

भगवन् ! कोई महर्द्धिक यावत् महाप्रभावशाली देव बाह्य पुद्गलो को ग्रहण करके परन्तु बालक के शरीर को पहले छेदे-भेदे बिना उसे साधने मे समर्थ है क्या ?

नही गौतम ! वह समर्थ नही है।

भगवन् ! कोई महर्द्धिक एवं महाप्रभावशाली देव बाह्य पुद्‌गलो को ग्रहण कर और बालक के शरीर को पहले छेद-भेद कर फिर उसे साधने मे समर्थ है क्या ?

हां, गौतम ! वह ऐसा करने मे समर्थ है । वह ऐसी कुशलता से उसे साधता है कि उस सधि-ग्रन्थि को छद्मस्थ न देख सकता है और न जान सकता है । ऐसी सूक्ष्म ग्रन्थि वह होती है ।

भगवन् ! कोई महर्द्धिक देव (बाह्य पुद्‌गलो को ग्रहण किये बिना) पहले बालक को छेदे-भेदे बिना बडा या छोटा करने मे समर्थ है क्या ?

गौतम ! ऐसा नही हो सकता । इस प्रकार चारो भग कहने चाहिए । प्रथम द्वितीय भगो मे बाह्य पुद्‌गलो का ग्रहण नही है और प्रथम भग मे बाल-शरीर का छेदन-भेदन भी नही है । द्वितीय भंग में छेदन-भेदन है । तृतीय भग मे बाह्य पुद्‌गलो का ग्रहण करना और बाल-शरीर का छेदन-भेदन करना नहीं है । चौथे भग मे बाह्य पुद्‌गलो का ग्रहण भी है और पूर्व मे बाल-शरीर का छेदन-भेदन भी है ।

इस छोटे-बड़े करने की सिद्धि को छद्‌मस्थ नही जान सकता और नही देख सकता । ह्रस्वी-करण और दीर्घीकरण की यह विधि बहुत सूक्ष्म होती है ।

ज्योतिष्क चन्द्र-सूर्याधिकार

१९१ अत्थि णं भंते ! चंदिमसूरियाण हिट्ठिपि तारारूवा अणु पि तुल्लावि, समंपि तारारूवा अणु पि तुल्लावि, उप्पिंपि तारारूवा अणु पि तुल्लावि ?

हंता, अत्थि ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—अत्थि ण चंदिमसूरियाण जाव उप्पिंपि तारारूवा अणु पि, तुल्लावि ?

गोयमा ! जहा जहा णं तेसिं देवाण तव-णियम-बम्भचेर-वासाइं उक्कडाइ उस्सियाइ भवंति तहा तहा णं तेसिं देवाणं एवं पण्णायइ अणुत्ते वा तुल्ले वा । से एएणट्ठेण गोयमा ! अत्थि ण चंदिमसूरियाणं उप्पिंपि तारारूवा अणु पि तुल्लावि० ।

एगमेगस्स णं चंदिम-सूरियस्स,

अट्ठासीइं च गहा, अट्ठावीसं च होइ नक्खत्ता ।
एक ससीपरिवारो एत्तो ताराणं वोच्छामि ।।१।।
छावट्ठि सहस्साइ नव चेव सयाइं पंच सयराइं ।
एक ससीपरिवारो तारागणकोडिकोडीण ।।२।।

१९१. भगवन् ! चन्द्र और सूर्यों के क्षेत्र की अपेक्षा नीचे रहे हुए जो तारा रूप देव है, वे क्या (द्युति, वैभव, लेश्या आदि की अपेक्षा) हीन भी है और बराबर भी हैं ? चन्द्र-सूर्यों के क्षेत्र की समश्रेणी मे रहे हुए तारा रूप देव, चन्द्र-सूर्यों से द्युति आदि मे हीन भी हैं और बराबर भी है ? तथा

जो तारा रूप देव चन्द्र और सूर्यों के ऊपर अवस्थित हैं, वे द्युति आदि की अपेक्षा हीन भी हैं और बराबर भी है ?

हा, गौतम ! कोई हीन भी हैं और कोई बराबर भी हैं।

भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि कोई तारादेव हीन भी हैं और कोई तारा-देव बराबर भी है ?

गौतम ! जैसे-जैसे उन तारा रूप देवो के पूर्वभव मे किये हुए नियम और ब्रह्मचर्यादि में उत्कृष्टता या अनुत्कृष्टता होती है, उसी अनुपात मे उनमे अणुत्व या तुल्यत्व होता है। इसलिए गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि चन्द्र-सूर्यों के नीचे, समश्रेणी मे या ऊपर जो तारा रूप देव है वे हीन भी है और बराबर भी है।

प्रत्येक चन्द्र और सूर्य के परिवार मे (८८) अठ्यासी ग्रह, अट्ठावीस (२८) नक्षत्र होते हैं और ताराओं की सख्या छियासठ हजार नौ सौ पचहत्तर (६६९७५) कोडाकोडी होती है।

१९२ जबुद्दीवे णं भते ! दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमताओ केवइयं अबाहाए जोइस चारं चरइ ?

गोयमा ! एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसं चार चरइ; एव दक्खिणि-ल्लाओ पच्चत्थिमिल्लाओ उत्तरिल्लाओ एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसं चार चरइ।

लोगंताओ णं भते ! केवइयं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एक्कारसहिं एक्कारेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते।

इमीसे ण भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ केवइयं अबाहाए सव्वहेट्ठिल्ले ताराख्वे चार चरइ ? केवइय अबाहाए सूरविमाणे चार चरइ ? केवइय अबाहाए चदविमाणे चारं चरइ ? केवइय अबाहाए सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ ?

गोयमा ! इमीसे ण रयणप्पभापुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तहिं णउएहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसं सव्वहेट्ठिल्ले ताराख्वे चारं चरइ। अट्ठहिं जोयणसएहिं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ। अट्ठहिं असीएहिं जोयणसएहिं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ। नवहिं जोयणसएहिं अबाहाए सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ।

सव्वहेट्ठिमिल्लाओ णं भंते ! ताराख्वाओ केवइयं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ ? केवइयं चंदविमाणे चारं चरइ ? केवइय अबाहाए सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ ?

गोयमा ! सव्वहेट्ठिल्लाओ णं दसहिं जोयणेहिं सूरविमाणे चारं चरइ। णउइए जोयणेहिं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ। दसुत्तरे जोयणसए अबाहाए सव्वोवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ।

सूरविमाणाओ भते ! केवइयं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ ? केवइयं सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चार चरइ ?

गोयमा ! सूरविमाणाओ णं असीए जोयणेहिं चंदविमाणे चार चरइ। जोयणसए अबाहाए सव्वोवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ।

चंदविमाणाओ णं भंते ! केवइयं अबाहाए सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ ?

गोयमा ! चंदविमाणाओ णं वीसाए जोयणेहिं अबाहाए सव्वउवरिल्ले ताराख्वे चारं चरइ। एवामेव सपुव्वावरेणं दसुत्तरसयजोयणबाहल्ले तिरियमसंखेज्जे जोइसविसए पण्णत्ते।

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कयरे णक्खत्ते सव्वब्भितरिल्लं चारं चरति ? कयरे णक्खत्ते सव्वबाहिरिल्लं चारं चरइ ? कयरे णक्खत्ते सव्वउवरिल्लं चारं चरइ ? कयरे णक्खत्ते सव्वब्भितरिल्लं चारं चरइ ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे अभीइनक्खत्ते सव्वब्भितरिल्ल चारं चरइ, मूले नक्खत्ते सव्वबाहिरिल्लं चारं चरइ, साइणक्खत्ते सव्वोवरिल्लं चारं चरइ, भरणीनक्खत्ते सव्वहेट्ठिल्लं चारं चरइ।

१९२ भगवन् ! जम्बूद्वीप मे मेरुपर्वत के पूर्व चरमान्त से ज्योतिष्कदेव कितनी दूर रहकर उसकी प्रदक्षिणा करते है ?

गौतम ! ग्यारह सौ इक्कीस (११२१) योजन दूरी से प्रदक्षिणा करते है। इसी तरह दक्षिण चरमान्त से, पश्चिम चरमान्त से और उत्तर चरमान्त से भी ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूरी से प्रदक्षिणा करते है।

भगवन् ! लोकान्त से कितनी दूरी पर ज्योतिष्कचक्र कहा गया है ?

गौतम ! ग्यारह सौ ग्यारह (११११) योजन पर ज्योतिष्कचक्र है।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के बहुसमरमणीय भूमिभाग से कितनी दूरी पर सबसे निचला तारारूप गति करता है ? कितनी दूरी पर सूर्यविमान गति करता है ? कितनी दूरी पर चन्द्रविमान चलता है ? कितनी दूरी पर सबसे ऊपरवर्ती तारा चलता है ?

गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के बहुसमरमणीय भूमिभाग से ७९० योजन दूरी पर सबसे निचला तारा गति करता है। आठ सौ (८००) योजन दूरी पर सूर्यविमान चलता है। आठ सौ अस्सी (८८०) योजन पर चन्द्रविमान चलता है। नौ सौ (९००) योजन दूरी पर सबसे ऊपरवर्ती तारा गति करता है।

भगवन् ! सबसे निचले तारा से कितनी दूर सूर्य का विमान चलता है ? कितनी दूरी पर चन्द्र का विमान चलता है ? कितनी दूरी पर सबसे ऊपर का तारा चलता है ?

गौतम ! सबसे निचले तारा से दस योजन दूरी पर सूर्यविमान चलता है, नब्बे योजन दूरी पर चन्द्रविमान चलता है। एक सौ दस योजन दूरी पर सबसे ऊपर का तारा चलता है।

भगवन् ! सूर्यविमान से कितनी दूरी पर चन्द्रविमान चलता है ? कितनी दूरी पर सर्वोपरि तारा चलता है ?

गौतम ! सूर्यविमान से अस्सी योजन की दूरी पर चन्द्रविमान चलता है और एक सौ योजन ऊपर सर्वोपरि तारा चलता है।

भगवन्! चन्द्रविमान से कितनी दूरी पर सबसे उपर का तारा गति करता है?

गौतम! चन्द्रविमान से बीस योजन दूरी पर सबसे ऊपर का तारा चलता है। इस प्रकार सब मिलाकर एक सौ दस योजन के बाहल्य (मोटाई) मे तिर्यग्दिशा मे असख्यात योजन पर्यन्त ज्योतिष्कचक्र कहा गया है।

भगवन्! जम्बूद्वीप मे कौन-सा नक्षत्र सब नक्षत्रो के भीतर, बाहर मण्डलगति से तथा ऊपर, नीचे विचरण करता है?

गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे अभिजित् नक्षत्र सबसे भीतर रहकर मण्डलगति से परिभ्रमण करता है। मूल नक्षत्र सब नक्षत्रो से बाहर रहकर मण्डलगति से परिभ्रमण करता है। स्वाति नक्षत्र सब नक्षत्रो से ऊपर रहकर चलता है और भरणी नक्षत्र सबसे नीचे मण्डलगति से विचरण करता है।[1]

१९३. चदविमाणे णं भंते! किसठिए पण्णत्ते?

गोयमा! अद्धकविट्ठगसठाणसठिए सव्वफालियामए अब्भुग्गयमूसियपहसिए] वण्णओ। एवं सूरविमाणेवि गहविमाणेवि नक्खत्तविमाणेवि ताराविमाणेवि अद्धकविट्ठसठाणसंठिए।

चदविमाणे ण भंते! केवइय आयाम-विक्खभेणं केवइय परिक्खेवेणं? केवइयं बाहल्लेण पण्णत्ते?

गोयमा! छप्पन्ने एकसट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेण, त तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, अट्ठावीस एगसट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेण पण्णत्ते।

सूरविमाणस्स सच्चेव पुच्छा?

गोयमा! अडयालीस एकसट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खभेणं, त तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, चउवीसं एकसट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेण पण्णत्ते।

एव गहविमाणेवि अद्धजोयण आयामविक्खभेणं, त तिगुण सविसेस परिक्खेवेणं कोस बाहल्लेणं पण्णत्ते।

नक्खत्तविमाणे णं कोस आयामविक्खभेणं, त तिगुण सविसेसं परिक्खेवेणं अद्धकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

ताराविमाने अद्धकोसं आयामविक्खभेण, त तिगुण सविसेसं परिक्खेवेणं पचधणुसयाइ बाहल्लेण पण्णत्ते।

१९३ भगवन्! चन्द्रमा का विमान किस आकार का है?

गौतम! चन्द्रविमान अर्धकबीठ के आकार का है। वह चन्द्रविमान सर्वात्मना स्फटिकमय है, इसकी कान्ति सब दिशा-विदिशा में फैलती है, जिससे यह श्वेत, प्रभासित है (मानो अन्य का उपहास कर रहा हो) इत्यादि विशेषणो का वर्णन करना चाहिए। इसी प्रकार सूर्यविमान भी, ग्रहविमान भी और ताराविमान भी अर्धकबीठ आकार के है।

१ सव्वब्भितराऽभीई, मूलो पुण सव्व बाहिरो होई।
सव्वोवरिं तु साई भरणी पुण सव्व हेट्ठिलिया॥ १॥

भगवन् ! चन्द्रविमान का आयाम-विष्कभ कितना है ? परिधि कितनी है ? और बाहल्य (मोटाई) कितना है ?

गौतम ! चन्द्रविमान का आयाम-विष्कभ (लम्बाई-चौडाई) एक योजन के ६१ भागो मे से ५६ भाग (५६/६१) प्रमाण है। इससे तीन गुणी से कुछ अधिक उसकी परिधि है। एक योजन के ६१ भागो मे से २८ भाग (२८/६१) प्रमाण उसकी मोटाई है।

सूर्यविमान के विषय मे भी वैसा ही प्रश्न किया है।

गौतम ! सूर्यविमान एक योजन के ६१ भागो मे से ४८ भाग प्रमाण लम्बा-चौडा, इससे तीन गुणी से कुछ अधिक उसकी परिधि और एक योजन के ६१ भागो मे से २४ भाग (२४/६१) प्रमाण उसकी मोटाई है।

ग्रहविमान आधा योजन लम्बा-चौडा, इससे तीन गुणी से कुछ अधिक परिधि वाला और एक कोस की मोटाई वाला है।

नक्षत्रविमान एक कोस लम्बा-चौडा, इससे तीन गुणी से कुछ अधिक परिधि वाला और आधे कोस की मोटाई वाला है।

ताराविमान आधे कोस की लम्बाई-चौडाई वाला, इससे तिगुनी से कुछ अधिक परिधि वाला और पाच सौ धनुष की मोटाई वाला है।

विवेचन—इस सूत्र मे चन्द्रादि विमानो का आकार आधे कबीठ के आकार के समान बतलाया गया है। यहा यह शका हो सकती है कि जब चन्द्रादि का आकार अर्धकबीठ जैसा हो तो उदय के समय, पौर्णमासी के समय जब वह तिर्यक् गमन करता है तब उस आकार का क्यो नही दिखाई देता है ? इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि—यहा रहने वाले पुरुषो द्वारा अर्धकपित्थाकार वाले चन्द्रविमान की केवल गोल पीठ ही देखी जाती है, हस्तामलक की तरह उसका समतल भाग नही देखा जाता। उस पीठ के ऊपर चन्द्रदेव का महाप्रासाद है जो दूर रहने के कारण चर्मचक्षुओ द्वारा साफ-साफ दिखाई नही देता।[1]

१९४ (अ) चंदविमाणं णं भंते ! कइ देवसाहस्सीओ परिवहंति ?

गोयमा ! (सोलस देवसाहस्सीओ परिवहंति) चंदविमाणस्स णं पुरच्छिमेण सेयाण सुभगाण सुप्पभाणं संखतलविमलनिम्मल-दहिघणगोखीर-फेणरययनिरप्पगासाणं महुगुलियपिंगलक्खाणं थिरलट्ठ-पउट्ठवट्टपीवरसुसिलिट्ठसुविसिट्ठतिक्खदाढाविडंबियमुहाणं रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालतालुजीहाण (पसत्थसत्थविरुलियभिसंतकक्कडनहाणं) विसालपीवरोरु-पडिपुण्णविउल-खधाण मिउविसय-पसत्थ-सहुमलक्खण-विच्छिण्ण-केसरसडोवसोभियाणं चंकमियललियपुलितधवलगव्वियगईणं उस्सिय

---

१ अद्धकविट्ठागारा उदयत्थमणम्मि कह न दीसति ?
ससिसूराण विमाणा तिरियखेत्तट्ठियाण च ॥
उत्ताणद्धकविट्ठागार पीठं तदुवरि च पासाओ।
वट्टालेखेण ततो समवट्ट दूरभावाओ ॥

सुणिम्मियसुजाय-अप्फोडिय-णंगूलाणं वइरामयणक्खाणं वइरामयदंताणं वइरामयदाढाणं तवणिज्ज-जीहाण तवणिज्जतालुयाणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइयाणं कामगमाणं पीइगमाण मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराण अमियगईण अमियबलविरियपुरिसकारपरक्कमाणं महया अप्फोडिय-सीहनाइय-बोल-कलकलरवेणं महुरेणं मणहरेण य पूरिता अबर दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ सीहरू-वधारिणं देवाणं पुरच्छिमिल्लं बाहं परिवहति ।

१९४. (अ) भगवन् ! चन्द्रविमान को कितने हजार देव वहन करते हैं ?

गौतम ! सोलह हजार देव चन्द्रविमान को वहन करते है । उनमे से चार हजार देव सिह का रूप धारण कर पूर्वदिशा से उठाते है । उन सिंहो का रूपवर्णन इस प्रकार है—वे श्वेत है, सुन्दर हैं, श्रेष्ठ काति वाले है, शख के तल के समान विमल और निर्मल तथा जमे हुए दही, गाय का दूध, फेन चादी के निकर (समूह) के समान श्वेत प्रभा वाले है, उनकी आखे शहद की गोली के समान पीली है, उनके मुख मे स्थित सुन्दर प्रकोष्ठो से युक्त गोल, मोटी, परस्पर जुडी हुई विशिष्ट और तीखी दाढाए है, उनके तालु और जीभ लाल कमल के पत्ते के समान मृदु एव सुकोमल है, उनके नख प्रशस्त और शुभ वैडूर्यमणि की तरह चमकते हुए और कर्कश है, उनके उरु विशाल और मोटे है, उनके कधे पूर्ण और विपुल है, उनके गले की केसर-सटा मृदु विशद (स्वच्छ) प्रशस्त सूक्ष्म लक्षणयुक्त और विस्तीर्ण है, उनकी गति चक्रमणो-लीलाओ और उछलने-कूदने से गर्वभरी (मस्तानी) और साफ-सुथरी होती है, उनकी पूछे ऊँची उठी हुई, सुनिर्मित-सुजात और फटकारयुक्त होती हैं । उनके नख वज्र के समान कठोर है, उनके दात वज्र के समान मजबूत है, उनकी दाढाए वज्र के समान सुदृढ है, तपे हुए सोने के समान उनकी जीभ है, तपनीय सोने की तरह उनके तालु है, सोने के जोतो से वे जोते हुए है । ये इच्छानुसार चलने वाले है, इनकी गति प्रीतिपूर्वक होती है, ये मन को रुचिकर लगने वाले है, मनोरम है, मनोहर है, इनकी गति अमित-अवर्णनीय है (चलते-चलते थकते नही), इनका बल-वीर्य-पुरुषकारपराक्रम अपरिमित है । ये जोर-जोर से सिहनाद करते हुए और उस सिहनाद से आकाश और दिशाओ को गु जाते हुए और सुशोभित करते हुए चलते रहते है । (इस प्रकार चार हजार देव सिह का रूप धारण कर चन्द्रविमान को पूर्वदिशा की ओर से वहन करते चलते हैं ।)

१९४ (आ) चंदविमाणस्स ण दक्खिणेण सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतलविमल-निम्मलदधिघणगोखीरफेणरययणियरप्पगासाण [वइरामयकुंभजुयलसुट्ठियपीवरवरवइरसोंडवट्टियदित्त-सुरत्तपउमप्पगासाण अब्भुण्णयमुहाण तवणिज्जविसालचंचल-चलंतचवलकण्णविमलुज्जलाण मधुवण्णभिसंतणिद्धपिंगलपत्तलतिवण्णमणिरयणलोयणाण अब्भुग्गयमउलमल्लियाण धवल-सरिस-संठिय-णिव्वणदढकसिण-फालियामयसुजायदंत-मुसलोवसोभियाण कंचणकोसीपविट्ठदंतग्गविमल-मणिरयणरुइरपेरंतचित्तरूवगविरायाण तवणिज्ज-विसालतिलगपमुहपरिमंडियाणं णाणामणिरयण-मुद्धगेवेज्जबद्ध-गलयवर-भूसणाणं वेरुलियविचित्त-दंडणिम्मलवइरामयतिक्खलट्ठअंकुसकुंभजुयलंतरो-दियाणं तवणिज्जसुबद्धकच्छदप्पियबलुद्धराणं जंबूणयविमलघणमंडलवइरामयलालाललिय-ताल-णाणा-मणिरयणघंटपासगरययामय-रज्जुबद्धलंबितघंटाजुयलमहुरसरमणहराणं अल्लीण-पमाण जुत्त वट्टिय-सुजायलक्खण-पसत्थतवणिज्जबालगत्तपरिपुंछणाणं उवचिय-पडिपुण्ण-कुम्म-चलण-लहु-विक्कमाणं अंकामयणक्खाणं तवणिज्जतालुयाणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइयाणं कामगमाणं

पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं अमियगईणं अमियबलवीरिय-पुरिसकार-परक्कमाणं महया गंभीरगुलगुलाइरवेणं महुरेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ गयरूवधारीणं देवाणं दक्खिणिल्लं बाहं परिवहंति ।

१९४ (आ) उस चन्द्रविमान को दक्षिण की तरफ से चार हजार देव हाथी का रूप धारण कर उठाते वहन करते हैं। उन हाथियो का वर्णन इस प्रकार है—वे हाथी श्वेत हैं, सुन्दर हैं, सुप्रभा वाले हैं। उनकी काति शखतल के समान विमल-निर्मल है, जमे हुए दही की तरह, गाय के दूध, फेन और चाँदी के निकर की तरह उनकी कान्ति श्वेत है। उनके वज्रमय कुम्भ-युगल के नीचे रही हुई सुन्दर मोटी सू ड मे जिन्होने क्रीडार्थ रक्तपद्मो के प्रकाश को ग्रहण किया हुआ है (कही-कही ऐसा देखा जाता है कि जब हाथी युवावस्था मे वर्तमान रहता है तो उसके कु भस्थल से लेकर शुण्डादण्ड तक स्वत. ही पद्मप्रकाश के समान बिन्दु उत्पन्न हो जाया करते हैं--उसका यहा उल्लेख है) उनके मुख ऊचे उठे हुए है, वे तपनीय स्वर्ण के विशाल, चचल और चपल हिलते हुए विमल कानो से सुशोभित हैं, शहद वर्ण के चमकते हुए स्निग्ध पीले और पक्ष्मयुक्त तथा मणिरत्न की तरह त्रिवर्ण श्वेत कृष्ण पीत वर्ण वाले उनके नेत्र हैं, अतएव वे नेत्र उन्नत मृदुल मल्लिका के कोरक जैसे प्रतीत होते हैं, उनके दात सफेद, एक सरीखे, मजबूत, परिणत अवस्था वाले, सुदृढ, सम्पूर्ण एव स्फटिकमय होने से सुजात है और मूसल की उपमा से शोभित है, इनके दातो के अग्रभाग पर स्वर्ण के वलय पहनाये गये है अतएव ये दात ऐसे मालूम होते हैं मानो विमल मणियो के बीच चादी का ढेर हो। इनके मस्तक पर तपनीय स्वर्ण के विशाल तिलक आदि आभूषण पहनाये हुए हैं, नाना मणियो से निर्मित ऊर्ध्व ग्रैवेयक आदि कठ के आभरण गले मे पहनाये हुए हैं। जिनके गण्डस्थलो के मध्य मे वैडूर्यरत्न के विचित्र दण्ड वाले निर्मल वज्रमय तीक्ष्ण एव सुन्दर अकुश स्थापित किये हुए है। तपनीय स्वर्ण की रस्सी से पीठ का आस्तरण—झूले बहुत ही अच्छी तरह सजाकर एव कसकर बाधा गया है अतएव ये दर्प से युक्त और बल से उद्धत बने हुए हैं, जम्बूनद स्वर्ण के बने घनमडल वाले और वज्रमय लाला से ताडित तथा आसपास नाना मणिरत्नो की छोटी-छोटी घटिकाओ से युक्त रत्नमयी रज्जु मे लटके दो बडे घटो के मधुर स्वर से वे मनोहर लगते है। उनकी पू छे चरणो तक लटकती हुई है, गोल हैं तथा उनमे सुजात और प्रशस्त लक्षण वाले बाल हे जिनसे वे हाथी अपने शरीर को पोछते रहते हे। मासल अवयवो के कारण परिपूर्ण कच्छप की तरह उनके पाव होते हुए भी वे शीघ्र गति वाले हे। अकरत्न के उनके नख हे, तपनीय स्वर्ण के जोतो द्वारा वे जोते हुए हे। वे इच्छानुसार गति करने वाले है, प्रीतिपूर्वक गति करने वाले हैं, मन को अच्छे लगने वाले है, मनोरम है, मनोहर हैं, अपरिमित गति वाले हैं, अपरिमित बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रम वाले है। अपने बहुत गभीर एव मनोहर गुलगुलाने की ध्वनि से आकाश को पूरित करते हैं और दिशाओ को सुभोभित करते है। (इस प्रकार चार हजार हाथी रूपधारी देव चन्द्रविमान को दक्षिणदिशा से उठाकर गति करते रहते हैं।)

१९४. (इ) चंदविमाणस्स णं पच्चत्थिमेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं चंकमियललियपुलिय-चलचवलककुदसालीणं सण्णयपासाणं संगतपासाणं सुजायपासाणं मियमाइयपीणरइयपासाणं झसविहग-सुजायकुच्छीणं पसत्थणिद्धमधुगुलियभिसंतपिंगलक्खाणं विसालपीवरोरुपडिपुण्णविउलखंधाणं वट्टपडि-पुण्णविउलकवोलकलियाणं घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णतईसिआणयवसभोट्ठाणं चंकमियललियपुलियचक्क-वालचवलगव्वियगईणं पीनपीवरवट्टियसुसंठियकडीणं ओलंबपलंबलक्खणपमाणजुत्तपसत्थरमणिज्ज-

बालगंडाणं समखुरवालधाणीणं समलिहियतिक्खग्गसिंगाणं तणुसुहुमसुजायणिद्धलोमच्छविधराणं उवचियमंसलविसालपडिपुण्णखुद्दपमुहपुंडराणं (खंधपएसे सुंदराणं) वेरुलियभिसंतकडक्खसुनिरिक्ख-णाणं जुत्तप्पमाणप्पहाणलक्खणपसत्थरमणिज्जगग्गरगलसोभियाणं घग्घरगसुबद्धकंठपरिमंडियाणं नानामणिकणगरयणघंटवेयच्छगसुकयरइयमालियाणं वरघंटागलगलियसोभंतसस्सिरीयाणं पउमुप्पल-सगलसुरभिमालाविभूसियाणं वइरखुराणं विविहखुराणं फलियामयदंताणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्ज-तालुयाणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइयाणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं अमियगईणं अमियबलवीरियपुरिसकारपरक्कमाणं महया गंभीरगज्जियरवेणं महुरेणं मणहरेण य पूरेंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ वसभरूवधारीणं देवाणं पच्चत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति ।

१९४ (इ) उस चन्द्रविमान को पश्चिमदिशा की ओर से चार हजार बैलरूपधारी देव उठाते है। उन बैलो का वर्णन इस प्रकार है—

वे श्वेत है, सुन्दर लगते है, उनकी काति अच्छी है, उनके ककुद (स्कध पर उठा हुआ भाग) कुछ कुछ कुटिल है, ललित (विलासयुक्त) और पुष्ट हैं तथा दोलायमान है, उनके दोनों पार्श्वभाग सम्यग् नीचे की ओर झुके हुए हैं, सुजात है, श्रेष्ठ हैं, प्रमाणोपेत है, परिमित मात्रा मे ही मोटे होने से सुहावने लगने वाले है. मछली और पक्षी के समान पतली कुक्षि वाले है, इनके नेत्र प्रशस्त, स्निग्ध, शहद की गोली के समान चमकते पोले वर्ण के है, इनकी जघाए विशाल, मोटी और मासल हैं, इनके स्कध विपुल और परिपूर्ण हैं, इनके कपोल गोल और विपुल हैं, इनके ओष्ठ घन के समान निचित (मासयुक्त) और जबडो से अच्छी तरह सबद्ध हैं, लक्षणोपेत उन्नत एव अल्प झुके हुए है। वे चक्रमित (बाकी) ललित (विलासयुक्त) पुलित (उछलती हुई) और चक्रवाल की तरह चपल गति से गर्वित है, मोटी स्थूल वर्तित (गोल) और सुसस्थित उनकी कटि है। उनके दोनो कपोलो के बाल ऊपर से नीचे तक अच्छी तरह लटकते हुए हैं, लक्षण और प्रमाणयुक्त, प्रशस्त और रमणीय है। उनके खुर और पूछ एक समान है, उनके सीग एक समान पतले और तीक्ष्ण अग्रभाग वाले है। उनकी रोमराशि पतली सूक्ष्म सुन्दर और स्निग्ध है। इनके स्कधप्रदेश उपचित परिपुष्ट मासल और विशाल होने से सुन्दर है, इनकी चितवन वैडूर्यमणि जैसे चमकीले कटाक्षो से युक्त अतएव प्रशस्त और रमणीय गर्गर नामक आभूषणो से शोभित हैं, घग्घर नामक आभूषण से उनका कठ परिमडित है, अनेक मणियो स्वर्ण और रत्नो से निर्मित छोटी-छोटी घटियो की मालाए उनके उर पर तिरछे रूप मे पहनायी गई हैं। उनके गले मे श्रेष्ठ घटियो की मालाए पहनायी गई है। उनसे निकलने वाली काति से उनकी शोभा मे वृद्धि हो रही है। ये पद्मकमल की परिपूर्ण सुगधियुक्त मालाओ से सुगन्धित हैं। इनके खुर वज्र जैसे है, इनके खुर विविध प्रकार के हैं अर्थात् विविध विशिष्टता वाले है। उनके दात स्फटिक रत्नमय हैं, तपनीय स्वर्ण जैसी उनकी जिह्वा है, तपनीय स्वर्णसम उनके तालु है, तपनीय स्वर्ण के जोतो से वे जुते हुए हैं। वे इच्छानुसार चलने वाले हैं, प्रीतिपूर्वक चलनेवाले हैं, मन को लुभानेवाले हैं, मनोहर और मनोरम है, उनकी गति अपरिमित है, अपरिमित बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रम वाले हैं। वे जोरदार गभीर गर्जना के मधुर एव मनोहर स्वर से आकाश को गुजाते हुए और दिशाओ को शोभित करते हुए गति करते हैं। (इस प्रकार चार हजार वृषभरूपधारी देव चन्द्रविमान को पश्चिमदिशा से उठाते हैं।)

१९४ (ई) चंदविमाणस्स णं उत्तरेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं जच्चाणं तरमल्लिहायणाणं हरिमेलामउलमल्लियच्छाणं घणणिचियसुबद्धलक्खणुण्णयचंकमिय—(चंचुरिय) ललियपुलियचलचवल-चंचलगईणं लंघणवग्गणधावणधारणतिवइजइणसिक्खियगईणं ललंतलामगलायवरभूसणाणं सण्णय-पासाणं संगयपासाणं सुजायपासाणं मियमाइयपीणरइयपासाणं झसविहगसुजायकुच्छीणं पीणपीवरवट्टिय-सुसंठियकडीणं ओलंबपलंबलक्खणपमाणजुत्तपसत्थरमणिज्जबालगडाणं तणुसुहुमसुजायणिद्धलोमच्छ-विधराणं मिउविसयपसत्थसुहुमलक्खणविकिण्णकेसरवालिधराणं ललियसविलासगइललंतथासगलला-डवरभूसणाणं मुहमंडगोचूलचमरथासगपरिमंडयकडीण तवणिज्जखुराणं तवणिज्जजीहाण तवणिज्ज-तालुयाणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइयाणं कामगमाण पीइगमाणं मणोगमाण मणोहराण अमियगईण अमियबलवीरियपुरिसकारपरक्कमाण महयाहयहेसियकिलकिलाइयरवेण महुरेण मणहरेण य पूरेंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ हयरूवधारीण देवाण उत्तरिल्ल बाह परिवहंति ।

१९४. (ई) उस चन्द्रविमान को उत्तर की ओर से चार हजार अश्वरूपधारी देव उठाते हैं। वे अश्व इन विशेषणो वाले है—वे श्वेत है, सुन्दर है, सुप्रभावाले है, उत्तम जाति के है, पूर्ण बल और वेग प्रकट होने की (तरुण) वय वाले हैं, हरिमेलकवृक्ष की कोमल कली के समान धवल आख वाले है, वे अयोघन की तरह दृढीकृत, सुबद्ध, लक्षणोन्नत कुटिल (बाकी) ललित उछलती चचल और चपल चाल वाले है, लाघना, उछलना, दौडना, स्वामी को धारण किये रखना त्रिपदी (लगाम) के चलाने के अनुसार चलना, इन सब बातो की शिक्षा के अनुसार ही वे गति करने वाले है। हिलते हुए रमणीय आभूषण उनके गले मे धारण किये हुए हैं, उनके पार्श्वभाग सम्यक् प्रकार से झुके हुए है, सगत-प्रमाणापेत हैं, सुन्दर हैं, यथोचित मात्रा मे मोटे और रति पैदा करने वाले है, मछली और पक्षी के समान उनकी कुक्षि है, पीन-पीवर और गोल सुन्दर आकार वाली उनकी कटि है, दोनो कपोलो के बाल ऊपर से नीचे तक अच्छी तरह से लटकते हुए है, लक्षण और प्रमाण से युक्त है, प्रशस्त है, रमणीय है। उनकी रोमराशि पतली, सूक्ष्म, सुजात और स्निग्ध है। उनकी गर्दन के बाल मृदु, विशद, प्रशस्त, सूक्ष्म और सुलक्षणोपेत है और सुलझे हुए है। सुन्दर और विलासपूर्ण गति से हिलते हुए दर्पणाकार स्थासक-आभूषणो से उनके ललाट भूषित हैं, मुखमण्डप, अवचूल, चमर-स्थासक आदि आभूषणों से उनकी कटि परिमडित है, तपनीय स्वर्ण के उनके खुर है, तपनीय स्वर्ण की जिह्वा है, तपनीय स्वर्ण के तालु है, तपनीय स्वर्ण के जोतो से वे भलीभाति जुते हुए है। वे इच्छापूर्वक गमन करने वाले है, प्रीतिपूर्वक चलने वाले हैं, मन को लुभावने लगते है, मनोहर है। वे अपरिमित गति वाले हैं, अपरिमित बल-वीर्य-पुरुषाकार-पराक्रम वाले हैं। वे जोरदार हिनहिनाने की मधुर और मनोहर ध्वनि से आकाश को गु जाते हुए, दिशाओ को शोभित करते हुए चन्द्रविमान को उत्तर-दिशा की ओर से उठाते है।[1]

---

१ चन्द्रादि विमानानि जगत स्वभावात् निरालम्बानि, तथापि कियन्तो विनोदिनोऽनेकरूपधरा अभियोगिकादेवा सततवहनशीलेषु विमानेषु अध स्थित्वा परिवहन्ति कौतूहलादिति। —वृत्ति

१९४. (उ) एवं सूरविमाणस्सवि पुच्छा ? गोयमा ! सोलस देवसाहस्सीओ परिवहंति पुव्वकमेणं। एव गहविमाणस्सवि पुच्छा ? गोयमा ! अट्ठ देवसाहस्सीओ परिवहंति पुव्वकमेण। दो देवाणं साहस्सीओ पुरत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति, दो देवाणं साहस्सीओ दक्खिणिल्ल०, दो देवाणं साहस्सीओ पच्चत्थिम, दो देवसाहस्सीओ उत्तरिल्लं बाहं परिवहंति। एव णक्खत्तविमाणस्स वि पुच्छा ? गोयमा ! चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति सीहरूवधारीणं देवाण दस देवसया पुरत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति एव चउद्दिसिं। एव तारगाणवि णवरं दो देवसाहस्सीओ परिवहंति, सीहरूवधारीण देवाणं पचदेवसया पुरत्थिमिल्ल बाह परिवहंति एवं चउद्दिसिं।

१९४ (उ) सूर्य के विमान के विषय मे भी यही प्रश्न करना चाहिए। गौतम ! सोलह हजार देव पूर्वक्रम के अनुसार सूर्यविमान को वहन करते है। इसी प्रकार ग्रहविमान के विषय मे प्रश्न करने पर भगवान् ने कहा—गौतम ! आठ हजार देव ग्रहविमान को वहन करते हैं। दो हजार देव पूर्व की तरफ से, दो हजार देव दक्षिणदिशा से, दो हजार देव पश्चिमदिशा से और दो हजार देव उत्तर की दिशा से ग्रहविमान को उठाते है। नक्षत्रविमान की पृच्छा होने पर भगवान् ने कहा—गौतम ! चार हजार देव नक्षत्रविमान को वहन करते हैं। एक हजार देव सिंह का रूप धारण कर पूर्वदिशा की ओर से वहन करते है। इसी तरह चारो दिशाओ से चार हजार देव नक्षत्रविमान को वहन करते है। इसी प्रकार ताराविमान को दो हजार देव वहन करते है। पाच सौ-पाच सौ देव चारो दिशाओ से ताराविमान को वहन करते है।

१९५ एएसि णं भंते ! चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवाण कयरे कयरेहिंतो सिग्घगई वा मदगई वा ?

गोयमा ! चदेहिंतो सूरा सिग्घगई, सूरेहिंतो गहा सिग्घगई, गहेहिंतो नक्खत्ता सिग्घगई, णक्खत्तेहिंतो तारा सिग्घगई। सव्वप्पगइ चदा सव्वसिग्घगइओ तारारूवे।

एएसि ण भते ! चदिम जाव तारारूवाण कयरे कयरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा महिड्ढिया वा ?

गोयमा ! तारारूवेहिंतो नक्खत्ता महिड्ढिया, नक्खत्तेहिंतो गहा महिड्ढिया, गहेहिंतो सूरा महिड्ढिया, सूरेहिंतो चदा महिड्ढिया। सव्वप्पिड्ढिया तारारूवा सव्व महिड्ढिया चदा।

१९५ भगवन् ! इन चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओ मे कौन किससे शीघ्रगति वाले हैं और कौन मदगति वाले हैं ?

गौतम ! चन्द्र से सूर्य तेजगति वाले हैं, सूर्य से ग्रह शीघ्रगति वाले है, ग्रह से नक्षत्र शीघ्रगति वाले हैं और नक्षत्रो से तारा शीघ्रगति वाले हैं। सबसे मन्दगति चन्द्रो की है और सबसे तीव्रगति ताराओ की है।

भगवन् ! इन चन्द्र यावत् तारारूप मे कौन किससे अल्पऋद्धि वाले है और कौन महाऋद्धि वाले हैं ?

गौतम ! तारारूप से नक्षत्र महर्द्धिक हैं, नक्षत्र से ग्रह महर्द्धिक है, ग्रहो से सूर्य महर्द्धिक हैं और सूर्यों से चन्द्रमा महर्द्धिक है। सबसे अल्पऋद्धि वाले तारारूप हैं और सबसे महर्द्धिक चन्द्र हैं।

१९६. (अ) जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे ताराख्वस्स ताराख्वस्स एस णं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुविहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा—वाघाइमे य निव्वाघाइमे य । तत्थ णं जे से वाघाइमे से जहन्नेणं दोण्णि या छावट्ठे जोयणसए उक्कोसेण बारस जोयणसहस्साइ दोण्णि य बायाले जोयणसए ताराख्वस्स ताराख्वस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । तत्थ णं जे से निव्वाघाइमे से जहन्नेणं पंचधणु-सयाइं उक्कोसणं दो गाउयाइं ताराख्वस्स ताराख्वस्स अंतरे पण्णत्ते ।

चंदस्स णं भंते ! जोइसिंदस्स जोइसरन्नो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—चंदप्पभा दोसिणाभा अच्चिमाली पभंकरा । एत्थ णं एगमेगाए देवीए चत्तारि देविसाहस्सीओ परिवारे य । पभू णं तओ एगमेगा देवी अण्णाइं चत्तारि चत्तारि देविसहस्साइ परिवारं विउवित्तए । एवामेव सपुव्वावरेण सोलस देविसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, से तं तुडिए ।

१९६. (अ) भगवन् ! जम्बूद्वीप मे एक तारा का दूसरे तारे से कितना अतर कहा गया है ?

गौतम ! अन्तर दो प्रकार का है, यथा—व्याघातिम (कृत्रिम) और निर्व्याघातिम (स्वाभाविक) । व्याघातिम अन्तर जघन्य दो सौ छियासठ (२६६) योजन का और उत्कृष्ट बारह हजार दो सौ बयालीस (१२२४२) योजन का कहा गया है । जो निर्व्याघातिम अन्तर है वह जघन्य पाच सौ धनुष और उत्कृष्ट दो कोस का जानना चाहिए । (निषध व नीलवत पर्वत के कूट ऊपर से २५० योजन लम्बे-चौडे हैं । कूट की दोनो ओर से आठ-आठ योजन को छोडकर तारामडल चलता है, अत २५० मे १६ जोड़ देने से २६६ योजन का अन्तर निकल आता है । उत्कृष्ट अन्तर मेरु की अपेक्षा से है । मेरु की चौडाई दस हजार योजन की है और दोनो ओर के ११२१ योजन प्रदेश छोडकर तारामण्डल चलता है । इस तरह १० हजार योजन मे २२४२ मिलाने से उत्कृष्ट अन्तर आ जाता है ।)

भगवन् ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र की कितनी अग्रमहिषिया हैं ?

गौतम ! चार अग्रमहिषिया है, यथा—चन्द्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमाली और प्रभकरा । इनमे से प्रत्येक अग्रमहिषी अन्य चार हजार देवियो की विकुर्वणा कर सकती है । इस प्रकार कुल मिलाकर सोलह हजार देवियो का परिवार हो जाता है । यह चन्द्रदेव के "तुटिक" अन्त.पुर का कथन हुआ ।

१९६. (आ) पभू णं भंते ! चंदे जोईसिंदे जोइसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासंणंसि तुडिएण सद्धिं दिव्वाइ भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ?

णो इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ नो पभू चंदे जोइसराया चंदवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइ भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ?

गोयमा ! चंदस्स जोईसिंदस्स जोइसरण्णो चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए माणवगंसि चेइयखंभंसि वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहुयाओ जिणसकहाओ सण्णिक्खित्ताओ चिट्ठंति जाओ णं

चंदस्स जोइसिंदस्स जोइसरण्णो अन्नेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ। तासिं पणिहाय नो पभू चंदे जोइसराया चंदवडिसए जाव चंदंसि सीहासणंसि जाव भुंजमाणे विहरित्तए। से एएणट्ठेणं गोयमा! नो पभू चंदे जोइसराया चंदवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि तुडिएण सद्धि दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए।

अदुत्तरं च णं गोयमा? पभू चंदे जोइसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव सोलसहिं आयरक्खदेवाणं साहस्सीहिं अन्नेहिं बहूहिं जोइसिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धि संपरिवुडे महया हयणट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए, केवलं परियारतुडिएण सद्धि भोगभोगाइं बुद्धिए नो चेव णं मेहुणवत्तियं।

१९६ (आ) भगवन्! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में चन्द्र नामक सिंहासन पर अपने अन्तःपुर के साथ दिव्य भोगोपभोग भोगने में समर्थ है क्या?

गौतम! नहीं। वह समर्थ नहीं है।

भगवन्! ऐसा क्यों कहा जाता है कि ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में चन्द्र नामक सिंहासन पर अन्तःपुर के साथ दिव्य भोगोपभोग भोगने में समर्थ नहीं है?

गौतम! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र के चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में माणवक चैत्यस्तंभ में वज्रमय गोल मंजूषाओं में बहुत-सी जिनदेव की अस्थियां रखी हुई हैं, जो ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र और अन्य बहुत-से ज्योतिषी देवों और देवियों के लिए अर्चनीय यावत् पर्युपासनीय हैं। उनके कारण ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में यावत् चन्द्रसिंहासन पर यावत् भोगोपभोग भोगने में समर्थ नहीं है। इसलिए ऐसा कहा गया है कि ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में चन्द्र सिंहासन पर अपने अन्तःपुर के साथ दिव्य भोगोपभोग भोगने में समर्थ नहीं है।

गौतम! दूसरी बात यह है कि ज्योतिषराज चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में चन्द्र सिंहासन पर अपने चार हजार सामानिक देवों यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्य बहुत से ज्योतिषी देवों और देवियों के साथ घिरा हुआ होकर जोर-जोर से बजाये गये नृत्य में, गीत में, वादित्रों के, तन्त्री के, तल के, ताल के, त्रुटित के, घन के, मृदंग के बजाये जाने से उत्पन्न शब्दों से दिव्य भोगोपभोगों को भोग सकने में समर्थ है। किन्तु अपने अन्तःपुर के साथ मैथुनबुद्धि से भोग भोगने में वह समर्थ नहीं है।

१९६. (इ) सूरस्स णं भंते! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सूरप्पभा, आयवाभा, अच्चिमाली, पभंकरा। एवं अवसेसं जहा चंदस्स णवरि सूरवडिंसए विमाणे सूरंसि सीहासणंसि तहेव सव्वेसिं गहाईणं चत्तारि अग्गमहिसीओ, तं जहा—विजया वेजयंती जयंती अपराइया तेसिं पि तहेव।

१९६ (इ) भगवन्! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज सूर्य की कितनी अग्रमहिषियां हैं?

गौतम! चार अग्रमहिषियां हैं, जिनके नाम हैं—सूर्यप्रभा, आतपाभा, अर्चिमाली और

प्रभकरा। शेष वक्तव्यता चन्द्र के समान कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि यहा सूर्यावतसक विमान मे सूर्यसिहासन पर कहना चाहिए। उसी तरह ग्रहादि की भी चार अग्रमहिषिया हैं—विजया, वेजयती, जयंति और अपराजिता। इनके सम्बन्ध मे भी पूर्ववत् कथन करना चाहिए।

१९७ चंदविमाणे णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिइ पण्णत्ता? एवं जहा ठिईपए तहा भाणियव्वा जाव ताराणं।

एएसि णं भंते! चंदिमसूरियगहणक्खत्तताराख्वाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा?

गोयमा! चंदिमसूरिया एए णं दोण्णिवि तुल्ला सव्वत्थोवा। संखेज्जगुणा णक्खत्ता, संखेज्जगुणा गहा, सखेज्जगुणाओ ताराओ। जोइसुद्देसओ समत्तो।

१९७ भगवन्! चन्द्रविमान मे देवो की कितनी स्थिति कही गई है? इस प्रकार प्रज्ञापना मे स्थितिपद के अनुसार तारारूप पर्यन्त स्थिति का कथन करना चाहिए।

भगवन्! इन चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओ मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

गौतम! चन्द्र और सूर्य दोनो तुल्य है और सबसे थोडे हैं। उनसे सख्यातगुण नक्षत्र है। उनसे सख्यातगुण ग्रह हैं, उनसे सख्यातगुण तारागण हैं। ज्योतिष्क उद्देशक पूरा हुआ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे स्थिति के सम्बन्ध मे प्रज्ञापना के स्थितिपद की सूचना की गई है। वह इस प्रकार है—

चन्द्र विमान मे चन्द्र, मामानिक देव तथा आत्मरक्षक देवो की जघन्य स्थिति पल्योपम के चतुर्थ भाग प्रमाण और उत्कृष्ट स्थिति एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।

यहाँ देवियो की स्थिति जघन्य पल्योपम के चतुर्थ भाग प्रमाण और उत्कृष्ट पाच सौ वर्ष अधिक आधे पल्योपम की है।

सूर्यविमान मे देवो की जघन्य स्थिति $\frac{१}{४}$ पल्योपम और उत्कृष्ट स्थिति एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है। यहा देवियो की स्थिति जघन्य $\frac{१}{४}$ पल्योपम और उत्कृष्ट पाच सौ वर्ष अधिक आधा पल्योपम की है।

ग्रहविमानगत देवो की जघन्य स्थिति $\frac{१}{४}$ पल्योपम और उत्कृष्ट एक पल्योपम की है। यहा देवियो की स्थिति जघन्य पल्योपम का चतुर्थभाग और उत्कृष्ट आधा पल्योपम है।

नक्षत्रविमान मे देवो की जघन्य स्थिति $\frac{१}{४}$ पल्योपम और उत्कृष्ट एक पल्योपम की है। यहा दवियो की जघन्य स्थिति $\frac{१}{४}$ पल्योपम और उत्कृष्ट कुछ अधिक $\frac{१}{४}$ पल्योपम की है।

ताराविमान मे देवो की जघन्य स्थिति $\frac{१}{८}$ पल्योपम की और उत्कृष्ट $\frac{१}{२}$ पल्योपम है। देवियो की स्थिति जघन्य $\frac{१}{८}$ पल्योपम और उत्कृष्ट कुछ अधिक पल्योपम का $\frac{१}{८}$ भाग प्रमाण है।

।। ज्योतिष्क उद्देशक समाप्त ।।

वैमानिक उद्देशक

वैमानिक-वक्तव्यता

१९८. कहि णं भंते ! वेमाणियाणं विमाणा पण्णत्ता, कहि ण भंते ! वेमाणिया देवा परिवसंति ? जहा ठाणपए सव्व भाणियव्वं नवरं परिसाओ भाणियव्वाओ जाव अच्चुए, अन्नेसि च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं देवाण य देवीण य जाव विहरंति ।

१९८ भगवन् ! वैमानिक देवो के विमान कहा कहे गये हैं ? भगवान् ! वैमानिक देव कहा रहते है ? इत्यादि वर्णन जैसा प्रज्ञापनासूत्र के स्थानपद मे कहा है, वैसा यहा कहना चाहिए । विशेष रूप मे यहा अच्युत विमान तक परिषदाओ का कथन भी करना चाहिए यावत् बहुत से सौधर्मकल्पवासी देव और देवियो का आधिपत्य करते हुए सुखपूर्वक विचरण करते है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे प्रज्ञापनासूत्र के स्थानपद की सूचना की गई है । विषय की स्पष्टता के लिए उसे यहा देना आवश्यक है । वह इस प्रकार है—

"इस रत्नप्रभापृथ्वी के बहुसमरमणीय भूभाग से ऊपर चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र तथा तारारूप ज्योतिष्को के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, अनेक करोड योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाकर सौधर्म-ईशान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक-लान्तक-महाशुक्र-सहस्रार-प्राणत-आरण-अच्युत-ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानो मे वैमानिक देवो के चौरासी लाख सत्तानवै हजार तेवीस विमान एव विमानावास है । वे विमान सर्वरत्नमय स्फटिक के समान स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने बनाये हुए, रजरहित, निर्मल, पकरहित, निरावरण कातिवाले, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतसहित प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, रमणीय, रूपसम्पन्न और अप्रतिम सुन्दर है । उनमे बहुत से वैमानिक देव निवास करते है । वे इस प्रकार है—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, नौ ग्रैवेयक और पाच अनुत्तरोपपातिक देव ।

वे सौधर्म से अच्युत तक के देव क्रमश १ मृग, २ महिष, ३ वराह, ४ सिह, ५ बकरा (छगल), ६ दर्दुर, ७ हय, ८ गजराज ९ भुजग, १० खड्ग (गेडा), ११ वृषभ और १२ विडिम के प्रकट चिह्न से युक्त मुकुट वाले, शिथिल और श्रेष्ठ मुकुट और किरीट के धारक, श्रेष्ठ कुण्डलो से उद्योतित मुख वाले, मुकुट के कारण शोभयुक्त, रक्त-आभा युक्त, कमल-पत्र के समान गोरे, श्वेत, सुखद वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श वाले, उत्तम वैक्रिय-शरीरधारी, प्रवर वस्त्र-गन्ध-माल्य-अनुलेपन के धारक, महर्द्धिक, महाद्युतिमान्, महायशस्वी, महाबली, महानुभाग, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले हैं । कडे और बाजूबंदो से मानो भुजाओ को उन्होने स्तब्ध कर रखी हैं, अगद, कुण्डल आदि आभूषण उनके कपोल को सहला रहे है, कानो मे कर्णफूल और हाथो मे विचित्र करभूषण धारण किये हुए है । विचित्र पुष्पमालाए मस्तक पर शोभायमान है । वे कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए हैं तथा

कल्याणकारी श्रेष्ठमाला और अनुलेपन धारण किये हुए हैं। उनका शरीर देदीप्यमान होता है। वे लम्बी वनमाला धारण किये हुए होते है। दिव्य वर्ण से, दिव्य गध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य सहनन और दिव्य संस्थान से, दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति, दिव्य प्रभा, दिव्य छाया, दिव्य अर्चि, दिव्य तेज और दिव्य लेश्या से दसो दिशाओ को उद्योतित एव प्रभासित करते हुए वे वहा अपने-अपने लाखो विमानावासो का, अपने-अपने हजारो सामानिक देवो का, अपने-अपने त्रायस्त्रिशक देवो का, अपने-अपने लोकपालो का, अपनी-अपनी सपरिवार अग्रमहिषियो का, अपनी-अपनी परिषदो का, अपनी-अपनी सेनाओ का, अपने-अपने सेनाधिपति देवो का, अपने-अपने हजारो आत्मरक्षक देवो का तथा बहुत से वैमानिक देवो और देवियो का आधिपत्य पुरोवर्तित्व (अग्रेसरत्व), स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञैश्वर्यत्व तथा सेनापतित्व करते-कराते और पालते-पलाते हुए निरन्तर होने वाले महान् नाट्य, गीत तथा कुशलवादको द्वारा बजाये जाते हुए वीणा, तल, ताल, त्रुटित, घनमृदग आदि वाद्यो की समुत्पन्न ध्वनि के साथ दिव्य शब्दादि कामभोगो को भोगते हुए विचरण करते है।

जबूद्वीप के सुमेरु पर्वत के दक्षिण के इस रत्नप्रभापृथ्वी के बहुसमरमणीय भूभाग से ऊपर ज्योतिष्को से अनेक कोटा-कोटी योजन ऊपर जाने पर सौधर्म नामक कल्प है। यह पूर्व-पश्चिम मे लम्बा, उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण, अर्धचन्द्र के आकार मे सस्थित अर्चिमाला और दीप्तियो की राशि के समान कातिवाला, असख्यात कोटा-कोटी योजन की लम्बाई-चौडाई और परिधि वाला तथा सर्वरत्नमय है। इस सौधर्मविमान मे बत्तीस लाख विमानावास है। इन विमानो के मध्यदेशभाग मे पाच अवतसक कहे गये है— १ अशोकावतसक, २, सप्तपर्णावतसक, ३ चपकावतसक, ४ चूतावतसक और इन चारो के मध्य मे है ५ सौधर्मावतसक। ये अवतसक रत्नमय है, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं। इन सब बत्तीस लाख विमानो मे सौधर्मकल्प के देव रहते है जो महर्द्धिक है यावत् दसो दिशाओ को उद्योतित करते हुए आनन्द से सुखोपभोग करते है और अपने सामानिक आदि देवो का अधिपत्य करते हुए रहते हैं।

परिषदों और स्थिति आदि का वर्णन

१९९. (अ) सक्कस्स ण भंते ! देविंदस्स देवरन्नो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ— तं जहा, समिया चंडा जाया। अब्भितरिया समिया, मज्झमिया चडा, बाहिरिया जाया।

सक्कस्स ण भते ! देविंदस्स देवरन्नो अब्भितरियाए परिसाए कई देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ? मज्झिमियाए परिसाए० तहेव बाहिरियाए पुच्छा ?

गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अब्भितरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए चउद्दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए परिसाए सोलस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तहा—अब्भितरियाए परिसाए सत्त देवीसयाणि, मज्झिमियाए छच्च देवीसयाणि, बाहिरियाए पंच देवीसयाणि पण्णत्ताइं।

सक्कस्स ण भंते ! देविंदस्स देवरन्नो अब्भितरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? एवं मज्झिमियाए बाहिरियाएवि पुच्छा ?

गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो ग्रब्भितरियाए परिसाए देवाणं पचंपलिग्रोवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमिया परिसाए चत्तारि पलिग्रोवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। देवीण ठिइ अब्भितरियाए परिसाए देवीणं तिन्नि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए दुन्नि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए एग पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। ग्रट्ठो सो चेव जहा भवणवासीण।

१९९ (ग्र) भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र की कितनी पर्षदाए कही गई है ?

गौतम ! तीन पर्षदाए कही गई हैं—समिता, चण्डा ग्रौर जाया। ग्राभ्यतर पर्षदा को समिता कहते है, मध्य पर्षदा को चण्डा ग्रौर बाह्य पर्षदा को जाया कहते हैं।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र की ग्राभ्यतर परिषद् मे कितने हजार देव हैं, मध्य परिषद् ग्रौर बाह्य परिषद् मे कितने -कितने हजार देव है ?

गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र की ग्राभ्यन्तर परिषद् मे बारह-हजार देव, मध्यम परिषद् मे चौदह हजार देव ग्रौर बाह्य परिषद् मे सोलह हजार देव हैं। ग्राभ्यन्तर परिषद् मे सात सौ देविया मध्य परिषद् मे छह सौ ग्रौर बाह्य परिषद् मे पाच सौ देविया है।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र की ग्राभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति कितनी कही गई है ? इसी प्रकार मध्यम ग्रौर बाह्य परिषद् के देवो की स्थिति कितनी कितनी है ?

गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र की ग्राभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति पाच पल्योपम की है, मध्यम परिषद् के देवो की स्थिति चार पल्योपम की है ग्रौर बाह्य परिषद् के देवो की स्थिति तीन पल्योपम की है। ग्राभ्यन्तर परिषद् की देवियो की स्थिति तीन पल्योपम, मध्यम परिषद् की देवियो की स्थिति दो पल्योपम ग्रौर बाह्य परिषद् की देवियो की स्थिति एक पल्योपम की है। समिता, चण्डा ग्रौर जाया परिषद् का ग्रर्थ वही है जो भवनवासी देवो के चमरेन्द्र के प्रसग मे कहा गया है।

१९९ (ग्रा) कहि ण भंते ! ईसाणकाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता ? तहेव सव्व जाव ईसाणे एत्थ देविंदे देवराया जाव विहरइ। ईसाणस्स भंते ! देविंदस्स देवरन्नो कई परिसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! तओ परिसाग्रो पण्णत्ताओ, त जहा—समिया, चंडा, जाया। तहेव सव्वं, णवर अब्भितरियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीग्रो पण्णत्ताग्रो, बाहिरियाए चउद्दस देवसाहस्सीओ। देवीण पुच्छा ? अब्भितरियाए नव देवीसया पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए अट्ठ देवीसया पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए सत्त देविसया पण्णत्ता।

देवाणं भंते ! केवइयं काल ठिई पण्णत्ता ? अब्भितरियाए परिसाए देवाणं सत्त पलिग्रोवमाइं ठिई पण्णत्ता। मज्झिमियाए छ पलिओवमाइं, बाहिरियाए परिसाए पच पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। देवीणं पुच्छा ? ग्रब्भितरियाए साइरेगाइं पच पलिग्रोवमाइं मज्झिमियाए परिसाए चत्तारि पलिग्रोवमाइं ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए तिण्णि पलिग्रोवमाइं ठिई पण्णत्ता। ग्रट्ठो तहेव भाणियव्वो।

१९९ (ग्रा) भगवन् ! ईशानकल्प के देवो के विमान कहां से कहे गये है ग्रादि सब कथन

सोधर्मकल्प की तरह जानना चाहिए। विशेषता यह है कि वहा ईशान नामक देवेन्द्र देवराज आधिपत्य करता हुआ विचरता है।

भगवन्! देवेन्द्र देवराज की कितनी पर्षदाए हैं?

गोतम तीन पर्षदाए कही गई हैं—समिता, चडा और जाया। शेष कथन पूर्ववत् कहना चाहिए। विशेषता यह है कि आभ्यन्तर पर्षदा मे दस हजार देव, मध्यम मे बारह हजार देव और बाह्य पर्षदा मे चौदह हजार देव है। आभ्यन्तर पर्षदा मे नौ सौ, मध्यम परिषदा मे आठ सौ और बाह्य पर्षदा मे सात सौ देविया है।

भगवन्! ईशानकल्प के देवो की स्थिति कितनी कही गई है?

गौतम! आभ्यन्तर पर्षदा के देवो की स्थिति सात पल्योपम, मध्यम पर्षदा के देवो की स्थिति छह पल्योपम और बाह्य पर्षदा के देवो की स्थिति पाच पल्योपम की है।

देवियो की स्थिति की पृच्छा? आभ्यन्तर पर्षदा की देवियो की स्थिति कुछ अधिक पाच पल्योपम, मध्यम पर्षदा की देवियो की स्थिति चार पल्योपम और बाह्य पर्षदा की देवियो की स्थिति तीन पल्योपम की है। तीन प्रकार की पर्षदाओ का अर्थ आदि कथन चमरेन्द्र की तरह कहना चाहिए।

१९९ (इ) सणंकुमाराण पुच्छा? तहेव ठाणपदगमेण जाव सणकुमारस्स तओ परिसाओ समियाइ तहेव। नवरं अब्भिंतरियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। बाहिरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। अब्भिंतरियाए परिसाए देवाण अद्धपंचमाइ सागरोवमाइं पचपलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए अद्धपंचमाइं सागरोवमाइ चत्तारि पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए अद्धपचमाइ सागरोवमाइं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। अट्ठो सो चेव।

एव माहिंदस्सवि तहेव। तओ परिसाओ, णवर अब्भिंतरियाए परिसाए छ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। ठिई देवाण अब्भिंतरियाए परिसाए अद्धपचमाइ सागरोवमाइ सत्त य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए अद्धपचमाइ सागरोवमाइ छच्च पलिओवमाइ, बाहिरियाए परिसाए अद्धपचमाइ सागरोवमाइ पच य पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता। तहेव सव्वेसिं इदाणं ठाणपदगमेण विमाणाणि वुच्चा तओ पच्छा परिसाओ पत्तेय पत्तेय वुच्चइ।

१९९ (इ) सनत्कुमार देवो के विमानो के विषय मे प्रश्न करने पर कहा गया है कि प्रज्ञापना के स्थानपद के अनुसार कथन करना चाहिए यावत् वहा सनत्कुमार देवेन्द्र देवराज है। उसकी तीन पर्षदा हैं—समिता, चडा और जाया। आभ्यन्तर परिषदा मे आठ हजार, मध्यम परिषदा मे दस हजार और बाह्य परिषदा मे बारह हजार देव हैं। आभ्यन्तर पर्षद के देवो की स्थिति साढे चार सागरोपम और पाच पल्योपम है, मध्यम पर्षद के देवो की स्थिति साढे चार सागरोपम और चार पल्योपम है, बाह्य पर्षद् के देवो की स्थिति साढे चार सागरोपम और तीन पल्योपम की है। पर्षदो का अर्थ पूर्व चमरेन्द्र के प्रसगानुसार जानना चाहिए। (सनत्कुमार मे और आगे के देवलोक मे देविया नही हैं। अतएव देवियो का कथन नही किया गया है।)

इसी प्रकार माहेन्द्र देवलोक के विमानो और माहेन्द्र देवराज देवेन्द्र का कथन करना चाहिए। वैसी ही तीन पर्षदा कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि आभ्यन्तर पर्षद मे छह हजार, मध्य पर्षद मे आठ हजार और बाह्य पर्षद मे दस हजार देव है। आभ्यन्तर पर्षद के देवो की स्थिति साढे चार सागरोपम और सात पल्योपम की है। मध्य पर्षद के देवो की स्थिति साढे चार सागरोपम और छह पल्योपम की है और बाह्य पर्षद के देवो की स्थिति साढे चार सागरोपम और पाच पल्योपम की है। इसी प्रकार स्थानपद के अनुसार पहले सब इन्द्रो के विमानो का कथन करने के पश्चात् प्रत्येक की पर्षदाओ का कथन करना चाहिए।

१९९ (ई) बंभस्सवि तओ परिसाओ पण्णत्ताओ। अब्भितरियाए चत्तारि देवसाहस्सीओ, मज्झिमियाए छ देवसाहस्सीओ, बाहिरियाए अट्ठ देवसाहस्सीओ। देवाणं ठिई—अब्भितरियाए परिसाए अद्धणवमाइ सागरोवमाइ पच य पलिओवमाइ, मज्झिमियाए परिसाए अद्धनवमाइ सागरोवमाइं चत्तारि पलिओवमाइ, बाहिरियाए परिसाए अद्धनवमाइं सागरोवमाइ तिण्णि य पलिओवमाइं। अट्ठो सो चेव।

लतगस्सवि जाव तओ परिसाओ जाव अब्भितरियाए परिसाए दो देवसाहस्सीओ, मज्झिमियाए चत्तारि देवसाहस्सीओ, बाहिरियाए छ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। ठिई भाणियव्वा। अब्भितरियाए परिसाए बारस सागरोवमाइं सत्तपलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए बारस सागरोवमाइं छच्चपलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए बारस सागरोवमाइ पच पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता।

महासुक्कस्सवि जाव तओ परिसाओ जाव अब्भितरियाए एग देवसहस्स, मज्झिमियाए दो देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए चत्तारि देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। अब्भितरियाए परिसाए अद्धसोलस सागरोवमाइ पच य पलिओवमाइं, मज्झिमियाए अद्धसोलस सागरोवमाइ चत्तारि पलिओवमाइ, बाहिरियाए अद्धसोलस सागरोवमाइ तिण्णि पलिओवमाइ पण्णत्ता। अट्ठो सो चेव।

सहस्सारे पुच्छा जाव अब्भितरियाए परिसाए पच देवसया, मज्झिमिया परिसाए एगा देवसाहस्सी, बाहिरियाए परिसाए दो देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। ठिई—अब्भितरियाए परिसाए अद्धट्ठारस सागरोवमाइ सत्त पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता, एव मज्झिमिआए अद्धट्ठारस सागरोवमाइ छ पलिओवमाइ, बाहिरियाए अद्धट्ठारस सागरोवमाइ पच पलिओवमाइ। अट्ठो सो चेव।

१९९ (ई) ब्रह्म इन्द्र की भी तीन पर्षदाए है। आभ्यन्तर परिषद् मे चार हजार देव, मध्यम परिषद् मे छह हजार देव और बाह्य परिषद् मे आठ हजार देव है। आभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति साढे आठ सागरोपम और पाच पल्योपम है। मध्यम परिषद् के देवो की स्थिति साढे आठ सागरोपम और चार पल्योपम की है। बाह्य परिषद् के देवो की स्थिति साढे आठ सागरोपम और तीन पल्योपम की है। परिषदो का अर्थ पूर्वोक्त ही है।

लन्तक इन्द्र की भी तीन परिषद् है यावत् आभ्यन्तर परिषद् मे दो हजार देव, मध्यम परिषद् मे चार हजार देव और बाह्य परिषद् मे छह हजार देव है। आभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति बारह सागरोपम और सात पल्योपम की है, मध्यम परिषद् के देवो की स्थिति बारह

सागरोपम और छह पल्योपम की, बाह्य परिषद् के देवो की स्थिति बारह सागरोपम और पाच पल्योपम की है।

महाशुक्र इन्द्र की भी तीन परिषद् हैं। आभ्यन्तर परिषद् मे एक हजार देव, मध्यम परिषद् मे दो हजार देव और बाह्य परिषद् मे चार हजार देव हैं।

आभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति साढे पन्द्रह सागरोपम और पाच पल्योपम की है। मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति साढ़े पन्द्रह सागरोपम और चार पल्योपम की और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति साढे पन्द्रह सागरोपम और तीन पल्योपम की है। परिषदो का अर्थ पूर्ववत् कहना चाहिए।

सहस्रार इन्द्र की आभ्यन्तर पर्षद मे पाच सौ देव, मध्यम पर्षद मे एक हजार देव और बाह्य पर्षद मे दो हजार देव है। आभ्यन्तर पर्षद के देवों की स्थिति साढे सत्रह सागरोपम और सात पल्योपम की है, मध्यम पर्षद के देवो की स्थिति साढे सत्रह सागरोपम और छह पल्योपम की है, बाह्य पर्षद के देवो की स्थिति साढे सत्रह सागरोपम और पाच पल्योपम की है।

१९९. (उ) आणयपाणयस्सवि पुच्छा जाव तओ परिसाओ नवर अब्भितरियाए अड्ढाइज्जा देवसया, मज्झिमियाए पच देवसया, बाहिरियाए एगा देवसाहस्सी। ठिई—अब्भितरियाए एगूणवीस सागरोवमाइं पच य पलिओवमाइ, एव मज्झिमियाए एगूणवीस सागरोवमाइ चत्तारि य पलिओवमाइ, बाहिरियाए परिसाए एगूणवीस सागरोवमाइं तिण्णि य पलिओवमाइ ठिई। अट्ठो सो चेव।

कहि णं भंते! आरण-अच्चुयाण देवाण तहेव अच्चुए सपरिवारे जाव विहरइ। अच्चुयस्स णं देविंदस्स तओ परिसाओ पण्णत्ताओ। अब्भितरियाए देवाण पणवीस सय, मज्झिमपरिसाए अड्ढाइज्जासया, बाहिरियपरिसाए पचसया। अब्भितरियाए एक्कवीसं सागरोवमाइ सत्त य पलिओवमाइं, मज्झिमाए एक्कवीसं सागरोवमाइ छप्पलिओवमाइं, बाहिरियाए एक्कवीसं सागरोवमाइ पंच य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

कहि ण भंते! हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता? कहि ण भंते! हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति? जहेव ठाणपदे तहेव; एव मज्झिमगेवज्जगा उवरिमगेवेज्जगा अणुत्तरा य जाव अहमिंदा नामं ते देवा पण्णत्ता समणाउसो!

१९९ (उ) आनत-प्राणत देवलोक विषयक प्रश्न के उत्तर मे कहा गया है कि प्राणत देव की तीन पर्षदाए है। आभ्यन्तर पर्षद मे अढाई सौ देव हैं, मध्यम पर्षद मे पाच सौ देव और बाह्य पर्षद मे एक हजार देव हैं, आभ्यन्तर पर्षद के देवो की स्थिति उन्नीस सागरोपम और पाच पल्योपम है, मध्यम पर्षद के देवो स्थिति उन्नीस सागरोपम और चार पल्योपम की है, बाह्य पर्षद के देवो की स्थिति उन्नीस सागरोपम और तीन पल्योपम की है। पर्षदा का अर्थ पहले की तरह करना चाहिए।

भगवन्! आरण-अच्युत देवो के विमान कहा कहे गये है- -इत्यादि कथन करना चाहिए यावत् वहा अच्युत नाम का देवेन्द्र देवराज सपरिवार विचरण करता है। देवेन्द्र देवराज अच्युत की तीन पर्षदाए है। आभ्यन्तर पर्षद मे एक सौ पच्चीस देव, मध्य पर्षद मे दो सौ पचास देव और बाह्य पर्षद मे पाच सौ देव है। आभ्यन्तर पर्षद के देवो की स्थिति इक्कीस सागरोपम और सात पल्योपम

की है, मध्य पर्षद के देवो की स्थिति इक्कीस सागरोपम और छह पल्योपम की है, बाह्य पर्षद के देवो की स्थिति इक्कीस सागरोपम और पाच पल्योपम की है।

भगवन् ! अधस्तन-ग्रैवेयक देवो के विमान कहा कहे गये हैं ? भगवन् ! अधस्तन-ग्रैवेयक देव कहा रहते है ? जैसा स्थानपद मे कहा है वैसा ही कथन यहा करना चाहिए। इसी तरह मध्यम-ग्रैवेयक, उपरितन-ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवो का कथन करना चाहिए। यावत् हे आयुष्मन् श्रमण ! ये सब अहमिन्द्र है—वहा कोई छोटे-बडे का भेद नही है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे वर्णित विषय को निम्न कोष्टक से समझने मे सुविधा रहेगी—

कल्पो के नाम	देवो की सख्या	देवी सख्या	स्थिति देव	स्थिति देवी
१. सौधर्म				
आभ्यन्तर पर्षद	१२,०००	७००	५ पल्यो	३ प
मध्यम पर्षद	१४,०००	६००	४ पल्यो	२ प
बाह्य पर्षद	१६,०००	५००	३ पल्यो.	१ प
२. ईशान				
आभ्यन्तर पर्षद	१०,०००	९००	७ पल्यो	५ प से कुछ अधिक
मध्यम पर्षद	१२,०००	८००	६ पल्यो	४ प
बाह्य पर्षद	१४,०००	७००	५ पल्यो	३ प
३. सनत्कुमार				
आभ्यन्तर पर्षद	८,०००	देविया नही	साढे चार सागरो. ५ प	,,
मध्यम पर्षद	१०,०००	देविया नही	साढे चार सा ४ प	,,
बाह्य पर्षद	१२ ०००	देविया नही	साढे चार सा ३ प	,,
४. माहेन्द्र				
आभ्य पर्षद	६,०००	देविया नही	साढे चार सा ७ प.	,,
मध्यम पर्षद	८,०००	देविया नही	साढे चार सा ६ प	,,
बाह्य पर्षद	१०,०००	देविया नही	साढे चार सा ५ प	
५. ब्रह्म				
आभ्य पर्षद	४,०००	देविया नही	साढेआठ सा. ५ प नही है	,,
मध्यम पर्षद	६,०००	देविया नही	साढेआठ सा ४ प नही है	,,
बाह्य पर्षद	८,०००	देविया नही	साढेआठ सा ३ प नही है	,,

कल्पों के नाम	देवों की संख्या	देवी संख्या	स्थिति देव	देवी
६ लांतक				
आभ्य पर्षद	२,०००	देविया नही	१२ सागरो ७ प	नही है
मध्यम पर्षद	४,०००	देविया नही	१२ सागरो ६ प	नही है
बाह्य पर्षद	६,०००	देविया नही	१२ सागरो ५ प	नही है
७. महाशुक्र				
आभ्य पर्षद	१,०००	देविया नही	साढे १५ सा ५ पल्यो	नही है
मध्यम पर्षद	२,०००	देविया नही	साढे १५ सा ४ पल्यो.	नही है
बाह्य पर्षद	४,०००	देविया नही	साढे १५ सा ३ पल्यो	नही है
८. सहस्रार				
आभ्य. पर्षद	५००	देविया नही	साढे १७ सा ७ पल्यो	नही है
मध्यम पर्षद	१,०००	देविया नही	साढे १७ सा ६ पल्यो	नही है
बाह्य पर्षद	२,०००	देविया नही	साढे १७ सा ५ पल्यो	नही है
९-१०. आनत-प्राणत				
आभ्य पर्षद	२५०	देविया नही	१९ सा ५ पल्यो	नही है
मध्यम पर्षद	५००	देविया नही	१९ सा ४ पल्यो	नही है
बाह्य पर्षद	१,०००	देविया नही	१९ सा ३ पल्यो	नही है
११-१२. आरण-अच्युत				
आभ्य पर्षद	१२५	देविया नही	२१ सा ७ पल्यो	नही है
मध्यम पर्षद	२५०	देविया नही	२१ सा ६ पल्यो.	नही है
बाह्य पर्षद	५००	देविया नही	२१ सा ५ पल्यो	नही है

अधस्तन-ग्रैवेयक	अहमिन्द्र होने से पर्षद नही है
मध्यम-ग्रैवेयक	अहमिन्द्र होने से पर्षद नही है
उपरितन-ग्रैवेयक	अहमिन्द्र होने से पर्षद नही हैं
अनुत्तर विमान	अहमिन्द्र होने से पर्षद नही हैं

विमानावासों की संग्रह-गाथाओ का अर्थ--[1]

१	सौधर्म देवलोक मे	३२ लाख	विमानावास हैं
२	ईशान देवलोक मे	२८ लाख	विमानावास हैं
३	सनत्कुमार मे	१२ लाख	विमानावास हैं
४	माहेन्द्र में	८ लाख	विमानावास है
५.	ब्रह्मलोक मे	४ लाख	विमानावास है
६	लान्तक मे	५० हजार	विमानावास है
७	महाशुक्र मे	४० हजार	विमानावाम है
८	सहस्रार मे	६ हजार	विमानावास हैं
९-१०	आनत-प्राणत	४००	विमानावास हैं
११-१२.	आरण-अच्युत	३००	विमानावास है
	नवग्रैवेयक	३१८	विमानावास है (प्रथमत्रिक में १११) (द्वितीयत्रिक मे १०७) (तृतीयत्रिक मे १००)
	अनुत्तरविमान	५	विमानावास हैं

चौरासी लाख सत्तानवै हजार तेईस ८४,९७,०२३ (कुल) विमानावास है।

प्रथम कल्प मे ८४ हजार सामानिक देव है। दूसरे मे ८०,०००, तीसरे मे ७२,०००, चौथे मे ७० हजार, पाचवे मे ६०,०००, छठे में ५०,०००, सातवे मे ४०,०००, आठवे मे ३०,०००, नौवे-दसवे मे २०,०००, ग्यारहवे-बारहवे कल्प मे १०,००० सामानिक देव हैं।

।। प्रथम वैमानिक उद्देशक पूर्ण ।।

---

१ बत्तीस अट्ठावीसा बारस अट्ठ चउरो सयसहस्सा।
पन्ना चत्तालीसा छच्च सहस्सा सहस्सारे ।। १ ।।
आणय-पाणय कप्पे चत्तारि सया आरण-अच्चुए तिण्णि।
सत्त विमाणसयाइ चउसुवि एसु कप्पेसु ।। २ ।।

सामानिक संग्रह गाथा—

चउरासीइ असीइ बावत्तरी सत्तरिय सट्ठी य।
पण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दस सहस्सा ।। १ ।।

२००. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणपुढवी किंपइट्ठिया पण्णत्ता ? गोयमा ! घणोदहि-पइट्ठिया । सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु विमाणपुढवी किंपइट्ठिया पण्णत्ता ? गोयमा ! घणवायपईट्ठिया पण्णत्ता । बंभलोए णं कप्पे विमाणपुढवी णं पुच्छा ? घणवायपइट्ठिया पण्णत्ता । लंतए ण भंते पुच्छा ? गोयमा तदुभयपइट्ठिया । महासुक्कसहस्सारेसुवि तदुभय पइट्ठिया । आणय जाव अच्चुएसु णं भंते ! कप्पेसु पुच्छा ? ओवासंतरपइट्ठिया । गेवेज्जविमाणपुढवी णं पुच्छा ? गोयमा ! ओवासंतरपइट्ठिया । अणुत्तरोववाइयपुच्छा ? ओवासंतरपइट्ठिया ।

२०० भगवन् ! सौधर्म और ईशान कल्प की विमानपृथ्वी किसके आधार पर रही हुई है ? गौतम ! घनोदधि के आधार पर रही हुई है। सनत्कुमार और माहेन्द्र की विमानपृथ्वी किस पर टिकी हुई है ? गौतम ! घनवात पर प्रतिष्ठित है। ब्रह्मलोक विमान-पृथ्वी किसके आधार पर है ? गौतम ! घनवात पर प्रतिष्ठित है। लान्तक विमानपृथ्वी का प्रश्न ? गौतम ! लान्तक विमानपृथ्वी घनोदधि और घनवात दोनो के आधार पर रही हुई है। महाशुक्र और सहस्रार विमान पृथ्वी भी घनोदधि-घनवात पर प्रतिष्ठित है। आनत यावत् अच्युत विमानपृथ्वी (९ से १२ देवलोक) किस पर आधारित है ? गौतम ये चारो कल्प आकाश पर प्रतिष्ठित हैं। ग्रैवेयकविमान और अनुत्तरविमान भी आकाश-प्रतिष्ठित हैं।

(संग्रहणी गाथा मे कहा है—प्रथम, द्वितीय कल्प घनोदधि पर, तीसरा, चौथा, पाचवा कल्प घनवात पर, छठा-सातवा-आठवा कल्प उभय प्रतिष्ठित है, आगे नौवा, दसवा, ग्यारहवा, बारहवा कल्प और नौ ग्रेवेयक, अनुत्तर विमान आकाश प्रतिष्ठित है।[1]

बाहल्य आदि प्रतिपादन

२०१ (अ) **सोहम्मीसाणकप्पेसु विमाणपुढवी केवइय बाहल्लेण पण्णत्ता ? गोयमा ! सत्तावीस जोयणसयाइ बाहल्लेण पण्णत्ता । एवं पुच्छा ? सणंकुमारमाहिंदेसु छव्वीसं जोयणसयाइ, बंभलंतए बीसं, महासुक्क-सहस्सारेसु चउवीसं, आणय-पाणय-आरणाच्चुएसु तेवीसं सयाइ । गेविज्जविमाण-पुढवी बावीस, अणुत्तरविमाणपुढवी एक्कवीस जोयणसयाइ बाहल्लेणं ।**

सोहम्मीसाणेसु ण भंते । कप्पेसु विमाणा केवइय उड्ढ उच्चत्तेण ? गोयमा ! पंच जोयण-सयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं । सणंकुमार-माहिंदेसु छ जोयणसयाइं, बंभलंतएसु सत्त, महासुक्कसहस्सारेसु अट्ठ, आणय-पाणयारणाच्चुएसु णव, गेवेज्जविमाणा णं भंते ! केवइय उड्ढं उच्चत्तेणं ? गोयमा ! दस जोयणसयाइं । अणुत्तरविमाणा णं एक्कारस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं ।

२०१. (अ) भगवन् ! सौधर्म और ईशान कल्प मे विमानपृथ्वी कितनी मोटी है ? गौतम ! सत्ताईससौ योजन मोटी है। इसी प्रकार सबकी प्रश्न पृच्छा करनी चाहिए। सनत्कुमार और माहेन्द्र

---

१. घणोदहिपइट्ठाणा सुरभवणा दोसु कप्पेसु ।
तिसु वायपइट्ठाणा तदुभय पइट्ठिया तिसु ॥१॥
तेण पर उवरिमगा आगासतर-पइट्ठिया सव्वे ।
एस पइट्ठाण विही उड्ढ लोए विमाणाण ॥२॥

मे विमानपृथ्वी छव्वीससौ योजन मोटी है। ब्रह्मलोक और लातक में पच्चीससौ योजन मोटी है। महाशुक्र और सहस्रार मे चौवीससौ योजन मोटी है। आणत प्राणत आरण और अच्युत कल्प मे विमानपृथ्वी तेईससौ योजन मोटी है। ग्रैवेयको मे विमानपृथ्वी बाईससौ योजन मोटी है। अनुत्तर विमानो मे विमानपृथ्वी इक्कीससौ योजन मोटी है।

भगवन्! सौधर्म-ईशानकल्प मे विमान कितने ऊचे हैं?

गौतम! पाचसौ योजन ऊचे है। सनत्कुमार और माहेन्द्र मे छहसौ योजन, ब्रह्मलोक और लान्तक मे सातसौ योजन, महाशुक्र और सहस्रार मे आठसौ योजन, आणत प्राणत आरण और अच्युत मे नौसौ योजन, ग्रैवेयकविमान मे दससौ योजन और अनुत्तरविमान ग्यारहसौ योजन ऊचे कहे गये हैं।

२०१ (आ) सोहम्मीसाणेसु ण भते! कप्पेसु विमाणा किंसंठिया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—आवलिया-पविट्ठा य बाहिरा य। तत्थ ण जे ते आवलिया-पविट्ठा ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—वट्टा, तंसा, चउरंसा। तत्थ णं जे आवलिया-बाहिरा ते ण णाणासठिया पण्णत्ता। एवं जाव गेवेज्जविमाणा। अणुत्तरोववाइयाविमाणा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—वट्टे य तंसा य।

सोहम्मीसाणेसु भते! विमाणा केवइय आयाम-विक्खभेणं, केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ता? गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सखेज्जवित्थडा य असखेज्जवित्थडा य। जहा णरगा तहा जाव अणुत्तरोववाइया संखेज्जवित्थडा य असखेज्जवित्थडा य। तत्थ ण जे से संखेज्जवित्थडे से जबुद्दीवप्प-माणे; असखेज्जवित्थडा असखेज्जाइं जोयणसयाइं जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ता।

सोहम्मीसाणेसु ण भते! विमाणा कइवण्णा पण्णत्ता? गोयमा! पंचवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—किण्हा, नीला, लोहिया, हालिद्दा, सुक्किला। सणंकुमारमाहिंदेसु चउवण्णा नीला जाव सुक्किला। बंभलोगलंतएसु तिवण्णा पण्णत्ता, लोहिया जाव सुक्किला। महासुक्कसहस्सारेसु दुवण्णा हालिद्दा य सुक्किला य। आणत-पाणतारणाच्चुएसु सुक्किला, गेवेज्जविमाणा सुक्किला, अणुत्तरोववाइयविमाणा परमसुक्किला वण्णेणं पण्णत्ता।

सोहम्मीसाणेसु णं भते! कप्पेसु विमाणा केरिसया पभाए पण्णत्ता? गोयमा! णिच्चालोया, णिच्चुज्जोया सयपभाए पण्णत्ता जाव अणुत्तरोववाइयविमाणा णिच्चालोया णिच्चुज्जोया सयपभाए पण्णत्ता।

सोहम्मीसाणेसु णं भते! कप्पेसु विमाणा केरिसया गंधेणं पण्णत्ता? गोयमा! से जहाणामए कोट्ठपुडाण वा जाव गंधेण पण्णत्ता, एवं जाव एत्तो इट्ठतरगा चेव जाव अणुत्तरविमाणा।

सोहम्मीसाणेसु विमाणा केरिसया फासेणं पण्णत्ता? से जहाणामए आइणेइ वा रूएइ वा सव्वो फासो भाणियव्वो जाव अणुत्तरोववाइयविमाणा।

२०१ (आ) भगवन्! सौधर्म-ईशानकल्प मे विमानो का आकार कैसा कहा गया है?

गौतम! वे विमान दो तरह के हैं—१. आवलिका-प्रविष्ट और २ आवलिका बाह्य। जो

आवलिका-प्रविष्ट (पंक्तिबद्ध) विमान हैं, वे तीन प्रकार के हैं—१ गोल, २ त्रिकोण और ३ चतुष्कोण। जो आवलिका-बाह्य है वे नाना प्रकार के हैं। इसी तरह का कथन ग्रैवेयकविमानो पर्यन्त कहना चाहिए। अनुत्तरोपपातिक विमान दो प्रकार के हैं—गोल और त्रिकोण।

भगवन्! सौधर्म-ईशानकल्प मे विमानो की लम्बाई-चौडाई कितनी है? उनकी परिधि कितनी है? गौतम! वे विमान दो तरह के है—सख्यात योजन विस्तार वाले और असख्यात योजन विस्तार वाले। जैसे नरको का कथन किया गया है वैसा ही कथन यहा करना चाहिए, यावत् अनुत्तरोपपातिकविमान दो प्रकार के है—सख्यात योजन विस्तार वाले और असख्यात योजन विस्तार वाले। जो सख्यात योजन विस्तार वाले हैं वे जम्बूद्वीप प्रमाण है और जो असख्यात योजन विस्तार वाले हैं वे असख्यात हजार योजन विस्तार और परिधि वाले कहे गये हैं।

भगवन्! सौधर्म-ईशानकल्प मे विमान कितने रग के है? गौतम पाचो वर्ण के विमान है, यथा कृष्ण, नील, लाल, पीले और सफेद। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प मे विमान चार वर्ण के है—नील यावत् शुक्ल। ब्रह्मलोक एव लान्तक कल्पो मे विमान तीन वर्ण के है—लाल यावत् शुक्ल। महाशुक्र एव सहस्रार कल्प मे विमान दो रग के है—पीले और सफेद। आनत प्राणत आरण और अच्युत कल्पो में विमान सफेद वर्ण के हैं। ग्रैवेयकविमान भी सफेद हैं। अनुत्तरोपपातिकविमान परम-शुक्ल वर्ण के हैं।

भगवन्! सौधर्म-ईशानकल्प मे विमानो की प्रभा कैसी है? गौतम! वे विमान नित्य स्वय की प्रभा से प्रकाशमान और नित्य उद्योत वाले है यावत् अनुत्तरोपपातिकविमान भी स्वय की प्रभा से नित्यालोक और नित्योद्योत वाले कहे गये हैं।

भगवन्! सौधर्म-ईशानकल्प मे विमानो की गध कैसी कही गई है? गौतम! जैसे कोष्ठ-पुडादि सुगधित पदार्थों की गध होती है उससे भी इष्टतर उनकी गध है, अनुत्तरविमान पर्यन्त ऐसा ही कथन करना चाहिए।

भगवन्! सौधर्म-ईशानकल्प मे विमानो का स्पर्श कैसा कहा गया है? गौतम! जैसे अजिन चर्म, रूई आदि का मृदुल स्पर्श होता है, वैसा स्पर्श करना चाहिए, अनुत्तरोपपातिकविमान पर्यन्त ऐसा ही कहना चाहिए।

२०१ (इ) सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा केमहालया पण्णत्ता? गोयमा! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवे-समुद्दाणं सो चेव गमो जाव छम्मासे वीइवएज्जा जाव अत्थेगइया विमाणावासा नो वीइवएज्जा जाव अणुत्तरोववाइयविमाणा, अत्थेगइय विमाण वीइवएज्जा, अत्थेगइए णो वीइवएज्जा।

सोहम्मीसाणेसु ण भते! कप्पेसु विमाणा किंमया पण्णत्ता? गोयमा! सव्वरयणामया पण्णत्ता। तत्थ णं बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति, विउक्कमंति चयंति उववज्जंति। सासया ण ते विमाणा दव्वट्ठयाए जाव फासपज्जवेहिं असासया जाव अणुत्तरोववाइयाविमाणा।

सोहम्मीसाणेसु ण भते! कप्पेसु देवा कओहिंतो उववज्जंति? उववाओ णेयव्वो जहा वक्कंतीए तिरियमणुएसु पंचिंदिएसु सम्मुच्छिमवज्जिएसु, उववाओ वक्कंतिगमेणं जाव अणुत्तरोववाइया।

सोहम्मीसाणेसु देवा एगसमए णं केवइया उववज्जंति ? गोयमा ! जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति, एवं जाव सहस्सारे। आणयादिगेवेज्जा अणुत्तरा य एक्को वा दो वा तिन्नि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा उववज्जंति।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवा समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा केवइएणं कालेणं अवहिया सिया ? गोयमा ! ते णं असंखेज्जा समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति नो चेव णं अवहिया सिया जाव सहस्सारे। आणतादिसु चउसु वि। गेवेज्जेसु अणुत्तरेसु य समए समए जाव केवइयं कालेणं अवहिया सिया ? गोयमा ! ते णं असंखेज्जा समए समए अवहीरमाणा पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागमेत्तेणं अवहीरंति नो चेव णं अवहिया सिया।

२०१ (इ) भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प मे विमान कितने बडे हैं ? गौतम ! कोइ देव जो चुटकी बजाते ही इस एक लाख योजन के लम्बे-चौडे और तीन लाख योजन से अधिक की परिधि वाले जम्बूद्वीप की २१ बार प्रदक्षिणा कर आवे, ऐसी शीघ्रतादि विशेषणो वाली गति से निरन्तर छह मास चलता रहे, तब वह कितनेक विमानो के पास पहुच सकता है, उन्हे लाघ सकता है और कितनेक उन विमानो को नही लाघ सकता है, इतने बडे वे विमान कहे गये है। इसी प्रकार का कथन अनुत्तरोपपातिक विमानो तक के लिए समझना चाहिए कि कितनेक विमानो को लाघ सकता है और कितनेक विमानो को नही लाघ सकता है।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प के विमान किसके बने हुए है ? गौतम ! वे सर्वरत्नमय है। उनमे बहुत से जीव और पुद्गल पैदा होते है, च्यवित होते हैं, इकट्ठे होते हैं और वृद्धि को प्राप्त करते है। वे विमान द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से शाश्वत है और स्पर्श आदि पर्यायो की अपेक्षा अशाश्वत है। ऐसा ही कथन अनुत्तरोपपातिक विमानो तक समझना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प मे देव कहा से आकर उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! सम्मूर्छिम जीवो को छोडकर शेष पचेन्द्रिय तिर्यचो और मनुष्यो मे से आकर जीव सौधर्म और ईशान मे देवरूप से उत्पन्न होते है। इस प्रकार प्रज्ञापना के छठे व्युत्क्रान्तिपद मे जैसा उत्पाद कहा है वैसा यहा कह लेना चाहिए। (सहस्रार देवलोक तक उक्त रीति से तथा आगे केवल मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है।) अनुत्तरोपपातिक विमानो तक व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार कहना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प मे एक समय में कितने देव उत्पन्न होते है ? गौतम ! जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट सख्यात और असख्यात जीव उत्पन्न होते हैं। यह कथन सहस्रार देवलोक तक कहना चाहिए। आनत आदि चार कल्पो मे, नवग्रैवेयको मे और अनुत्तरविमानो मे जघन्य एक, दो, तीन यावत् उत्कृष्ट सख्यात जीव उत्पन्न होते है।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प के देवो मे से यदि प्रत्येक समय मे एक-एक का अपहार किया जाये—निकाला जाये तो कितने काल मे वे खाली हो सकेंगे ? गौतम ! वे देव असख्यात हैं अतः यदि एक समय में एक देव का अपहार किया जाये तो असख्यात उत्सर्पिणियो अवसर्पिणियो तक अपहार का यह क्रम चलता रहे तो भी वे कल्प खाली नही हो सकते। उक्त कथन सहस्रार देवलोक तक करना चाहिए। आगे के आनतादि चार कल्पो मे, ग्रैवेयको में तथा अनुत्तर विमानों के देवो के अपहार

सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में कहना चाहिए कि वे असंख्यात हैं अतः समय-समय में एक-एक का अपहार करने का क्रम पल्योपम के असंख्यातवें भाग तक चलता रहे तो भी उनका अपहार पूरा नहीं हो सकता। (यह अपहार कभी हुआ नहीं, होगा नहीं, केवल संख्या बताने के लिए कल्पनामात्र है।)

२०१. (ई) **सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवाणं के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा सरीरा पण्णत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य। तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागो, उक्कोसेणं सत्तरयणीओ। तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से जहन्नेणं अंगुलस्स संखेज्जइ भागो, उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं। एवं एक्केक्का ओसारेत्ताणं जाव अणुत्तराणं एक्का रयणी। गेवेज्जणुत्तराणं एगे भवधारणिज्जे सरीरे उत्तरवेउव्विया णत्थि।**

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! देवाणं सरीरगा किं संघयणी पण्णत्ता ? गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी पण्णत्ता। नेवट्ठि नेव छिरा णवि ण्हारू णेव संघयणमत्थि; जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव एएसिं संघायत्ताए परिणमंति जाव अणुत्तरोववाइया।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! देवाणं सरीरगा किंसंठिया पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा सरीरा, भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य। तत्थ णं जे से भवधारणिज्जा ते समचउरससंठाणसंठिया पण्णत्ता। तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विया ते णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता जाव अच्चुओ। अवेउव्विया गेवेज्जणुत्तरा भवधारणिज्जा समचउरंससंठाणसंठिया, उत्तरवेउव्विया णत्थि।

सोहम्मीसाणेसु देवा केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता ? गोयमा ! कणगत्तयरत्ताभा वण्णेण पण्णत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु णं पउमपम्हगोरा वण्णेण पण्णत्ता। बंभलोए ण भंते !० गोयमा ! अल्लमधुग-वण्णाभा। एवं जाव गेवेज्जा। अणुत्तरोववाइया परमसुक्किल्ला वण्णेण पण्णत्ता।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवाणं सरीरगा केरिसया गंधेणं पण्णत्ता ? गोयमा ! से जहाणामए कोट्ठपुडाण वा तहेव सव्वं मणामतरगा चेव गंधेण पण्णत्ता। जाव अणुत्तरोववाइया।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! देवाणं सरीरगा केरिसया फासेणं पण्णत्ता ? गोयमा ! थिरमउय-णिद्धसुकुमालछवि फासेणं पण्णत्ता, एवं जाव अणुत्तरोववाइया।

सोहम्मीसाणदेवाणं केरिसया पोग्गला उस्सासत्ताए परिणमंति ? गोयमा ! जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव एएसिं उस्सासत्ताए परिणमंति जाव अणुत्तरोववाइया; एवं आहारत्ताएवि जाव अणुत्तरोववाइया।

सोहम्मीसाणदेवाणं कइ लेस्साओ ? गोयमा ! एगा तेउलेस्सा पण्णत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु एगा पम्हलेस्सा। एवं बंभलोएवि पम्हा, सेसेसु एक्का सुक्कलेस्सा; अणुत्तरोववाइयाणं एक्का परमसुक्कलेस्सा।

सोहम्मीसाणदेवा किं सम्मद्दिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी ? तिण्णिवि, जाव अंतिम-गेवेज्जादेवा सम्मदिट्ठीवि मिच्छादिट्ठीवि सम्मामिच्छादिट्ठीवि। अणुत्तरोववाइया सम्मदिट्ठी, नो मिच्छादिट्ठी नो सम्मामिच्छादिट्ठी।

सोहम्मीसाणादेवा किं णाणी अण्णाणी ? गोयमा ! दोवि तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा णियमा जाव गेवेज्जा। अणुत्तरोववाइया नाणी, णो अण्णाणी। तिण्णि णाणा तिण्णि अण्णाणा णियमा जाव गेवेज्जा। अणुत्तरोववाइया णाणी, नो अण्णाणी, तिण्णि णाणा णियमा। तिविहे जोगे, दुविहे उवओगे, सव्वेसिं जाव अणुत्तरा।

२०१ (ई) भगवन् ! सौधर्म और ईशान कल्प मे देवो के शरीर की अवगाहना कितनी है ?

गौतम ! उनके दो प्रकार के शरीर होते है —भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय, उनमे भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट से सात हाथ है। उत्तरवैक्रिय शरीर की अपेक्षा से जघन्य अगुल का सख्यातवा भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन है। इस प्रकार आगे-आगे के कल्पो मे एक-एक हाथ कम करते जाना चाहिए, यावत् अनुत्तरोपपातिक देवो की एक हाथ की अवगाहना रह जाती है। (जैसे सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्प मे उत्कृष्ट भवधारणीय शरीर की अवगाहना छह हाथ प्रमाण, ब्रह्मलोक-लान्तक मे पाच हाथ, महाशुक्र-सहस्रार मे चार हाथ, आनत-प्राणत-आरण-अच्युत में तीन हाथ, नवग्रैवेयक मे दो हाथ और अनुत्तर विमानो में एक हाथ प्रमाण अवगाहना है।) ग्रैवेयको और अनुत्तर विमानो मे केवल भवधारणीय शरीर होता है। वे देव उत्तरविक्रिया नही करते।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प मे देवो के शरीर का सहनन कौनसा है ?

गौतम ! छह सहननो मे से एक भी सहनन उनमे नही होता, क्योकि उनके शरीर मे न हड्डी होती है, न शिराए होती है और न नसे ही होती है। अतः वे असहननी है। जो पुद्गल इष्ट, कान्त यावत् मनोज्ञ-मनाम होते है, वे उनके शरीर रूप मे एकत्रित होकर तथारूप मे परिणत होते है। यही कथन अनुत्तरोपपातिक देवो तक कहना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प मे देवो के शरीर का सस्थान कैसा है ?

गौतम ! उनके शरीर दो प्रकार के है— भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। जो भवधारणीय शरीर है, उसका समचतुरस्रसस्थान है और जो उत्तरवैक्रिय शरीर है, उनका सस्थान (आकार) नाना प्रकार का होता है। यह कथन अच्युत देवलोक तक कहना चाहिए। ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानो के देव उत्तर-विकुर्वणा नही करते। उनका भवधारणीय शरीर समचतुरस्रसस्थान वाला है। उत्तरविक्रिया वहा नही है।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान के देवो के शरीर का वर्ण कैसा है ?

गौतम ! तपे हुए स्वर्ण के समान लाल आभायुक्त उनका वर्ण है। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के देवो का वर्ण पद्म, कमल के पराग (केशर) के समान गौर है। ब्रह्मलोक के देव गीले महुए के वर्ण वाले (सफेद) हैं। इसी प्रकार ग्रैवेयक देवो तक सफेद वर्ण कहना चाहिए। अनुत्तरोपपातिक देवो के शरीर का वर्ण परमशुक्ल है।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्पो के देवो के शरीर की गध कैसी है ?

गौतम ! जैसे कोष्ठपुट आदि सुगधित द्रव्यो की सुगध होती है, उससे भी अधिक इष्ट, कान्त यावत् मनाम उनके शरीर की गध होती है। अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त ऐसा ही कथन करना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्पो के देवो के शरीर का स्पर्श कैसा कहा गया है ?

गौतम ! उनके शरीर का स्पर्श स्थिर रूप से मृदु, स्निग्ध और मुलायम छवि वाला कहा गया है। इसी प्रकार अनुत्तरोपपातिकदेवो पर्यन्त कहना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान देवो के श्वास के रूप मे कैसे पुद्गल परिणत होते है ?

गौतम ! जो पुद्गल इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनाम होते हैं, वे उनके श्वास के रूप मे परिणत होते है। यही कथन अनुत्तरोपपातिकदेवो तक कहना चाहिए तथा यही बात उनके आहार रूप में परिणत होने वाले पुद्गलो के सम्बन्ध मे जाननी चाहिए। यही कथन अनुत्तरोपपातिकदेवो पर्यन्त समझना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान देवलोक के देवो के कितनी लेश्याए होती हैं ?

गौतम ! उनके मात्र एक तेजोलेश्या होती है। सनत्कुमार और माहेन्द्र मे एक पद्मलेश्या होती है, ब्रह्मलोक मे भी पद्मलेश्या होती है। शेष सब मे केवल शुक्ललेश्या होती है। अनुत्तरोपपातिक-देवो मे परमशुक्ललेश्या होती है।[1]

भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्प के देव सम्यग्दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि है या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं ?

गौतम ! तीनों प्रकार के है। ग्रैवेयक विमानो तक के देव सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि-मिश्रदृष्टि तीनो प्रकार के हैं। अनुत्तर विमानो के देव सम्यग्दृष्टि ही होते है, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि वाले नही होते।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्प के देव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

गौतम ! दोनो प्रकार के है। जो ज्ञानी है वे नियम से तीन ज्ञान वाले है और जो अज्ञानी है वे नियम से तीन अज्ञान वाले हैं। यह कथन ग्रैवेयकविमान तक करना चाहिए। अनुत्तरोपपातिकदेव ज्ञानी ही हैं—अज्ञानी नही। इस प्रकार ग्रैवेयकदेवो तक तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की नियमा है। अनुत्तरोपपातिकदेव ज्ञानी ही हैं—अज्ञानी नही। इस प्रकार ग्रैवेयकदेवो तक तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की नियमा है। अनुत्तरोपपातिकदेव ज्ञानी ही है, अज्ञानी नही। उनमे तीन ज्ञान नियमत होते ही हैं।

इसी प्रकार उन देवो मे तीन योग और दो उपयोग भी कहने चाहिए। सौधर्म-ईशान से लगाकर अनुत्तरोपपातिक पर्यन्त सब देवो मे तीन योग और दो उपयोग पाये जाते है।

अवधिक्षेत्रादि प्ररूपण

२०२. सोहम्मीसाणेसु देवा ओहिणा केवइयं खेत्तं जाणंति पासंति ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे जाव रयणप्पभापुढवी, उड्ढं जाव साइं विमाणाइं, तिरियं जाव असखेज्जा दीवसमुद्दा एवं—

१ किण्हा नीला काऊ तेउलेस्सा य भवणवतरिया।
जोइस सोहम्मीसाण तेउलेस्सा मुणेयव्वा ॥ १ ॥
कप्पेसणकुमारे माहिंदे चेव बभलोए य।
एएसु पम्हलेस्सा तेण पर सुक्कलेस्सा य ॥ २ ॥

सक्कीसाणा पढमं दोच्चं च सणकुमारमाहिंदा।
तच्चं च बंभलंतक सुक्कसहस्सारगा चउत्थि ॥ १ ॥

आणयपाणयकप्पे देवा पासंति पंचमि पुढवीं।
तं चेव आरणच्चुय ओहिनाणेण पासंति ॥ २ ॥

छट्ठि हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जा सत्तमि च उवरिल्ला।
संभिण्णलोगनालिं पासंति अणुत्तरा देवा ॥ ३ ॥

२०२ भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्प के देव अवधिज्ञान के द्वारा कितने क्षेत्र को जानते है—देखते है ?

गौतम ! जघन्यत अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण क्षेत्र को और उत्कृष्ट से नीची दिशा मे रत्नप्रभापृथ्वी तक, ऊर्ध्वदिशा मे अपने-अपने विमानो के ऊपरी भाग ध्वजा-पताका तक और तिरछीदिशा मे असख्यात द्वीप-समुद्रो को जानते-देखते हैं। (इस विषय को तीन गाथाओ मे कहा है—)

शक्र और ईशान प्रथम रत्नप्रभा नरकपृथ्वी के चरमान्त तक, सनत्कुमार और माहेन्द्र दूसरी पृथ्वी शर्कराप्रभा के चरमान्त तक, ब्रह्म और लातक तीसरी पृथ्वी तक, शुक्र और सहस्रार चौथी पृथ्वी तक, आणत-प्राणत-आरण-अच्युत कल्प के देव पाचवी पृथ्वी तक अवधिज्ञान के द्वारा जानते-देखते है। अधस्तनग्रैवेयक, मध्यमग्रैवेयक देव छठी नरक पृथ्वी के चरमान्त तक देखते है और उपरितन-ग्रैवेयक देव सातवी नरकपृथ्वी तक देखते है। अनुत्तरविमानवासी देव सम्पूर्ण चौदह रज्जू प्रमाण लोकनाली को अवधिज्ञान के द्वारा जानते-देखते हैं।

विवेचन—यहा सौधर्म-ईशान कल्प के देवो का अवधिज्ञान जघन्यत. अगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण क्षेत्र बताया है। यहा ऐसी शका होती है कि अगुल का असख्यातवा भागप्रमाण क्षेत्र वाला जघन्य अवधिज्ञान तो मनुष्य और तिर्यचो मे ही होता है। देवो मे तो मध्यम अवधिज्ञान होता है। तो यहा सौधर्म ईशान मे जघन्य अवधिज्ञान कैसे कहा गया है ? इसका समाधान इस प्रकार है कि यहा जिस जघन्य अवधिज्ञान का देवो मे होना बताया है, वह उन सौधर्मादि देवो के उपपातकाल मे पारभविक अवधिज्ञान को लेकर बतलाया गया है। तद्भवज अवधिज्ञान को लेकर नही।[1] प्रज्ञापना मे उत्कृष्ट अवधिज्ञान को लेकर जो कथन किया गया है—वही यहा निर्दिष्ट है। ऊपर मूल मे दी गई तीन गाथाओ और उनके अर्थ से वह स्पष्ट ही है।

२०३. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! देवाणं कइ समुग्घाया पण्णत्ता ? गोयमा ! पंच समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए, वेउव्वियसमुग्घाए, तेजससमुग्घाए। एवं जाव अच्चुए। गेवेज्जाणं आदिल्ला तिण्णिसमुग्घाया पण्णत्ता।

सोहम्मीसाणदेवा भंते ! केरिसयं खुहपिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ? गोयमा ! णत्थि खुहपिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति जाव अणुत्तरोववाइया।

---

१. वेमाणियाणमगुलभागमसख जहन्नओ ओही।
उववाए परभविओ तब्भवओ होइ तो पच्छा ॥ १ ॥

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! देवा एगत्त पभू विउव्वित्तए, पुहुत्तं पभू विउव्वित्तए ? हंता पभू; एगत्तं विउव्वेमाणा एगिंदियरूवं वा जाव पंचिंदियरूव वा, पुहुत्त विउव्वेमाणा एगिंदियरूवाणि वा जाव पंचिंदियरूवाणि वा; ताइं संखेज्जाइंपि असंखेज्जाइंपि सरिसाइंपि असरिसाइंपि संबद्धाइंपि असंबद्धाइंपि रूवाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता अप्पणा जहिच्छियाइं कज्जाइं करेंति जाव अच्चुओ।

गेविज्जणुत्तरोववाइयादेवा किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए, पुहुत्तं पभू विउव्वित्तए ? गोयमा ! एगत्तंपि पुहुत्तंपि। नो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा विउव्वति वा विउव्विस्संति वा।

सोहम्मीसाणदेवा केरिसयं सायासोक्खं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ? गोयमा ! मणुण्णा सद्दा जाव मणुण्णा फासा जाव गेविज्जा। अणुत्तरोववाइया अणुत्तरा सद्दा जाव फासा।

सोहम्मीसाणेसु देवाणं केरिसया इड्ढी पण्णत्ता ? गोयमा ! महिड्ढिया महज्जुइया जाव महाणुभागा इड्ढीए पण्णत्ता जाव अच्चुओ। गेविज्जणुत्तरा य सव्वे महिड्ढिया जाव सव्वे महाणुभागा अणिंदा जाव अहमिंदा णाम णाम ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो !

२०३ भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्पो मे देवो मे कितने समुद्घात कहे है ?

गौतम ! पाच समुद्घात होते है—१ वेदनासमुद्घात, २ कषायसमुद्घात, ३ मारणान्तिकसमुद्घात, ४ वैक्रियसमुद्घात और ५ तेजससमुद्घात । इसी प्रकार अच्युतदेवलोक तक पाच समुद्घात कहने चाहिए । ग्रैवेयकदेवो के आदि के तीन समुद्घात कहे गये है—

वेदना, कषाय और मारणान्तिक समुद्घात ।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान देवलोक के देव कैसी भूख-प्यास का अनुभव करते हुए विचरते हैं ? गौतम ! यह शका नही करनी चाहिये, क्योकि उन देवो को भूख-प्यास की वेदना होती ही नही है । अनुत्तरोपपातिकदेवो पर्यन्त इसी प्रकार का कथन करना चाहिए ।

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्पो के देव एकरूप की विकुर्वणा करने मे समर्थ है या बहुत सारे रूपो की विकुर्वणा करने मे समर्थ है ? गौतम ! दोनो प्रकार की विकुर्वणा करने मे समर्थ है । एक की विकुर्वणा करते हुए वे एकेन्द्रिय का रूप यावत् पचेन्द्रिय का रूप बना सकते हैं और बहुरूप की विकुर्वणा करते हुए वे बहुत सारे एकेन्द्रिय रूपो की यावत् पचेन्द्रिय रूपो की विकुर्वणा कर सकते हैं । वे सख्यात अथवा असख्यात सरीखे या भिन्न-भिन्न और सबद्ध (आत्मप्रदेशो से समवेत) असबद्ध (आत्मप्रदेशो से भिन्न) नाना रूप बनाकर इच्छानुसार कार्य करते है । ऐसा कथन अच्युतदेवो पर्यन्त कहना चाहिए ।

भगवन् ! ग्रैवेयकदेव और अनुत्तर विमानो के देव एक रूप बनाने मे समर्थ हैं या बहुत सारे रूप बनाने मे समर्थ है ? गौतम ! वे एकरूप भी बना सकते हैं और बहुत सारे रूप भी बना सकते है । लेकिन उन्होने ऐसी विकुर्वणा न तो पहले कभी की है, न वर्तमान मे करते हैं और न भविष्य मे कभी करेगे । (क्योकि वे उत्तरविक्रिया करने की शक्ति से सम्पन्न होने पर भी प्रयोजन के अभाव तथा प्रकृति की उपशान्तता से विक्रिया नही करते ।)

भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्प के देव किस प्रकार का साता-सौख्य अनुभव करते हुए विचरते हैं ?

गौतम ! मनोज्ञ शब्द यावत् मनोज्ञ स्पर्शों द्वारा सुख का अनुभव करते हुए विचरते हैं। यह कथन ग्रैवेयकदेवों तक समझना चाहिए। अनुत्तरोपपातिकदेव अनुत्तर (सर्वश्रेष्ठ) शब्दजन्य यावत् अनुत्तर स्पर्शजन्य सुखो का अनुभव करते हैं।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान देवो की ऋद्धि कैसी है ? गौतम ! वे महान् ऋद्धिवाले, महाद्युतिवाले यावत् महाप्रभावशाली ऋद्धि से युक्त है। अच्युतविमान पर्यन्त ऐसा कहना चाहिए।

ग्रैवेयकविमानो और अनुत्तरविमानो मे सब देव महान् ऋद्धिवाले यावत् महाप्रभावशाली हैं। वहा कोई इन्द्र नही है। सब "अहमिन्द्र" हैं, वहा छोटे-बडे का भेद नही है। हे आयुष्मन् श्रमण ! वे देव अहमिन्द्र कहलाते है।

२०४ सोहम्मीसाणा देवा केरिसया विभूसाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा— वेउव्वियसरीरा य, अवेउव्विय-सरीरा य। तत्थ णं जे से वेउव्वियसरीरा ते हारविराइयवच्छा जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा जाव पडिरूवा। तत्थ णं जे से अवेउव्वियसरीरा ते ण आभरणवसणरहिआ पगइत्था विभूसाए पण्णत्ता।

सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवीओ केरिसयाओ विभूसाए पण्णत्ताओ ? गोयमा ! दुविहाओ पण्णत्ताओ तं जहा—वेउव्वियसरीराओ य अवेउव्वियसरीराओ य। तत्थ णं जाओ वेउव्विय-सरीराओ ताओ सुवण्णसद्दालाओ सुवण्णसद्दालाइं वत्थाइ पवर परिहियाओ चंदाणणाओ चंदविला-सिणीओ चंदद्धसमणिडालाओ सिंगारागारचारुवेसाओ संगय जाव पासाइओ जाव पडिरूवाओ। तत्थ णं जाओ अवेउव्वियसरीराओ ताओ णं आभरणवसणरहियाओ पगइत्थाओ विभूसाए पण्णत्ताओ। सेसेसु देवीओ णत्थि जाव अच्चुओ।

गेवेज्जगदेवा केरिसया विभूसाए पण्णत्ता ? गोयमा ! आभरणवसणरहिया एव देवी णत्थि भाणियव्वं। पगइत्था विभूसाए पण्णत्ता एवं अणुत्तरावि।

सोहम्मीसाणेसु देवा केरिसए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरंति ? गोयमा ! इट्ठा सद्दा इट्ठा रूवा जाव फासा। एवं जाव गेवेज्जा। अणुत्तरोववाइयाणं अणुत्तरा सद्दा जाव अणुत्तरा फासा।

ठिई सव्वेसिं भाणियव्वा। अणंतरं चयंति, चइत्ता जे जहिं गच्छंति तं भाणियव्वं।

२०४ भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्प के देव विभूषा की दृष्टि से कैसे हैं ?

गौतम वे देव दो प्रकार के हैं—वैक्रियशरीर वाले और अवैक्रियशरीर वाले। उनमे जो वैक्रियशरीर (उत्तरवैक्रिय) वाले है वे हारो से सुशोभित वक्षस्थल वाले यावत् दसो दिशाओ को उद्योतित करने वाले, प्रभासित करने वाले यावत् प्रतिरूप हैं। जो अवैक्रियशरीर (भवधारणीय-शरीर) वाले हैं वे आभरण और वस्त्रो से रहित है और स्वाभाविक विभूषण से सम्पन्न है।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्पो मे देविया विभूषा की दृष्टि से कैसी है ? गौतम ! वे दो प्रकार की हैं—उत्तरवैक्रियशरीर वाली और अवैक्रियशरीर (भवधारणीयशरीर) वाली। इनमे जो उत्तरवैक्रियशरीर वाली वे स्वर्ण के नूपुरादि आभूषणो की ध्वनि से युक्त है तथा स्वर्ण की बजती किंकिणियों वाले वस्त्रो को तथा उद्भट वेश को पहनी हुई है, चन्द्र के समान उनका मुखमण्डल है,

चन्द्र के समान विलास वाली हैं, अर्धचन्द्र के समान भाल वाली है, वे शृंगार की साक्षात् मूर्ति हैं और सुन्दर परिधान वाली हैं, वे सुन्दर यावत् दर्शनीय, प्रसन्नता पैदा करने वाली और सौन्दर्य की प्रतीक हैं। उनमे जो अविकुर्वित शरीर वाली हैं वे आभूषणो और वस्त्रो से रहित स्वाभाविक-सहज सौन्दर्य वाली हैं।

सौधर्म-ईशान को छोडकर शेष कल्पों मे देव ही है, वहा देविया नही है। अत अच्युतकल्प पर्यन्त देवो की विभूषा का वर्णन उक्त रीति के अनुसार ही करना चाहिए। ग्रैवेयकदेवो की विभूषा कैसी है ? इस प्रश्न के उत्तर मे कहा गया है कि गौतम ! वे देव आभरण और वस्त्रो की विभूषा से रहित हैं, स्वाभाविक विभूषा से सम्पन्न है। वहा देविया नही है। इसी प्रकार अनुत्तरविमान के देवो की विभूषा का कथन भी कर लेना चाहिए।

भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्प मे देव कैसे कामभोगो का अनुभव करते हुए विचरते है ? गौतम ! इष्ट शब्द, इष्ट रूप यावत् इष्ट स्पर्श जन्य सुखो का अनुभव करते हैं। ग्रैवेयकदेवो तक उक्त रीति से कहना चाहिए। अनुत्तरविमान के देव अनुत्तर शब्द यावत् अनुत्तर स्पर्श जन्य सुख का अनुभव करते हैं।

सब वैमानिक देवो की स्थिति कहनी चाहिए तथा देवभव से च्यवकर कहा उत्पन्न होते है—यह उद्वर्तनाद्वार कहना चाहिए।

विवेचन—उक्त सूत्र में स्थिति और उद्वर्तना का निर्देशमात्र किया गया है। अतएव सक्षेप मे उसकी स्पष्टता करना यहा आवश्यक है। स्थिति इस प्रकार है—

क्र. सं.	कल्पादि के नाम	जघन्यस्थिति	उत्कृष्टस्थिति
१	सौधर्मकल्प	१ पल्योपम	२ सागरोपम
२	ईशानकल्प	१ पल्यो से कुछ अधिक	२ सागरोपम से कुछ अधिक
३	सनत्कुमारकल्प	२ सागरोपम	७ सागरोपम
४	माहेन्द्रकल्प	२ सागरोपम से अधिक	७ सागरोपम से अधिक
५	ब्रह्मलोककल्प	७ सागरोपम	१० सागरोपम
६	लान्तककल्प	१० सागरोपम	१४ सागरोपम
७.	महाशुक्रकल्प	१४ सागरोपम	१७ सागरोपम
८	सहस्रारकल्प	१७ सागरोपम	१८ सागरोपम
९	आनतकल्प	१८ सागरोपम	१९ सागरोपम
१०	प्राणतकल्प	१९ सागरोपम	२० सागरोपम
११	आरणकल्प	२० सागरोपम	२१ सागरोपम
१२	अच्युतकल्प	२१ सागरोपम	२२ सागरोपम

देवों के नाम	जघन्यस्थिति	उत्कृष्टस्थिति
प्रथम ग्रैवेयक	२२ सागरोपम	२३ सागरोपम
द्वितीय ग्रैवेयक	२३ सागरोपम	२४ सागरोपम
तृतीय ग्रैवेयक	२४ सागरोपम	२५ सागरोपम
चतुर्थ ग्रैवेयक	२५ सागरोपम	२६ सागरोपम
पचम ग्रैवेयक	२६ सागरोपम	२७ सागरोपम
षष्ठ ग्रैवेयक	२७ सागरोपम	२८ सागरोपम
सप्तम ग्रैवेयक	२८ सागरोपम	२९ सागरोपम
अष्टम ग्रैवेयक	२९ सागरोपम	३० सागरोपम
नवम ग्रैवेयक	३० सागरोपम	३१ सागरोपम
विजय अनुत्तर विमान	३१ सागरोपम	३२ सागरोपम
वेजयत अनुत्तर विमान	३१ सागरोपम	३२ सागरोपम
जयत अनुत्तर विमान	३१ सागरोपम	३२ सागरोपम
अपराजित अनुत्तर विमान	३१ सागरोपम	३२ सागरोपम
सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर विमान	अजघन्योत्कर्ष	३३ सागरोपम

उद्वर्तनाद्वार—सौधर्म देवलोक के देव बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय अप्काय और वनस्पतिकाय मे, सख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त गर्भज तिर्यंच पचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्यो मे उत्पन्न होते है। ईशानदेव भी इन्ही मे उत्पन्न होते है। सनत्कुमार से लेकर सहस्रार पर्यन्त के देव सख्यात वर्ष की आयुवाले पर्याप्त गर्भज तिर्यंच और मनुष्यो मे ही उत्पन्न होते हैं, ये एकेन्द्रियो मे उत्पन्न नही होते। आनत से लगाकर अनुत्तरोपपातिक देव तिर्यच पचेन्द्रियो मे भी उत्पन्न नही होते, केवल सख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज मनुष्यो मे ही उत्पन्न होते है।

२०५ सोहम्मीसाणेसु भंते ! कप्पेसु सव्वपाणा सव्वभूया जाव सत्ता पुढविकाइयत्ताए[1] देवत्ताए देवित्ताए आसणसयण जाव भंडोवगरणत्ताए उववण्णपुव्वा ?

हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो । सेसेसु कप्पेसु एवं चेव नवरं नो चेव णं देवित्ताए जाव गेवेज्जगा । अणुत्तरोववाइएसुवि एवं णो चेव णं देवत्ताए देवित्ताए । सेत्तं देवा ।

२०५ भगवन् ! सौधर्म-ईशानकल्पो मे सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्व पृथिवीकाय के रूप मे, देव के रूप मे, देवी के रूप मे, आसन-शयन यावत् भण्डोपकरण के रूप मे पूर्व मे उत्पन्न हो चुके हैं क्या ?

१. 'जाव वणस्सइकाइयत्ताए'' पाठ कई प्रतियो मे है, परन्तु वृत्तिकार ने उसे उचित नही माना है। क्योकि वहा तेजस्काय सभव ही नही है।

हाँ, गौतम ! अनेकबार अथवा अनन्तबार उत्पन्न हो चुके हैं । शेष कल्पो में ऐसा ही कहना चाहिए, किन्तु देवी के रूप में उत्पन्न होना नहीं कहना चाहिए (क्योकि सौधर्म-ईशान से आगे के विमानो मे देविया नही होती) । ग्रैवेयक विमानो तक ऐसा कहना चाहिए । अनुत्तरोपपातिक विमानों में पूर्ववत् कहना चाहिये, किन्तु देव और देवीरूप में नही कहना चाहिए । यहां देवों का कथन पूर्ण हुआ ।

विवेचन—यहा प्रश्न किया गया है कि सौधर्म देवलोक के बत्तीस लाख विमानो मे से प्रत्येक मे क्या सब प्राणी, भूत, जीव और सत्व पृथ्वीरूप मे, देव, देवी और भडोपकरण के रूप मे पहले उत्पन्न हो चुके हैं ? (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय को प्राण मे सम्मिलित किया है, वनस्पति को भूत मे, पचेन्द्रियो को जीव मे और शेष पृथ्वी-अप्-तेज-वायु को सत्व मे शामिल किया गया है ।[1] उत्तर में कहा गया है—अनेकबार अथवा अनन्तबार उत्पन्न हो चुके हैं । साव्यवहारिक राशि के अन्तर्गत जीव प्राय. सर्वस्थानो मे अनन्तबार उत्पन्न हुए हैं । यहाँ पर अनेक प्रतियो मे "पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए" पाठ उपलब्ध होता है । परन्तु वृत्तिकार के अनुसार यह सगत नही है । क्योकि वहा तेजस्काय का अभाव है । वृत्तिकार के अनुसार "पृथ्वीकाइयतया देवतया देवीतया" इतना ही उल्लेख सगत है । आसन, शयन यावत् भण्डोपकरण आदि पृथ्वीकायिक जीव मे सम्मिलित है ।

सौधर्म-ईशानकल्प तक ही देविया हैं, अतएव आगे के विमानो मे देवीरूप से उत्पन्न होना नही कहना चाहिए । ग्रैवेयक विमानो तक तो देवीरूप मे उत्पन्न होने का निषेध किया गया है । अनुत्तरविमानो मे देवीरूप और देवरूप दोनो का निषेध है । देविया तो वहा होती ही नही । देवो का निषेध इसलिए किया गया है कि विजयादि चार विमानो मे तो उत्कर्ष से दो बार, सर्वार्थसिद्ध विमान मे केवल एक ही बार जीव जा सकता है, अनन्तबार नही । अनन्तबार न जाने की दृष्टि से ही निषेध समझना चाहिए । यहा देवो का वर्णन समाप्त होता है ।

सामान्यतया भवस्थिति आदि का वर्णन

२०६. नेरइयाण भते ! केवइयं काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइ, एवं सव्वेंसि पुच्छा । तिरिक्खजोणियाणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं एवं मणुस्साणवि । देवाण जहा णेरइयाण ।

देव-णेरइयाणं जा चेव ठिती सा चेव संचिट्ठणा । तिरिक्खजोणियस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो । मणुस्से णं भंते ! मणुस्सेति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडि पुहुत्तमब्भहियाइं । णेरइयमणुस्सदेवाणं अंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो । तिरिक्खजोणियस्स अंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेणं सागरोपमसयपुहुत्तसाइरेगं ।

---

१. प्राणा द्वित्रिचतु प्रोक्ता भूताश्च तरव स्मृता ।
जीवा पचेन्द्रिया ज्ञेया शेषा. सत्वा उदीरिता ॥ —वृत्ति

एएसि णं भंते ! णेरइयाणं जाव देवाण कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ? गोयमा ! सव्वत्थोवा मणुस्सा, णेरइया असंखेज्जगुणा, देवा असंखेज्जगुणा, तिरिया अणंतगुणा । सेत्तं चउव्विहा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ।

२०६ भगवन् ! नैरयिको की स्थिति कितनी है ?

गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। इस प्रकार सबके लिए प्रश्न कर लेना चाहिए । तिर्यचयोनिक की जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। मनुष्यो की भी यही है। देवो की स्थिति नैरयिको के समान जाननी चाहिए ।

देव और नारक की जो स्थिति है, वही उनकी सचिट्ठणा है अर्थात् कायस्थिति है । (उसी-उमी भव मे उत्पन्न होने के काल को कायस्थिति कहते है ।)

तिर्यच की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। भते ! मनुष्य, मनुष्य के रूप मे कितने काल तक रह सकता है ? गोतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकता है ।

नैरयिक, मनुष्य और देवो का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। तिर्यंचयोनियो का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सौ से नौ सौ सागरोपम का होता है ।

भगवन् ! इन नैरयिको यावत् देवो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोडे मनुष्य हैं, उनसे नैरयिक असख्यगुण है, उनसे देव असख्यगुण है और उनसे तिर्यंच अनन्तगुण हैं ।

इस प्रकार चार प्रकार के ससारसमापन्नक जीवो का वर्णन पूरा होता है ।

विवेचन—देवो के वर्णन के पश्चात् नारक, तिर्यच, मनुष्य और देवो की समुच्चय रूप से स्थिति, सचिट्ठना (कायस्थिति), अन्तर और अल्पबहुत्व का कथन प्रस्तुत सूत्र मे किया गया है। नारको की जघन्यस्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है । जघन्यस्थिति रत्नप्रभा नरक के प्रथम प्रस्तर की अपेक्षा से और उत्कृष्टस्थिति सप्तम नरकपृथ्वी की अपेक्षा से समझनी चाहिए ।

तिर्यग्योनिको की जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है । यह देवकुरु आदि की अपेक्षा से है । मनुष्यो की भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति है । देवो की जघन्य दस हजार वर्ष—भवनपति और व्यन्तर देवो की अपेक्षा से और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम विजयादि विमान की अपेक्षा से कही गई है । यह भवस्थिति बताई है ।

सचिट्ठणा का अर्थ कायस्थिति है । अर्थात् कोई जीव उसी-उसी भव मे जितने काल तक रह सकता है । नारको और देवों की भवस्थिति ही उनकी कायस्थिति है । क्योकि यह नियम है कि देव मरकर अनन्तर भव मे देव नही होता है, नारक भी मरकर अनन्तर भव मे नारक नही होता ।[1]

---

१. "नो नेरइएसु उववज्जइ", "नो देव देवेसु उववज्जइ" इति वचनात् ।

इसलिए कहा गया है कि देवो और नारको की जो भवस्थिति है, वही उनकी सचिट्ठणा (कायस्थिति) है।

तिर्यग्योनिको की सचिट्ठणा जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि तदनन्तर मरकर वे मनुष्यादि मे उत्पन्न हो सकते है। उत्कृष्ट से उनकी सचिट्ठणा अनन्तकाल है, क्योकि वनस्पति मे अनन्तकाल तक जन्ममरण हो सकता है। अनन्तकाल का अर्थ यहा वनस्पतिकाल से है। वनस्पतिकाल का प्रमाण इस प्रकार है—काल से अनन्त उत्सर्पिणिया—अवसर्पिणिया प्रमाण, क्षेत्र से अनन्त लोक और असख्यात पुद्गलपरावर्त प्रमाण। ये पुद्गलपरावर्त आवलिका के असख्यातवे भाग मे जितने समय हैं, उतने समझने चाहिए।

मनुष्य की सचिट्ठणा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त। तदनन्तर मरकर तिर्यग् आदि मे उत्पन्न हो सकता है। उत्कृष्ट सचिट्ठणा पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम है। महाविदेह आदि मे सात मनुष्यभव (पूर्वकोटि आयु के) और आठवा भव देवकुरु आदि मे उत्पन्न होने की अपेक्षा से समझना चाहिए।

अन्तरद्वार—कोई जीव एक भव से मरकर फिर जितने काल के बाद उसी भव मे आता है—वह अन्तर कहलाता है। नैरयिक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। नरक से निकलकर अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त तिर्यंच या मनुष्य भव मे रहकर पुन नारक बनने की अपेक्षा से है। कोई जीव नरक से निकलकर गर्भज मनुष्य के रूप मे उत्पन्न हुआ, सब पर्याप्तियो से पूर्ण हुआ और विशिष्ट संज्ञान से युक्त होकर वैक्रियलब्धिमान होता हुआ राज्यादि का अभिलाषी, परचक्री का उपद्रव जानकर अपनी शक्ति के प्रभाव से चतुरगिणी सेना विकुर्वित कर सग्राम करता हुआ महारौद्रध्यान ध्याता हुआ गर्भ मे ही मरकर नरक मे उत्पन्न होता है—इस अपेक्षा से मनुष्यभव मे पैदा होकर जघन्य अन्तर्मुहूर्त मे वह नारक जीव फिर नरक मे उत्पन्न होता है। नरक से निकलकर तन्दुलमत्स्य के रूप मे उत्पन्न होकर महारौद्रध्यान वाला बनकर अन्तर्मुहूर्त जीकर फिर नरक मे पैदा होता है—इस अपेक्षा से तिर्यक्भव करके पुन नारक उत्पन्न होने का जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त समझना चाहिए। उत्कृष्ट अन्तर वनस्पति मे अनन्तकाल जन्म-मरण के पश्चात् नरक मे उत्पन्न होने पर घटित होता है।

तिर्यग्योनिको का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। कोई तिर्यच मरकर मनुष्यभव मे अन्तर्मुहूर्त रहकर फिर तिर्यच रूप में उत्पन्न हुआ, इस अपेक्षा से है। उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व से कुछ अधिक है। दो सौ सागरोपम से नौ सौ सागरोपम तक निरन्तर देव, नारक और मनुष्य भव मे भ्रमण करते रहने पर घटित होता है।

मनुष्य का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल है। मनुष्यभव से निकलकर अन्तर्मुहूर्त काल तक तिर्यग्भव मे रहकर फिर मनुष्य बनने पर जघन्य अन्तर घटित होता है। उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल स्पष्ट ही है।

देवो का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। कोई जीव देवभव से च्यवकर गर्भज मनुष्य के रूप मे पैदा हुआ, सब पर्याप्तियो से पूर्ण हुआ। विशिष्ट सज्ञान वाला हुआ। तथाविध श्रमण या श्रमणोपासक के पास धार्मिक आर्यवचनो को सुनकर धर्मध्यान ध्याता हुआ गर्भ मे ही मरकर देवो में उत्पन्न हुआ, इस अपेक्षा से जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त काल घटित होता है। उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल का

है, जो वनस्पतिकाय मे अनन्तकाल तक जन्म-मरण करते रहने के बाद देव बनने पर घटित होता है ।

अल्पबहुत्वद्वार—अल्पबहुत्व विवक्षा मे सबसे थोडे मनुष्य है । क्योकि वे श्रेणी के असख्येय-भागवर्ती आकाशप्रदेशो की राशिप्रमाण हैं । उनसे नैरयिक असख्येयगुण है, क्योंकि वे अगुलमात्र क्षेत्र की प्रदेशराशि के प्रथम वर्गमूल को द्वितीय वर्गमूल से गुणित करने पर जितनी प्रदेशराशि होती है उतने प्रमाण वाली श्रेणिबो मे जितने आकाशप्रदेश होते हैं, उतने प्रमाण मे नैरयिक है । नैरयिको से देव असख्येयगुण है, क्योकि महादण्डक मे व्यन्तर और ज्योतिष्क देव नारकियो से असख्यातगुण कहे गये है । देवों से तिर्यच अनन्तगुण हैं, क्योकि वनस्पति के जीव अनन्तानन्त कहे गये है ।

इस प्रकार चार प्रकार के ससारसमापन्नक जीवो की प्रतिपत्ति का कथन सम्पूर्ण हुआ ।

।। तृतीय प्रतिपत्ति समाप्त ।।

पञ्चविधाख्या चतुर्थ प्रतिपत्ति

२०७. तत्थ जंजे ते एवमाहंसु—पंचविहा संसारसमावण्णगा जीवा, ते एवमाहंसु, तं जहा—एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया।

से किं तं एगिंदिया ? एगिंदिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एवं जाव पंचिंदिया दुविहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

एगिंदियस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्त उक्कोसेण बावीस वाससहस्साइ। बेइंदियस्स० जहन्नेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेण बारस संवच्छराणि। एव तेइंदियस्स एगूणपण्णं राइंदियाण, चउरिंदियस्स छम्मासा, पंचिंदियस्स जहन्नेण अंतोमुहुत्त उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइ।

अपज्जत्तएगिंदियस्स णं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं। एव सव्वेसिं।

पज्जत्तेगिंदियाणं णं जाव पंचिंदियाणं पुच्छा ? जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं। एवं उक्कोसियावि ठिई अंतोमुहुत्तूणा सव्वेसिं पज्जत्ताणं कायव्वा।

२०७ जो आचार्यादि ऐसा प्रतिपादन करते है कि संसारसमापन्नक जीव पाच प्रकार के हैं, वे उनके भेद इस प्रकार कहते हैं, यथा—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पचेन्द्रिय।

भगवन् ! एकेन्द्रिय जीवो के कितने प्रकार हैं ? गौतम ! एकेन्द्रिय जीव दो प्रकार के है—पर्याप्त एकेन्द्रिय और अपर्याप्त एकेन्द्रिय। इस प्रकार पंचेन्द्रिय पर्यन्त सबके दो-दो भेद कहने चाहिये—पर्याप्त और अपर्याप्त।

भगवन् ! एकेन्द्रिय जीवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष की। द्वीन्द्रिय की जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट बारह वर्ष की, त्रीन्द्रिय की ४९ उनंचास रात-दिन की, चतुरिन्द्रिय की छह मास की और पचेन्द्रिय की जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति है।

भगवन् ! अपर्याप्त एकेन्द्रिय की कितनी स्थिति है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की स्थिति है। इसी प्रकार सब अपर्याप्तो की स्थिति कहनी चाहिए।

भगवन् ! पर्याप्त एकेन्द्रिय यावत् पर्याप्त पचेन्द्रिय जीवों की कितनी स्थिति है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बावीस हजार वर्ष की स्थिति है। इसी प्रकार सब पर्याप्तों की उत्कृष्ट स्थिति उनकी कुलस्थिति से अन्तर्मुहूर्त कम कहनी चाहिए।

२०८. एगिंदिए णं भंते ! एगिंदिएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

बेइंदिए णं भंते ! बेइंदिएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जं कालं जाव चउरिंदिए संखेज्जं कालं । पंचिंदिए णं भंते ! पंचिंदिएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसहस्सं सातिरेगं ।

एगिंदिए णं अपज्जत्तए णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं जाव पंचिंदियअपज्जत्तए ।

पज्जत्तगएगिंदिए णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससहस्साइं । एवं बेइंदिएवि, णवरि संखेज्जाइं वासाइं । तेइंदिए णं भंते० संखेज्जा राइंदिया । चउरिंदिए णं० संखेज्जा मासा । पज्जत्तपंचिंदिए सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं ।

एगिंदियस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होई ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं ।

बेइंदियस्स णं अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो । एवं तेइंदियस्स चउरिंदियस्स पंचेंदियस्स । अपज्जत्तगाणं एवं चेव । पज्जत्तगाण वि एवं चेव ।

२०८ भगवन् ! एकेन्द्रिय, एकेन्द्रियरूप मे कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल पर्यन्त रहता है ।

भगवन् ! द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रियरूप मे कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यातकाल तक रहता है । यावत् चतुरिन्द्रिय भी सख्यात काल तक रहता है ।

भगवन् ! पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियरूप मे कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार सागरोपम तक रहता है ।

भगवन् ! अपर्याप्त एकेन्द्रिय उसी रूप मे कितने समय तक रहता है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है । इसी प्रकार अपर्याप्त पचेन्द्रिय तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! पर्याप्त एकेन्द्रिय उसी रूप मे कितने समय तक रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्ष तक रहता है । इसी प्रकार द्वीन्द्रिय का कथन करना चाहिए, विशेषता यह है कि यहा सख्यात वर्ष कहना चाहिए ।

भगवन् ! त्रीन्द्रिय की पृच्छा ? सख्यात रात-दिन तक रहता है । चतुरिन्द्रिय सख्यात मास तक रहता है । पर्याप्त पचेन्द्रिय साधिकसागरोपमशतपृथक्त्व तक रहता है ।

भगवन् ! एकेन्द्रिय का अन्तर कितना कहा गया है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट दो हजार सागरोपम और सख्यात वर्ष अधिक का अन्तर है । द्वीन्द्रिय का अन्तर कितना है ?

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय का तथा अपर्याप्तक और पर्याप्तक का भी अन्तर इसी प्रकार कहना चाहिए।

विवेचन—भवस्थिति सम्बन्धी सूत्र तो स्पष्ट ही है। कायस्थिति तथा अन्तरद्वार की स्पष्टता इस प्रकार है—

एकेन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, तदनन्तर मरकर द्वीन्द्रियादि मे उत्पन्न हो सकते हैं। उत्कृष्ट अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल है। वनस्पति एकेन्द्रिय होने से एकेन्द्रियपद मे उसका भी ग्रहण है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय सूत्रो मे उत्कृष्ट कायस्थिति सख्येयकाल अर्थात् सख्येय-हजार वर्ष है, क्योकि "विगलिंदियाण वाससहस्सासखेज्जा" ऐसा कहा गया है। पचेन्द्रिय सूत्र मे उत्कृष्ट कायस्थिति हजार सागरोपम से कुछ अधिक है—इतने काल तक नैरयिक, तिर्यक्, मनुष्य और देव भव मे पचेन्द्रिय रूप से बना रह सकता है।

एकेन्द्रियादि अपर्याप्तक सूत्रो मे जघन्य और उत्कृष्ट कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है, क्योकि अपर्याप्तलब्धि का कालप्रमाण इतना ही है।

एकेन्द्रिय-पर्याप्त सूत्र में उत्कृट कायस्थिति सख्येय हजार वर्ष है। एकेन्द्रियो मे पृथ्वीकाय की उत्कृष्ट भवस्थिति बावीस हजार वर्ष है, अप्काय की सात हजार वर्ष, तेजस्काय की तीन अहोरात्र, वायुकाय की तीन हजार वर्ष, वनस्पतिकाय की दस हजार वर्ष की भवस्थिति है, अत निरन्तर कतिपय पर्याप्त भवो को जोडने पर सख्येय हजार वर्ष ही घटित होते हैं। द्वीन्द्रिय पर्याप्त मे उत्कृष्ट सख्येय वर्ष की कायस्थिति है। क्योकि द्वीन्द्रिय की उत्कृष्ट भवस्थिति बारह वर्ष की है। सब भवों मे उत्कृष्ट स्थिति तो होती नही, अत. कतिपय निरन्तर पर्याप्त भवो के जोडने से सख्येय वर्ष ही प्राप्त होते हैं, सौ वर्ष या हजार वर्ष नही। त्रीन्द्रिय-पर्याप्त सूत्र मे सख्येय अहोरात्र की कायस्थिति है, क्योकि उनकी भवस्थिति उत्कृष्ट उनपचास दिन की है। कतिपय निरन्तर पर्याप्त भवो की सकलना करने से सख्येय अहोरात्र ही प्राप्त होते है। चतुरिन्द्रिय-पर्याप्त सूत्र मे सख्येय मास की उत्कृष्ट कायस्थिति है, क्योकि उनकी भवस्थिति उत्कर्ष से छह मास है। अत कतिपय निरन्तर पर्याप्त भवो की सकलना से सख्येय मास ही प्राप्त होते हैं। पचेन्द्रिय-पर्याप्त सूत्र मे सातिरेक सागरोपम शतपृथक्त्व की कायस्थिति है। नैरयिक-तिर्यंच-मनुष्य-देवभवो मे पचेन्द्रिय-पर्याप्त के रूप मे इतने काल तक रह सकता है।

अन्तरद्वार—एकेन्द्रियो का अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, एकेन्द्रिय से निकलकर द्वीन्द्रियादि मे अन्तर्मुहूर्त काल रहकर पुन एकेन्द्रिय में उत्पन्न होने की अपेक्षा से है। उत्कृष्ट अन्तर सख्येयवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है। जितनी त्रसकाय की कायस्थिति है, उतना ही एकेन्द्रिय का अन्तर है। त्रसकाय की कायस्थिति सख्येयवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम की कही गई है।[1]

---

१ "तसकाइए ण भते ! तसकाएत्ति कालम्रो केवच्चिर होई ?
गोयमा ! जहन्नेण अतोमुहुत्त उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइ सखेज्जवासमब्भहियाइ।"

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय सूत्र में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सर्वत्र वनस्पतिकाल है। जो द्वीन्द्रिय से निकलकर अनन्तकाल तक वनस्पति में रहने के बाद फिर द्वीन्द्रियादि मे उत्पन्न होने की अपेक्षा से समझना चाहिए।

जिस प्रकार अन्तर विषयक पांच ओघिक सूत्र कहे हैं उसी प्रकार पर्याप्त विषय में अपर्याप्त विषय में भी कह लेने चाहिए।

अल्पबहुत्व द्वार

२०९ एएसि णं भंते! एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचिंदियाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा पंचिंदिया, चउरिंदिया विसेसाहिया, तेइंदिया विसेसाहिया, बेइंदिया विसेसाहिया, एगिंदिया अणंतगुणा।

एवं अपज्जत्तगाणं सव्वत्थोवा पंचिंदिया अपज्जत्तगा, चउरिंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, तेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, बेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, एगिंदिया अपज्जत्तगा अणंतगुणा, सइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा, पंचिंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया, बेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया, तेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया, एगिंदिया पज्जत्तगा अणंतगुणा, सइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया।

एतेसि णं भंते! सइंदियाणं पज्जत्तग-अपज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा०? गोयमा! सव्वत्थोवा सइंदिया अपज्जत्तगा, सइंदियपज्जत्तगा संखेज्जगुणा। एवं एगिंदियावि।

एएसि णं भंते! बेइंदियाणं पज्जत्तापज्जत्तगाणं अप्पाबहुं? गोयमा! सव्वत्थोवा बेइंदियपज्जत्तगा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा। एवं तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया वि।

एतेसि णं भंते! एगिंदियाणं, बेइंदियाणं, तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचिंदियाण य पज्जत्तगाण य अपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा०? गोयमा! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा, पंचिंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया, बेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया, तेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया, पंचिंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, चउरिंदिया अपज्जत्ता विसेसाहिया, तेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, बेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, एगिंदिया अपज्जत्तगा अणंतगुणा, सइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, एगिंदिया पज्जत्ता संखेज्जगुणा, सइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया, सइंदिया विसेसाहिया। सेत्तं पंचविहा संसारसमावण्णगजीवा।।

२०९ भगवन् इन एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

गौतम! सबसे थोडे पचेन्द्रिय हैं, उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं और उनसे एकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं।

इसी प्रकार अपर्याप्तक एकेन्द्रियादि मे सबसे थोड़े पचेन्द्रिय अपर्याप्त, उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक और उनसे एकेन्द्रिय अपर्याप्त अनन्तगुण हैं। उनसे सेन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक है।

इसी प्रकार पर्याप्तक एकेन्द्रियादि मे सबसे थोडे चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक, उनसे पंचेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे एकेन्द्रिय पर्याप्तक अनन्तगुण है। उनसे सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

भगवन् ! इन सेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? **गौतम** ! सबसे थोडे सेन्द्रिय अपर्याप्त, उनसे सेन्द्रिय पर्याप्त सख्येयगुण है।

इसी प्रकार एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त का अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

भगवन् ! इन द्वीन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त मे कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ? गौतम ! *सबसे थोडे द्वीन्द्रिय पर्याप्त, उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त असख्येयगुण है।* इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रियो का अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

भगवन् ! इन एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्तो मे कौन किससे अल्प, बहु, तुल्य या विशेषाधिक है ?

गौतम ! सबसे थोड़े चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, उनसे पचेन्द्रिय पर्याप्त विशेषाधिक, उनसे द्वीन्द्रिय पर्याप्त विशेषाधिक, उनसे त्रीन्द्रिय पर्याप्त विशेषाधिक, उनसे पचेन्द्रिय अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे एकेन्द्रिय अपर्याप्त अनन्तगुण, उनसे सेन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे एकेन्द्रिय पर्याप्त सख्येयगुण, उनसे सेन्द्रिय पर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सेन्द्रिय विशेषाधिक।

इस प्रकार पाच प्रकार के ससारसमापन्नक जीवो का वर्णन पूरा हुआ।

विवेचन—(१) पहले एकेन्द्रिय यावत् पचेन्द्रियो का सामान्यरूप से अल्पबहुत्व बताते हुए कहा गया है—सबसे थोडे पचेन्द्रिय हैं, क्योकि ये पचेन्द्रियजीव सख्यात योजन कोटी-कोटी प्रमाण विष्कभसूची से प्रमित प्रतर के असख्यातवे भाग मे रही हुई असख्य श्रेणियो के आकाश-प्रदेशो के बराबर हैं। उनसे चतुरिन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि ये प्रभूत सख्येययोजन कोटीकोटिप्रमाण विष्कभसूची के प्रतर के असख्यातवे भाग मे रही हुई श्रेणियो के आकाश-प्रदेशराशि के बराबर है। उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक है, क्योकि ये प्रभूततर सख्येय कोटीकोटीप्रमाण विष्कभसूची के प्रतर के असख्येय-भागगत श्रेणियो की आकाशराशिप्रमाण हैं। उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक है, क्योकि ये प्रभूततम सख्येय कोटीकोटीप्रमाण विष्कम्भसूची के प्रतरासख्येयभागगत श्रेणियो के आकाश-प्रदेश-राशि के बराबर हैं। उनसे एकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पतिकाय अनन्तानन्त है।

(२) **अपर्याप्तों का अल्पबहुत्व**—सबसे थोडे पचेन्द्रिय अपर्याप्त हैं, क्योकि ये एक प्रतर मे अगुल के असख्यातवे भागप्रमाण जितने खण्ड होते हैं, उतने प्रमाण मे है। उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक हैं, क्योकि ये प्रभूत अगुलासख्येय-भागखण्डप्रमाण हैं। उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक हैं, क्योकि ये प्रभूततर प्रतरांगुलासंख्येयभागखण्डप्रमाण हैं। उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक हैं,

क्योकि ये प्रभूततम प्रतरागुलासख्येयभागखण्डप्रमाण है । उनसे एकेन्द्रिय अपर्याप्त अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पतिकाय मे अपर्याप्त जीव सदा अनन्तानन्त प्राप्त होते हैं ।

(३) **पर्याप्तो का अल्पबहुत्व**—सबसे थोडे चतुरिन्द्रिय पर्याप्त है । क्योकि चतुरिन्द्रिय जीव अल्पायु वाले होने से प्रभूतकाल तक नही रहते हैं, अत पृच्छा के समय वे थोडे है । थोडे होते हुए भी वे प्रतर मे अगुलासख्येयभागखण्डप्रमाण है । उनसे द्वीन्द्रिय पर्याप्त विशेषाधिक है, क्योकि ये प्रभूततर अगुलासख्येयभागखण्डप्रमाण है । उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक है, क्योकि स्वभाव से ही वे प्रभूततर अगुलासंख्येयभागखण्डप्रमाण है । उनके एकेन्द्रिय पर्याप्त अनन्तगुण हैं । क्योकि वनस्पतिकाय मे पर्याप्त जीव अनन्त है ।

(४) **पर्याप्तापर्याप्तो का समुदित अल्पबहुत्व**—सबसे थोडे एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पर्याप्त उनसे सख्येयगुण । एकेन्द्रियो मे सूक्ष्मजीव बहुत है क्योकि वे सर्वलोकव्यापी है । सूक्ष्मो मे अपर्याप्त थोडे है और पर्याप्त सख्येयगुण हैं । द्वीन्द्रिय सूत्र मे सबसे थोडे द्वीन्द्रिय पर्याप्त, क्योकि वे प्रतर मे अगुल के सख्यातवे भागप्रमाणखण्डो के बराबर है । उनसे अपर्याप्त असख्येयगुण हैं, क्योकि ये प्रतरगत अगुलसख्येयभागखण्ड प्रमाण है । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रियो मे पर्याप्त-अपर्याप्त को लेकर अल्पबहुत्व समझना चाहिए ।

(५) **एकेन्द्रियादि पांचो के पर्याप्त-अपर्याप्त का समुदित अल्पबहुत्व**—यह पूर्वोक्त तृतीय और द्वितीय अल्पबहुत्व की भावनानुसार ही समझ लेना चाहिए । मूलपाठ के अर्थ मे यह क्रमश स्पष्टरूप से निर्दिष्ट कर दिया है ।

इस प्रकार पाच प्रकार के ससारसमापन्नक जीवो का प्रतिपादन करने वाली चतुर्थ प्रतिपत्ति पूर्ण होती है ।

षड्विधाख्या पंचम प्रतिपत्ति

२१०. तत्थ णं जेते एवमाहंसु छव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा, ते एवमाहंसु, त जहा—पुढविकाइया, आउक्काइया, तेउक्काइया, वाउकाइया वणस्सइकाइया, तसकाइया।

से किं तं पुढविकाइया? पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता तं जहा—सुहुमपुढविकाइया, बायर-पुढविकाइया। सुहुमपुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एवं बायर-पुढविकाइयावि। एवं चउक्कएणं भेएणं आउतेउवाउवणस्सइकाइयाणं चउक्का णेयव्वा।

से किं तं तसकाइया? तसकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

२१० जो आचार्य ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि संसारसमापन्नक जीव छह प्रकार के है, उनका कथन इस प्रकार है—१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक, ५. वनस्पतिकायिक और ६. त्रसकायिक।

भगवन्! पृथ्वीकायिको का क्या स्वरूप है? गौतम! पृथ्वीकायिक दो प्रकार के हैं—सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और बादरपृथ्वीकायिक। सूक्ष्मपृथ्वीकायिक दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इसी प्रकार बादरपृथ्वीकायिक के भी दो भेद (प्रकार) है—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इसी प्रकार अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के चार-चार भेद कहने चाहिए।

भगवन्! त्रसकायिक का स्वरूप क्या है? गौतम! त्रसकायिक दो प्रकार के है—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

२११ पुढविकाइयस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा! जहन्नेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं। एवं सव्वेसिं ठिई णेयव्वा। तसकाइयस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। अपज्जत्तगाण सव्वेसिं जहन्नेण वि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं। पज्जत्तगाणं सव्वेसिं उक्कोसिया ठिई अंतोमुहुत्तऊणा कायव्वा।

२११. भगवन्! पृथ्वीकायिको की कितने काल की स्थिति कही गई है? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष। इसी प्रकार सबकी स्थिति कहनी चाहिए। त्रसकायिको की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। सब अपर्याप्तको की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। सब पर्याप्तको की उत्कृष्ट स्थिति कुल स्थिति मे से अन्तर्मुहूर्त कम करके कहनी चाहिए।

२१२. पुढविकाइए णं भंते! पुढविकाइएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं जाव असंखेज्जा लोया। एवं जाव आउ-तेउ-वाउक्काइयाण, वणस्सइकाइयाणं अणंतं कालं जाव आवलियाए असंखेज्जइभागो।

तसकाइए णं भंते ! तसकाइएत्ति कालओ केवच्चिर होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइ । अपज्जत्तगाणं छण्हवि जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं । पज्जत्तगाणं—

वाससहस्सा संखा पुढविदगाणिलतरुणपज्जत्ता ।
तेऊ राइंदिसंखा तस सागरसयपुत्ताइ ।। १ ।।

[पज्जत्तगाणवि सव्वेसि एवं ।]

पुढविकाइयस्स ण भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ? गोयमा जहन्नेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणप्फइकाले । एवं आउ-तेउ-वाउकाइयाणं वणस्सइकालो । तसकाइयाणवि । वणस्सइकाइयस्स पुढविकाइयकालो । एव अपज्जत्तगाणवि वणस्सइकालो, वणस्सईणं पुढविकालो । पज्जत्तगाणवि एवं चेव वणस्सइकालो, पज्जत्तवणस्सईण पुढविकालो ।

२१२ भगवन् ! पृथ्वीकाय, पृथ्वीकाय के रूप मे कितने काल तक रह सकता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्येय काल यावत् असख्येय लोकप्रमाण आकाशखण्डो का निर्लेपना-काल ।

इसी प्रकार यावत् अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय की सचिट्ठणा जाननी चाहिए । वनस्पतिकाय की सचिट्ठणा अनन्तकाल है यावत् आवलिका के असख्यातवे भाग मे जितने समय है, उतने पुद्गलपरावर्तकाल तक ।

त्रसकाय की कायस्थिति (सचिट्ठणा) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यातवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है ।

छहो अपर्याप्तो की कायस्थिति जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त है ।

पर्याप्तो मे पृथ्वीकाय की उत्कृष्ट कायस्थिति सख्यात हजार वर्ष है । यही अप्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय पर्याप्तो की है । तेजस्काय पर्याप्तक की कायस्थिति सख्यात रातदिन की है, त्रसकाय पर्याप्त की कायस्थिति साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है ।

भगवन् ! पृथ्वीकाय का अन्तर कितना है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल है । इसी प्रकार अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय का अन्तर वनस्पतिकाल है । त्रसकायिको का अन्तर भी वनस्पतिकाल है । वनस्पतिकाय का अन्तर पृथ्वीकायिक कालप्रमाण (असख्येयकाल) है ।

इसी प्रकार अपर्याप्तको का अन्तरकाल वनस्पतिकाल है । अपर्याप्त वनस्पति का अन्तर पृथ्वीकाल है । पर्याप्तको का अन्तर वनस्पतिकाल है । पर्याप्त वनस्पति का अन्तर पृथ्वीकाल है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में पृथ्वीकायिक यावत् त्रसकाय की कायस्थिति (सचिट्ठणा) और अन्तर का निरूपण किया गया है । सचिट्ठणा या कायस्थिति का अर्थ है कि वह जीव उस रूप मे लगातार जितने समय तक रह सकता है और अन्तर का अर्थ है कि वह जीव उस रूप से निकलकर फिर जितने समय के बाद फिर उस रूप मे आता है । प्रस्तुत सूत्र मे इन दो द्वारों का निरूपण है ।

प्रश्न और उत्तर के रूप मे जो कायस्थिति और अन्तर बताया है, वह पाठसिद्ध ही है। केवल उसमे आये हुए असख्येयकाल और अनन्तकाल का स्पष्टीकरण आवश्यक है।

असंख्येयकाल—असख्येयकाल का निरूपण दो प्रकार से किया गया है—काल और क्षेत्र से। असख्यात उत्सर्पिणी और असख्यात अवसर्पिणी प्रमाण काल को असख्येयकाल कहते है। असख्यात लोक-प्रमाण आकाशखण्डो मे से प्रतिसमय एक-एक प्रदेश का अपहार करने पर जितने समय मे वे आकाशखण्ड निर्लेपित (खाली) हो जाए, उस समय को क्षेत्रापेक्षया असख्येयकाल कहते है।

अनन्तकाल—यह निरूपण भी काल और क्षेत्र से किया गया है। अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण काल अनन्तकाल है। यह कालमार्गणा की दृष्टि से है। क्षेत्रमार्गणा की दृष्टि से अनन्तानन्त लोकालोकाकाशखण्डो मे से प्रतिसमय एक-एक प्रदेश का अपहार करने पर जितने काल मे वे निर्लेप हो जाये, उस काल को अनन्तकाल समझना चाहिये। इसी अनन्तकाल को पुद्गलपरावर्त द्वारा कहा जाये तो असख्येय पुद्गलपरावर्तरूप काल अनन्तकाल है। इन पुद्गलपरावर्तो की सख्या उतनी है, जितनी आवलिका के असख्येय भाग मे समयो की सख्या है।

प्रस्तुत पाठ मे अन्तरद्वार मे बताये हुए वनस्पतिकाल से तात्पर्य है अनन्तकाल और पृथ्वीकाय से तात्पर्य है—असख्येयकाल।

अल्पबहुत्वद्वार

२१३. अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा तसकाइया, तेउक्काइया असंखेज्जगुणा, पुढविकाइया विसेसाहिया, आउकाइया विसेसाहिया, वाउक्काइया विसेसाहिया, वणस्सइकाइया अणंतगुणा। एव अपज्जत्तगावि पज्जत्तगावि।

एएसि णं भंते! पुढविकाइयाणं पज्जत्तगाण अपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा एव जाव विसेसाहिया? गोयमा! सव्वत्थोवा पुढविकाइया अपज्जत्तगा, पुढविकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

एएसि णं आउकाइयाणं०? सव्वत्थोवा आउक्काइया अपज्जत्तगा, पज्जत्तगा संखेज्जगुणा जाव वणस्सइकाइयावि। सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा, तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

एएसि णं भंते! पुढविकाइयाणं जाव तसकाइयाणं पज्जत्तग-अपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा? सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा, तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, तेउकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा, पुढविक्काइया आउक्काइया वाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, तेउक्काइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा, पुढवि-आउ-वाउ-पज्जत्तगा विसेसाहिया, वणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा, सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया वणस्सइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा, सकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया।

२१३ **अल्पबहुत्व**—सबसे थोड़े त्रसकायिक, उनसे तेजस्कायिक असंख्येयगुण, उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक, उनसे अप्कायिक विशेषाधिक, उनसे वायुकायिक विशेषाधिक, उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुण।

अपर्याप्त पृथ्वीकायादि का अल्पबहुत्व भी उक्त प्रकार से है। पर्याप्त पृथ्वीकायादि का अल्पबहुत्व भी उक्त प्रकार ही है।

भगवन्! पृथ्वीकाय के पर्याप्तो और अपर्याप्तो मे कौन किससे अल्प, बहुत, सम या विशेषाधिक है?

गौतम! सबसे थोडे पृथ्वीकायिक अपर्याप्त, उनसे पृथ्वीकायिक पर्याप्त सख्यातगुण। इसी तरह सबसे थोडे अप्कायिक अपर्याप्तक, अप्कायिक पर्याप्तक सख्यातगुण। इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहना चाहिए। त्रसकायिको मे सबसे थोडे पर्याप्त त्रसकायिक, उनसे अपर्याप्त त्रसकायिक असख्येयगुण हैं।

भगवन्! इन पृथ्वीकायिको यावत् त्रसकायिको के पर्याप्तो और अपर्याप्तो मे समुदित रूप मे कौन किससे अल्प, बहुत, सम या विशेषाधिक हैं?

गौतम! सबसे थोडे त्रसकायिक पर्याप्तक, उनसे त्रसकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे तेजस्कायिक पर्याप्त सख्येयगुण, उनसे पृथ्वी-अप्-वायुकाय पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे वनस्पतिकायिक अपर्याप्त अनन्तगुण, उनसे सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे वनस्पतिकायिक पर्याप्तक सख्येयगुण, उनसे सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

विवेचन—प्रथम अल्पबहुत्व मे सामान्य से छह काय का कथन है। उसमे सबसे थोडे त्रसकायिक है, क्योकि द्वीन्द्रियादि त्रसकाय अन्य कायो की अपेक्षा अल्प है। उनसे तेजस्कायिक असख्येयगुण है, क्योकि वे असख्येय लोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं। उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, क्योकि वे प्रभूतासख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाण है, उनसे अप्कायिक विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रभूततरासख्येयभाग लोकाकाशप्रदेश-राशि-प्रमाण है। उनसे वायुकायिक विशेषाधिक हैं, क्योकि वे प्रभूततमासख्येयलोकाकाशप्रदेश-राशि के बराबर हैं। उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुण हैं, क्योकि वे अनन्त लोकाकाशप्रदेश-राशि तुल्य हैं।

द्वितीय अल्पबहुत्व उनके अपर्याप्त को लेकर कहा गया है। वह उक्त क्रमानुसार ही है। इनके पर्याप्तको का अल्पबहुत्व भी उक्त क्रमानुसार ही जानना चाहिए।

तृतीय अल्पबहुत्व पृथ्वीकायादि के अलग-अलग पर्याप्तो-अपर्याप्तो को लेकर कहा गया है। इसमे सबसे थोडे पृथ्वीकायिक अपर्याप्त है, उनसे पर्याप्त सख्येयगुण हैं। पृथ्वीकायिको मे सूक्ष्मजीव बहुत है, क्योकि वे सकल लोकव्यापी है, उनमे पर्याप्त सख्येयगुण हैं। इसी तरह अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के सूत्र समझने चाहिए। त्रसकायिको मे सबसे थोड़े पर्याप्त त्रसकायिक है और अपर्याप्तक त्रसकायिक असख्येयगुण है, क्योकि पर्याप्त त्रसकायिक प्रतर के अगुल के सख्येयभाग-खण्डप्रमाण हैं।

चौथे अल्पबहुत्व मे पृथ्वीकायादिको का पर्याप्त-अपर्याप्तरूप से समुदित अल्पबहुत्व बताया गया है। वह इस प्रकार है—सबसे थोड़े त्रसकायिक पर्याप्त, उनसे त्रसकायिक अपर्याप्त असख्येयगुण हैं, कारण पहले कहा जा चुका है। उनसे तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुण हैं, क्योकि वे असख्येय

लोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं। उनसे पृथ्वी, अप्, वायु के अपर्याप्तक क्रम से विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रभूत-प्रभूततर-प्रभूततम असख्येय लोकाकाशप्रदेश-राशिप्रमाण हैं। उनसे तेजस्कायिक पर्याप्त संख्येयगुण है, क्योकि सूक्ष्मो मे अपर्याप्तो से पर्याप्त सख्येयगुण है। उनसे पृथ्वी, अप्, वायु के पर्याप्त जीव क्रम से विशेषाधिक है। उनसे वनस्पतिकायिक अपर्याप्त अनन्तगुण हैं, क्योकि वे अनन्त लोकाकाशप्रदेश-राशिप्रमाण है। उनसे वनस्पतिकायिक पर्याप्त सख्येयगुण हैं, क्योकि सूक्ष्मो मे अपर्याप्तको से पर्याप्त सख्येयगुण है। सूक्ष्म जीव सर्व बहु हैं, उनकी अपेक्षा से यह अल्पबहुत्व है।

२१४. सुहुमस्स ण भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्त। एवं जाव सुहुमणिओयस्स। एवं अपज्जत्तगाणवि पज्जत्तगाणवि जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं।

२१४ भगवन्! सूक्ष्म जीवो की स्थिति कितनी है?

गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त। इसी प्रकार सूक्ष्मनिगोदपर्यन्त कहना चाहिए। इस प्रकार सूक्ष्मो के पर्याप्त और अपर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे सूक्ष्म-सामान्य की स्थिति बताई गई है। सूक्ष्म जीव दो प्रकार के हैं—निगोदरूप और अनिगोदरूप। दोनो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। जघन्य अन्तर्मुहूर्त से उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त विशेषाधिक समझना चाहिए, अन्यथा उत्कृष्ट कहने का कोई अर्थ नही रह जाता है। इस प्रकार सूक्ष्मपृथ्वीकाय, सूक्ष्म अप्काय, सूक्ष्म तेजस्काय, सूक्ष्म वायुकाय, सूक्ष्म वनस्पतिकाय और सूक्ष्म निगोद सम्बन्धी छह सूत्र कहने चाहिए।

यहाँ यह शका की जा सकती है कि सूक्ष्म वनस्पति निगोद ही है, सूक्ष्म वनस्पति से उसका भी बोध हो जाता है, तो फिर अलग से निगोदसूत्र क्यो कहा गया है? इसका समाधान यह है—सूक्ष्म वनस्पति तो जीव रूप है और सूक्ष्म निगोद अनन्त जीवो के आधारभूत शरीर रूप है। अतएव भिन्न सूत्र की सार्थकता है। कहा गया है—"यह सारा लोक सूक्ष्म निगोदो से अजनचूर्ण से पूर्ण समुद्गक (पेटी) की तरह सब ओर से ठसाठस भरा हुआ है। निगोदो से परिपूर्ण इस लोक मे असख्येय निगोद वृत्ताकार और वृहत्प्रमाण होने से "गोलक" कहे जाते हैं। निगोद का अर्थ है अनन्तजीवो का एक शरीर। ऐसे असख्येय गोलक हैं और एक-एक गोलक मे असख्येय निगोद है और एक-एक निगोद मे अनन्त जीव है।

एक निगोद मे जो अनन्त जीव हैं उनका असख्यातवा भाग प्रतिसमय उसमे से निकलता है और दूसरा असख्यातवा भाग वहा उत्पन्न होता है। प्रत्येक समय यह उद्वर्तन और उत्पत्ति चलती रहती है। जैसे एक निगोद मे यह उद्वर्तन और उपपात का क्रम चलता रहता है, वैसे ही सर्वलोक-व्यापी निगोदो में यह उद्वर्तन और उपपात क्रिया प्रतिसमय चलती रहती है। अतएव सब निगोदो और निगोद जीवो की स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र कही है। अत: सब निगोद प्रतिसमय उद्वर्तन एव उपपात द्वारा अन्तर्मुहूर्त मात्र समय मे परिवर्तित हो जाते हैं, लेकिन वे शून्य नही होते। केवल पुराने

निकलते हैं और नये उत्पन्न होते हैं ।[1]

इसी प्रकार सात सूत्र अपर्याप्त सूक्ष्मो के और सात सूत्र पर्याप्त सूक्ष्मो के कहने चाहिए । सर्वत्र जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है ।

२१५. सुहुमे णं भंते ! सुहुमेत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जकालं जाव असंखेज्जा लोया । सव्वेसिं पुढविकालो जाव सुहुमणिओयस्स पुढविकालो । अपज्जत्तगाण सव्वेसिं जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं; एव पज्जत्तगाणवि सव्वेसिं जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्त ।

२१५ भगवन् ! सूक्ष्म, सूक्ष्मरूप मे कितने काल तक रहता है ?

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट असख्यातकाल तक रहता है । यह असख्यातकाल असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा असख्येय लोककाश के प्रदेशो के अपहारकाल के तुल्य है । इसी तरह सूक्ष्म पृथ्वीकाय अप्काय तेजस्काय वायुकाय वनस्पतिकाय की सचिट्ठणा का काल पृथ्वीकाल अर्थात् असखयेयकाल है यावत् सूक्ष्म-निगोद की कायस्थिति भी पृथ्वीकाल है । सब अपर्याप्त सूक्ष्मो की कायस्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है ।

२१६. सुहुमस्स णं भंते ! केवइयं काल अंतरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्ज काल, कालओ असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ, खेत्तओ अगुलस्स असंखेज्जइभागो । सुहुमवणस्सइकाइयस्स सुहुमणिगोदस्सवि जाव असंखेज्जइ भागो । पुढविकाइयादीणं वणस्सइकालो । एव अपज्जत्तगाण पज्जत्तगाणवि ।

२१६ भगवन् ! सूक्ष्म, सूक्ष्म से निकलने के बाद फिर कितने समय मे सूक्ष्मरूप से पैदा होता है ? यह अन्तराल कितना है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असखयेयकाल है । यह असख्येयकाल असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल रूप है तथा क्षेत्र से अगुलासखयेय भाग क्षेत्र मे जितने आकाशप्रदेश है उन्हे प्रति समय एक-एक का अपहार करने पर जितने काल मे वे निर्लेप हो जायें, वह काल असख्येयकाल समझना चाहिए । (सूक्ष्म पृथ्वीकाय यावत् सूक्ष्म वायुकायिको का अन्तर उत्कर्ष से वनस्पतिकाल—अनन्तकाल है, वनस्पति मे जन्म लेने की अपेक्षा से ।) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म-निगोद का अन्तर असखयेय काल (पृथ्वीकाल) है । सूक्ष्म अपर्याप्तो और सूक्ष्म पर्याप्तो का अन्तर औघिकसूत्र के समान है ।

---

१ गोला य असखेज्जा, असखनिगोदो य गोलओ भणिओ ।
एक्किक्कमि निगोए अणत जीवा मुणेयव्वा ॥ १ ॥
एगो असखभागो वट्टइ उव्वट्टणोववायम्मि ।
एग णिगोदे णिच्चं एव सेसेसु वि स एव ॥ २ ॥
अंतोमुहुत्तमेत्त ठिई निगोयाण जति णिद्दिट्ठा ।
पल्लटंति निगोया तम्हा अंतोमुहुत्तेणं ॥ ३ ॥ —वृत्ति

२१७ एवं अप्पबहुगं—सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया, सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया, सुहुमआउ-वाउ विसेसाहिया, सुहुमणिग्रोया असखेज्जगुणा, सुहुमवणस्सइकाइया अणतगुणा, सुहुमा विसेसाहिया।

एवं अपज्जत्तगाणं, पज्जत्तगाण एव चेव। एएसि णं भंते ! सुहुमाण पज्जत्तापज्जत्ताण कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० ?

सव्वत्थोवा सुहुमा अपज्जत्तगा, सखेज्जगुणा पज्जत्तगा। एव जाव सुहुमणिगोया।

एएसि ण भंते ! सुहुमाण सुहुमपुढविकाइयाण जाव सुहुमणिओयाण य पज्जत्तापज्जत्ताण कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा०।

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, सुहुमआउकाइया अपज्जत्ता विसेसाहिया, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्ता विसेसाहिया, सुहुमतेउक्काइया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा, सुहुमपुढवि-आउ-वाउपज्जत्तगा विसेसाहिया, सुहुमणिग्रोया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा, सुहुमणिओया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा, सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा, सुहुमा अपज्जत्ता विसेसाहिया, सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा, सुहुमा पज्जत्ता विसेसाहिया।

२१७ अल्पबहुत्वद्वार इस प्रकार है—सबसे थोडे सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक विशेषाधिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक क्रमश विशेषाधिक, सूक्ष्म-निगोद असख्येयगुण, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अनन्तगुण और सूक्ष्म विशेषाधिक हैं।

सूक्ष्म अपर्याप्तो और सूक्ष्म पर्याप्तो का अल्पबहुत्व भी इसी क्रम से है।

भगवन् ! सूक्ष्म पर्याप्तो और सूक्ष्म अपर्याप्तो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ? गौतम ! सबसे थोडे सूक्ष्म अपर्याप्तक है, सूक्ष्म पर्याप्तक उनसे सख्येयगुण है। इसी प्रकार सूक्ष्म-निगोद पर्यन्त कहना चाहिए।

भगवन् ! सूक्ष्मो मे सूक्ष्मपृथ्वीकायिक यावत् सूक्ष्म-निगोदो मे पर्याप्तो और अपर्याप्तो मे समुदित अल्पबहुत्व का क्रम क्या है ?

गौतम ! सबसे थोडे सूक्ष्म तेजस्काय अपर्याप्तक, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त सखेयगुण, उनसे सूक्ष्म पृथ्वो-अप्-वायुकायिक पर्याप्त क्रमश विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तक असखेयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तक सखेयगुण, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुण, उनसे सूक्ष्म अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वनस्पति पर्याप्तक सखेयगुण, उनसे सूक्ष्म पर्याप्त विशेषाधिक हैं।

बादर जीव निरूपण

२१८. बायरस्स ण भंते ! केवइय कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। एव बायरतस-काइयस्सवि। बायरपुढविकाइयस्स बावीसं वास सहस्साइं, बायरआउस्स सत्त वाससहस्सं, बायर-

तेउस्स तिण्णिराइंदिया, बायरवाउस्स तिण्णि वाससहस्साइं, बायरवणस्सइकाइयस्स दसवाससहस्साइं। एवं पत्तेयसरीरबायरस्सवि । णिओदस्स जहन्नेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं । एवं बायरणिगोयस्सवि, अपज्जत्तगाणं सव्वेसिं अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगाणं उक्कोसिया ठिई अंतोमुहुत्तूणा कायव्वा सव्वेसिं ।

२१८ भगवन् ! बादर की स्थिति कितनी कही गई है ?

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति है ।

बादर त्रसकाय की भी यही स्थिति है । बादर पृथ्वीकाय की बावीस हजार वर्ष की, बादर अप्कायिको की सात हजार वर्ष की, बादर तेजस्काय की तीन अहोरात्र की, बादर वायुकाय की तीन हजार वर्ष की और बादर वनस्पति की दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट स्थिति है । इसी तरह प्रत्येकशरीर बादर की भी यही स्थिति है ।

निगोद की जघन्य से भी और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त की ही स्थिति है । बादर निगोद की भी यही स्थिति है । सब अपर्याप्त बादरो की स्थिति अन्तर्मुहूर्त है और सब पर्याप्तो की उत्कृष्ट स्थिति उनकी कुल स्थिति मे से अन्तर्मुहूर्त कम करके कहना चाहिए ।

बादर की कायस्थिति

२१९ बायरे ण भंते ! बायरेत्ति कालओ केवच्चिर होइ ?

गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेणं असंखेज्ज काल –असखेज्जाओ उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अगुलस्स असखेज्जइभागो ।

बायरपुढविकाइय-आउ-तेउ-वाउ० पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइयस्स बायर णिओदस्स (बादरवणस्सइस्स जहन्नेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अंगुलस्स असखेज्जइभागो ।

पत्तेगसरीरबादरवणस्सइकाइयस्स बायरणिगोदस्स पुढवीव । बायरणियोदस्स ण जहन्नेणं अतोमुहुत्त उक्कोसेण अणंत काल - अणंता उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ कालओ खेत्तओ अड्डाइज्जा पोग्गलपरियट्टा ।) एतेसिं जहन्नेण अंतोमुहुत्त उक्कोसेण सत्तरसागरोवम कोडाकोडीओ ।

संखातीयाओ समाओ अंगुल भागे तहा असखेज्जा ।
ओहे य बायर तरु-अणुबधो सेसओ वोच्छं ।। १ ।।
उस्सप्पिणि-ओसप्पिणी अड्डाइय पोग्गलाण परियट्टा ।
बेउदधिसहस्सा खलु साधिया होंति तसकाए ।। २ ।।
अंतोमुहुत्तकालो होइ अपज्जत्तगाण सव्वेसिं ।
पज्जत्तबायरस्स य बायरतसकाइयस्सावि ।। ३ ।।
एतेसिं ठिई सागरोवम सयपुहुत्तसाइरेगं ।
तेउस्स संख राइंदिया दुविहणिओदे मुहुत्तमद्धं तु ।
सेसाणं संखेज्जा वाससहस्सा य सव्वेसिं ।। ४ ।।

२१९ भगवन्! बादर जीव, बादर के रूप मे कितने काल तक रहता है? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से असख्यातकाल। यह असख्यातकाल असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो के बराबर है तथा क्षेत्र से अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण क्षेत्र के आकाशप्रदेशो का प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार करने पर जितने समय मे वे निर्लेप हो जाए, उतने काल के बराबर हैं। बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक, बादर वायुकायिक, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक और बादर निगोद की जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से सत्तर कोडाकोडी सागरोपम की है। बादर वनस्पति की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्येयकाल है, जो कालमार्गणा से असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी तुल्य है और क्षेत्रमार्गणा से अगुला-सख्येयभाग के आकाशप्रदेशो का प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार करने पर लगने वाले काल के बराबर है। सामान्य निगोद की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। वह अनन्तकाल कालमार्गणा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण है और क्षेत्रमार्गणा से ढाई पुद्गल-परावर्त तुल्य है। बादर त्रसकायसूत्र मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्येयवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम की कायस्थिति कहनी चाहिए।

बादर अपर्याप्तो की कायस्थिति के दसो सूत्रो मे जघन्य और उत्कृष्ट से सर्वत्र अन्तर्मुहूर्त कहना चाहिये।

बादर पर्याप्त के औधिकसूत्र मे कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शतपृथक्त्व है। (इसके बाद अवश्य बादर रहते हुए भी पर्याप्तलब्धि नही रहती।) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तसूत्र मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्ष कहने चाहिए। (इसके बाद बादरत्व होते हुए भी पर्याप्तलब्धि नही रहती।) इसी प्रकार अप्कायसूत्रो मे भी कहना चाहिए। तेजस्काय-सूत्र मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सख्यात अहोरात्र कहने चाहिए। वायुकायिक, सामान्य बादर-वनस्पति, प्रत्येक बादर वनस्पतिकाय के सूत्र बादर पर्याप्त पृथ्वीकायवत् (जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्ष) कहने चाहिए। सामान्य निगोद-पर्याप्तसूत्र मे जघन्य, उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त, बादर त्रसकायपर्याप्तसूत्र मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शतपृथक्त्व कहना चाहिए। (इतनी स्थिति चारो गतियो मे भ्रमण करने से घटित होती है)।[1]

अन्तरद्वार

२२०. अतर बायरस्स, बायरवणस्सइस्स, णिओदस्स, बादरणिओदस्स एतेसिं चउण्हवि पुढविकालो जाव असखेज्जा लोया, सेसाणं वणस्सइकालो।

एव पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणवि अंतरं।

ओहे य बायरतरु ओघनिगोदे बायरणिओए य।
कालमसंखेज्जं अंतरं सेसाण वणस्सइकालो ॥१॥

२२० औघिक बादर, बादर वनस्पति, निगोद और बादर निगोद, इन चारो का अन्तर पृथ्वीकाल है, अर्थात् असख्यातकाल है। यह असख्यातकाल असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी के बराबर है (कालमार्गणा से) तथा क्षेत्रमार्गणा से असख्येय लोकाकाश के प्रदेशो का प्रतिसमय एक-एक

१. सूत्रोक्त गाथाए सक्षिप्त होने से उनके भावो को टीकानुसार स्पष्ट किया गया है।

के मान से अपहार करने पर जितने समय मे वे निर्लिप्त हो जाये, उतना कालप्रमाण जानना चाहिए। (सूक्ष्म की जो कायस्थिति है, वही बादर का अन्तर जाना चाहिए।)

शेष बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक, बादर वायुकायिक, प्रत्येक बादर वनस्पतिकायिक और बादर त्रसकायिक—इन छहो का अन्तर वनस्पतिकाल जानना चाहिए।

इसी तरह अपर्याप्तक और पर्याप्तक सबधी दस-दस सूत्र भी ऊपर की तरह कहने चाहिए। यही बात गाथा मे कही गई है—औधिक, बादर वनस्पति, सामान्य निगोद और बादर निगोद का अतर सख्येयकाल है और शेष का अन्तर वनस्पतिकाल-प्रमाण है।

अल्पबहुत्वद्वार

२२१ (अ) (१) **अप्पाबहुय—सव्वत्थोवा बायरतसकाइया, बायरतेउक्काइया असंखेज्जगुणा, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया असखेज्जगुणा, बायरनिगोया असंखेज्जगुणा, बायरपुढविकाइया असंखेज्जगुणा, बायरआउ-वाउ असखेज्जगुणा, बायरवणस्सइकाइया अणतगुणा, बायरा विसेसाहिया।**

(२) **एव अपज्जत्तगाणवि।**

(३) **पज्जत्तगाण सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया, बायरतसकाइया असखेज्गुणा, पत्तेयसरीर-बायरा असखेज्जगुणा, सेसा तहेव जाव बादरा विसेसाहिया।**

(४) **एतेसि णं भते! बायराण पज्जत्तापज्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?**

सव्वत्थोवा बायरा पज्जत्ता, बायरा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा एव सव्वे जाव बायरतसकाइया।

(५) **एएसि ण भते! बायराण बायरपुढविकाइयाण जाव बायरतसकाइयाण य पज्जत्ता-पज्जत्ताण कयरे कयरेहिंतो अप्पा० ?**

सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया पज्जत्तगा, बायरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, बायरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा, बायरणिओया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, पुढवि-आउ-वाउ-पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, बायरतेउ अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा, पत्तेयसरीरबायरवणस्सइ अपज्जत्ता असखेज्जगुण, बायरा णिओदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, बायरपुढवि-आउ-वाउ अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, बायरवणस्सइ अपज्जत्तगा अणंतगुणा, बादरपज्जत्तगा विसेसाहिया, बायरवणस्सइ अपज्जत्तगा असंखगुणा, बायरा अपज्जत्तगा विसेसाहिया, बायरा पज्जत्ता विसेसाहिया।

२२१. (अ) (१) प्रथम औधिक अल्पबहुत्व—

सबसे थोडे बादर त्रसकाय, उनसे बादर तेजस्काय असख्येयगुण, उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकाय असख्येयगुण, उनसे बादर निगोद असखेयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकाय असखेयगुण, उनसे बादर अप्काय, बादर वायुकाय क्रमश असखेयगुण, उनसे बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुण, उनसे बादर विशेषाधिक।

(२) अपर्याप्त बादरो का अल्पबहुत्व औघिकसूत्र के अनुसार ही जानना चाहिए—जैसे सबसे थोडे बादर त्रसकायिक अपर्याप्त, उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुण इत्यादि औघिक क्रम।

(३) पर्याप्त बादरो का अल्पबहुत्व—

सबसे थोडे बादर तेजस्कायिक पर्याप्त, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर निगोद पर्याप्तक असख्येयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर वायुकाय पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त अनन्तगुण, उनसे बादर पर्याप्तक विशेषाधिक।

(४) प्रत्येक के बादर पर्याप्त-अपर्याप्तो का अल्पबहुत्व—

(सब जगह) पर्याप्त बादर थोडे है और बादर अपर्याप्तक असख्येयगुण हैं, क्योकि एक बादर पर्याप्त की निश्रा मे असख्येय बादर अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

(सब सूत्रो का कथन बादर त्रसकायिको की तरह है।)

(५) सबका समुदित अल्पबहुत्व—

भगवन्! बादरो मे—बादर पृथ्वीकाय यावत् बादर त्रसकाय के पर्याप्तो और अपर्याप्तो मे कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

गौतम! सबसे थोडे बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असख्येय-गुण, उनसे बादर त्रसकायिक अपर्याप्त असख्यातगुण, उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त असखेयगुण, उनसे बादर निगोद पर्याप्तक असखेयगुण, उनसे पृथ्वी-अप्-वायुकाय पर्याप्तक क्रमश असख्यातगुण, उनसे बादर तेजस्काय अपर्याप्तक असखेयगुण, उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पति अपर्याप्त असखेयगुण, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्तक असखेयगुण, उनसे बादर पृथ्वी-अप्-वायुकाय अपर्याप्तक असखेयगुण, उनसे बादर वनस्पति पर्याप्तक अनन्तगुण, उनसे बादर पर्याप्तक विशेषाधिक, उनसे बादर वनस्पति अपर्याप्त असंख्यगुण, उनसे बादर अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे बादर पर्याप्त विशेषाधिक है।

विवेचन—सर्वप्रथम षट्काय का औघिक अल्पबहुत्व बताया है। वह इस प्रकार है—सबसे थोडे बादर त्रसकायिक है, क्योकि द्वीन्द्रिय आदि ही बादर त्रस है और वे शेष कायो की अपेक्षा अल्प हैं। उनसे बादर तेजस्कायिक असख्येयगुण हैं, क्योकि वे असख्येय लोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं। उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक असख्येयगुण हैं, क्योकि इनके स्थान असख्येयगुण हैं।[1] बादर

---

१ तथा चोक्त प्रज्ञापनाया द्वितीये स्थानाख्ये पदे— अतोमणुस्सखेत्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु निव्वाघाएण पन्नरससु कम्मभूमिसु, वाघाएण पचसु महाविदेहेसु एत्थ ण बायरतेउकाइयाण पज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता, तथा जत्थेव बायरतेउक्काइयाण पज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता तत्थेव अपज्जत्ताण बायरतेउकाइयाण ठाणा पण्णत्ता।

तेज तो मनुष्यक्षेत्र मे ही है, जबकि बादर वनस्पतिकाय तीनो लोको मे है।[1] अत: क्षेत्र के असख्येयगुण होने से बादर तेजस्कायिको से प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक असख्येयगुण हैं। उनसे बादर-निगोद असख्येयगुण है, क्योकि अत्यन्त सूक्ष्म अवगाहना होने से तथा प्राय जल मे सर्वत्र होने से-- पनक, सेवाल आदि जल मे अवश्यभावी है, अत असख्येयगुण घटित होते है।

बादर निगोद से बादर पृथ्वीकायिक असंख्येयगुण है, क्योकि वे आठो पृथ्वियो, सब विमानो, सब भवनो और पर्वतादि मे है। उनसे बादर अप्कायिक असख्येयगुण है, क्योंकि समुद्रो मे जल की प्रचुरता है। उनसे बादर वायुकायिक असख्येयगुण है, क्योकि पोलारो मे भी वायु सभव है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुण है, क्योकि प्रत्येक बादर निगोद मे अनन्त जीव हैं। उनसे सामान्य बादर विशेषाधिक हैं, क्योकि बादर त्रसकायिक आदि का भी उनमे समावेश होता है।

(२) दूसरा अल्पबहुत्व इन षट्कायो के अपर्याप्तको के सम्बन्ध मे है। सबसे थोडे बादर त्रसकायिक अपर्याप्त (युक्ति पहले बता दी है), उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुण है, क्योकि वे असख्येय लोकाकाशप्रमाण है। इस तरह प्रागुक्तक्रम से ही अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए।

(३) तीसरा अल्पबहुत्व षट्कायो के पर्याप्तो से सम्बन्धित है। सबसे थोड़े बादर तेजस्कायिक है, क्योकि ये आवलिका के समयो के वर्ग को कुछ समय न्यून आवलिका समयो से गुणित करने पर जितने समय होते है, उनके बराबर है। उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्त असख्येयगुण है, क्योकि वे प्रतर मे अगुल के सख्येयभागमात्र जितने खण्ड होते है, उनके बराबर है, उनसे प्रत्येकशरीरी वनस्पतिकायिक पर्याप्त असख्येयगुण है, क्योकि वे प्रतर मे अंगुल के असख्येयभागमात्र जितने खण्ड होते हैं, उनके तुल्य है। उनसे बादरनिगोद पर्याप्तक असख्येयगुण है, क्योकि वे अत्यन्त सूक्ष्म अवगाहना वाले तथा जलाशयो मे सर्वत्र होते है। उनसे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त असख्येयगुण है, क्योकि अतिप्रभूत सख्येय प्रतरागुलासख्येयभाग-खण्डप्रमाण है। उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्त असख्येयगुण है, क्योकि वे अतिप्रभूततरासख्येयप्रतरागुलासख्येयभागप्रमाण है। उनसे बादर वायुकायिक पर्याप्त असख्येयगुण हैं, क्योकि घनीकृत लोक के असख्येय प्रतरो के सख्यातवे भागवर्ती क्षेत्र के आकाशप्रदेशो के बराबर है। उनसे बादर वनस्पति पर्याप्त अनन्तगुण हैं, क्योकि प्रति बादरनिगोद मे अनन्तजीव है। उनसे सामान्य बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योकि बादर तेजस्कायिक आदि सब पर्याप्तो का इनमे समावेश है।

(४) चौथा अल्पबहुत्व इनके प्रत्येक के पर्याप्तो और अपर्याप्तो को लेकर कहा गया है। सर्वत्र पर्याप्तो से अपर्याप्त असख्येयगुण कहना चाहिए। बादर पृथ्वीकाय से लेकर बादर त्रसकाय तक सर्वत्र

---

१ कहि ण भते ! बादरवणस्सइकाउयाण पज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता ? गोयमा ! सट्ठाणेण सत्तसु घणोदहीसु सत्तसु घणोदधिवलएसु, अहोलोए पायालेसु, भवणपत्थडेसु उड्ढलोए कप्पेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु गु जालियासु सरेसु सरपतियासु उज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु एत्थ ण बायरवणस्सइकाइयाण पज्जत्तगाण ठाणा पणत्ता। तथा जत्थेव बायरवणस्सइकाइयाण पज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता तत्थेव बायरवणस्सइकाइयाण अपज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता। —प्रज्ञापना स्थानपद

अपर्याप्तो से पर्याप्त असंख्येयगुण हैं, क्योकि एक बादरपर्याप्त की निश्रा मे असंख्येय बादर-अपर्याप्त पैदा होते है।[1]

(५) पाचवां अल्पबहुत्व छह कायो के पर्याप्त और अपर्याप्ता का समुदित रूप से कहा गया है। वह निम्न है—

सबसे थोडे बादर तेजस्कायिक पर्याप्त, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर प्रत्येकवनस्पतिकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर निगोद पर्याप्त असंख्येयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर वायुकायिक पर्याप्त असख्येयगुण। (उक्त पदो की युक्ति पूर्ववत् जाननी चाहिए।)

उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुण है, क्योकि बादर वायुकायिक पर्याप्त असख्येयलोकाकाशप्रदेश के आकाशप्रदेशो के तुल्य है, किन्तु बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्येय-लोकाकाशप्रदेशप्रमाण है। असख्यात के असख्यात भेद होने से यह असख्यात पूर्व के असख्यात से असख्येयगुण जानना चाहिए।

बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त से प्रत्येक बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर पृथ्वी-कायिक, बादर अप्कायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त यथोत्तर असख्येयगुण कहने चाहिए। बादर वायुकायिक अपर्याप्तो से बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त अनन्तगुण हैं, क्योकि एक-एक बादर निगोद मे अनन्त जीव है। उनसे सामान्य बादर पर्याप्त विशेषाधिक है, क्योकि बादर तेजस्कायिक आदि पर्याप्तो का उनमे प्रक्षेप होता है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असख्येयगुण है, क्योकि एक-एक पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक निगोद की निश्रा मे असख्येय अपर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक निगोद उत्पन्न होते है। उनसे सामान्य बादर अपर्याप्त विशेषाधिक हैं, क्योकि उनमे बादर तेजस्कायिक आदि अपर्याप्तो का प्रक्षेप है। उनसे पर्याप्त-अपर्याप्त विशेषण रहित सामान्य बादर विशेषाधिक हैं, क्योकि इनमे सब बादर पर्याप्त-अपर्याप्तो का समावेश हो जाता है। इस प्रकार बादर को लेकर पाच अल्पबहुत्व कहे है।

सूक्ष्म-बादरो के समुदित अल्पबहुत्व

२२१ (आ) (१) एएसि ण भते! सुहुमाण सुहुमपुढविकाइयाणं जाव सुहुमणिगोयाण बायराणं बादरपुढविकाइयाणं जाव बादरतसकाइयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बायरतसकाइया, बायरतेउक्काइया असखेज्जगुणा, पत्तेयसरीरबायर-वणस्सइकाइया असखेज्जगुणा तहेव जाव बायरवाउकाइया असखेज्जगुणा, सुहुमतेउक्काइया असंखेज्ज-गुणा, सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया, सुहुम आउ० सुहुम वाउ० विसेसाहिया, सुहुमनिगोया असंखेज्ज-गुणा, बायरवणस्सइकाइया अणंतगुणा, बायरा विसेसाहिया, सुहुमवणस्सकाइया असखेज्जगुणा, सुहुमा विसेसाहिया।

---

१ "पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमति, जत्थ एगो तत्थ णियमा असखेज्जा" इति वचनात्।

(२-३) एवं अपज्जत्तगावि पज्जत्तगावि, णवरि सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया पज्जत्ता, बायरतसकाइया पज्जत्ता असखेज्जगुणा, पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइया पज्जत्ता असंखेज्जगुणा, सेसं तहेव जाव सुहुमपज्जत्ता विसेसाहिया ।

(४) एएसि णं भंते ! सुहुमाणं बायराण य पज्जत्ताणं अपज्जत्ताण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बायरा पज्जत्ता, बायरा अपज्जत्ता असखेज्जगुणा, सव्वत्थोवा सुहुमा अपज्जत्ता, सुहुमपज्जत्ता सखेज्जगुणा । एव सुहुमपुढवि बायरपुढवि जाव सुहुमणिगोदा बायरनिगोया, नवर पत्तेयसरीरवणस्सइकाइया सव्वत्थोवा पज्जत्ता अपज्जत्ता, असंखेज्जगुणा । एवं बायरतस-काइयावि ।

(५) सव्वेसिं पज्जत्तापज्जत्तगाण कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया पज्जत्ता, बायरतसकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा, ते चेव अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा, पत्तेयसरीरबायरवणस्सइ अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा, बायरणिओया पज्जत्ता असखेज्ज०, बायरपुढवि० असंखे०, आउ-वाउ पज्जत्ता असखेज्जगुणा, बायरतेउकाइया अपज्जत्ता असखे०, पत्तेयसरीर० असंखे०, बायरणिगोयपज्जत्ता अस०, बायरपुढवि० आउ-वाउ-काइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा, सुहुमतेउक्काइया अपज्जत्तगा अस०, सुहुमपुढवि० आउ-वाउ-अपज्जत्ता विसेसाहिया, सुहुमतेउकाइयपज्जत्तगा सखेज्जगुणा, सुहुमपुढवि-आउ-वाउपज्जत्तगा विसेसाहिया, सहुमणिगोया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा, सहुमणिगोया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा, बायर-वणस्सइकाइया पज्जत्तगा अणतगुणा, बायरा पज्जत्तगा विसेसाहिया, बायरवणस्सइ अपज्जत्ता असखेज्जगुणा, बायरा अपज्जत्ता विसेसाहिया, बायरा विसेसाहिया, सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा, सुहुमा अपज्जत्ता विसेसाहिया, सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्ता संखेज्जगुणा, सुहुमा पज्जत्तगा विसेसाहिया, सुहुमा विसेसाहिया ।

२२१ स्पष्टता के लिए और पुनरावृत्ति को टालने के लिए प्रस्तुत पाठ का अर्थ विवेचनयुक्त दिया जाता है । प्रस्तुत पाठ मे सूक्ष्मो और बादरो के समुदित पाच अल्पबहुत्व कहे गये है । वे इस प्रकार हैं—

(१) **प्रथम अल्पबहुत्व**—भगवन् ! सूक्ष्मो मे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक यावत् सूक्ष्म निगोदो मे तथा बादरो मे —बादर पृथ्वीकायिक यावत् बादर त्रसकायिको मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोडे बादर त्रसकायिक है, उनसे बादर तेजस्कायिक असख्येयगुण है, उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक असख्येयगुण हैं, उनसे बादर निगोद असख्येयगुण है, उनसे बादर पृथ्वीकाय असख्येयगुण है, उनसे बादर अप्काय, बादर वायुकाय क्रमश असख्येयगुण हैं, उन बादर वायुकाय से सूक्ष्म तेजस्काय असख्येयगुण हैं, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकाय विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म अप्काय, सूक्ष्म वायुकाय विशेषाधिक है,उनसे सूक्ष्मनिगोद असख्यातगुण हैं, उन सूक्ष्मनिगोद से बादरवनस्पति-

कायिक अनन्तगुण हैं, उनसे बादर विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक असख्येयगुण हैं, उनसे (सामान्य) सूक्ष्म विशेषाधिक है।

(२) द्वितीय अल्पबहुत्व इनके ही अपर्याप्तको को लेकर है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोडे बादर त्रसकायिक अपर्याप्त, उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर अप्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर वायुकायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त अनन्तगुण, उनसे सामान्य बादर अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सामान्य सूक्ष्म अपर्याप्त विशेषाधिक है।

(३) तीसरा अल्पबहुत्व इनके ही पर्याप्तको को लेकर कहा गया है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोडे बादर तेजस्कायिक पर्याप्त, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादरनिगोद पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर वायुकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त अनन्तगुण, उनसे सामान्य बादर पर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सामान्य सूक्ष्म पर्याप्त विशेषाधिक है।

(४) चौथा अल्पबहुत्व इन प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्तो के सम्बन्ध मे है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोडे बादर पर्याप्त है, क्योकि ये परिमित क्षेत्रवर्ती है। उनसे बादर अपर्याप्त असख्येयगुण है, क्योकि प्रत्येक बादर पर्याप्त की निश्रा मे असख्येय बादर अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

उनसे सूक्ष्म अपर्याप्त असख्येयगुण है, क्योकि वे सर्वलोकव्यापी होने से उनका क्षेत्र असख्येयगुण है। उनसे सूक्ष्म पर्याप्त सख्येयगुण है, क्योकि चिरकाल-स्थायी होने से ये सदैव सख्येयगुण प्राप्त होते है।

सब सख्या मे यहा सात सूत्र है—१ सामान्य से सूक्ष्म-बादर पर्याप्त-अपर्याप्त विषयक, २ सूक्ष्म-बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तापर्याप्तविषयक, ३ सूक्ष्म-बादर अप्कायिक पर्याप्तापर्याप्त विषयक, ४ सूक्ष्म-बादर तेजस्कायिक पर्याप्तापर्याप्त विषयक, ५ सूक्ष्म-बादर वायुकायिक पर्याप्तापर्याप्त विषयक, ६ सूक्ष्म-बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तापर्याप्त विषयक और ७ सूक्ष्म-बादर निगोद पर्याप्तापर्याप्त विषयक।

सूक्ष्मो मे अपर्याप्त थोडे और पर्याप्त सख्येयगुण हैं और बादरो में पर्याप्त थोडे और अपर्याप्त असख्यातगुण हैं।

(५) पाचवा अल्पबहुत्व इन सबका समुदित रूप मे कहा गया है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोडे बादर तेजस्कायिक पर्याप्त, उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर त्रसकायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादरनिगोद पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर वायुकायिक पर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्त असख्येय-गुण, उनसे बादर अप्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे बादर वायुकायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त सख्येयगुण, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त विशेषाधिक, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त सख्येयगुण।

(ये बादर पर्याप्त तेजस्काय से लेकर पर्याप्त निगोद तक के जीव यद्यपि अन्यत्र समान रूप से असख्येय लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण कहे हैं, तथापि असख्यात के असख्यात भेद होने से यहा जो कही असख्येयगुण, सख्येयगुण और विशेषाधिक कहे है, उनमे कोई विरोध नही समझना चाहिए।)

उन पर्याप्त सूक्ष्म निगोदो से बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त अनन्तगुण है।

उनसे सामान्य बादर पर्याप्त विशेषाधिक हैं, उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असख्येयगुण है, उनसे सामान्य बादर अपर्याप्त विशेषाधिक है, उनसे सामान्यत बादर विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असख्येयगुण है, उनसे सामान्य सूक्ष्म अपर्याप्त विशेषाधिक है, उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त सख्येयगुण है, उनसे सामान्य सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक है, उनसे सामान्य पर्याप्त-अपर्याप्त विशेषणरहित सूक्ष्म विशेषाधिक हैं।

निगोद की वक्तव्यता

२२२. कतिविहा ण भते ! णिओया पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा णिओया पण्णत्ता, त जहा—णिओया य णिओदजीवा य। णिओया ण भते ! कतिविहा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमणिओदा य बादरणिओदा य।

सुहुमणिओया णं भते ! कतिविहा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। बायरणिओयावि दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

णिओदजीवा ण भते ! कतिविहा पण्णत्ता ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सुहुमणिगोदजीवा य बादरणिगोयजीवा य। सुहुमणिगोदजीवा दुविहा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। बायरणिगोदजीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

२२२. भगवन् ! निगोद कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! निगोद दो प्रकार के हैं—निगोद और निगोदजीव !

भगवन् ! निगोद कितने प्रकार के है ? गौतम ! दो प्रकार के हैं— सूक्ष्मनिगोद और बादर-निगोद ।

भगवन् ! सूक्ष्मनिगोद कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

बादरनिगोद भी दो प्रकार के है—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

भगवन् ! निगोदजीव कितने प्रकार के है ? गौतम ! दो प्रकार के है—सूक्ष्मनिगोदजीव और बादर-निगोदजीव । सूक्ष्मनिगोदजीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक । बादर-निगोदजीव भी दो प्रकार के है—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

विवेचन—निगोद जैनसिद्धान्त का पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है अनन्त जीवो का आधार अथवा आश्रय । वैसे सामान्यतया निगोद सूक्ष्म और साधारण वनस्पति रूप है, तथापि इसकी अलग-सी पहचान है । इसलिए इसके दो प्रकार कहे गये है—निगोद और निगोदजीव । निगोद अनन्त जीवो का आधारभूत शरीर है और निगोदजीव एक ही औदारिकशरीर मे रहे हुए भिन्न-भिन्न तैजस-कार्मणशरीर वाले अनन्त जीवात्मक है ।[1] आगम मे कहा है—यह सारा लोक सूक्ष्मनिगोदो से अजनचूर्ण से परिपूर्ण समुद्गक की तरह ठसाठस भरा हुआ है । निगोदो से परिपूर्ण इस लोक मे असख्येय निगोद वृत्ताकार और बृहत्प्रमाण होने से "गोलक" कहे जाते हैं । ऐसे असख्येय गोले है और एक-एक गोले मे असख्येय निगोद है और एक-एक निगोद मे अनन्त जीव हैं ।

निगोद और निगोदजीव दोनो दो-दो प्रकार के हैं—सूक्ष्मनिगोद और बादरनिगोद । सूक्ष्मनिगोद सारे लोक मे रहे हुए है और बादरनिगोद मूल, कद आदि रूप है । ये दोनो सूक्ष्म और बादर निगोदजीव दो-दो प्रकार के है—पर्याप्त और अपर्याप्त ।

२२३. णिगोवा णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ? गोयमा ! णो सखेज्जा, असखेज्जा, णो अणता । एव पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि ।

सुहुमणिगोदा ण भंते ! दव्वट्ठयाए किं सखेज्जा असखेज्जा अणता ? गोयमा ! णो संखेज्जा, असंखेजा, णो अणंता । एव पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि ।

एव बायरावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि णो सखेज्जा, असंखेज्जा, णो अणता ।

णिओदजीवा णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा, असखेज्जा, अणंता ? गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता । एवं पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि । एवं सुहुमणिगोदजीवावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि । बायरणिगोदजीवावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि ।

णिगोवा णं भंते ! पदेसट्ठयाए किं संखेज्जा० पुच्छा ? गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता । एवं पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि । एवं सुहुमणिगोवावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि । पएसट्ठयाए सव्वे अणता । एवं बायरनिगोदावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि । पएसट्ठयाए सव्वे अणंता ।

---

१ तत्र निगोदा जीवाश्रयविशेषा, निगोदजीवा विभिन्न तेजसकार्मणाजीवा एव ।

एव णिओदजीवा नवविहावि पएसट्ठयाए सव्वे अणंता ।

२२३ भगवन् ! निगोद द्रव्य की अपेक्षा क्या सख्यात हैं, असख्यात हैं या अनन्त है ?

गौतम ! सख्यात नही हैं, असख्यात हैं, अनन्त नही हैं । इसी प्रकार इनके पर्याप्त और अपर्याप्त सूत्र भी कहने चाहिए ।

भगवन् ! सूक्ष्मनिगोद द्रव्य की अपेक्षा सख्यात हैं, असख्यात हैं या अनन्त हैं ?

गौतम ! सख्यात नही, असख्यात है, अनन्त नही । इसी तरह पर्याप्त विषयक सूत्र तथा अपर्याप्त विषयक सूत्र भी कहने चाहिए ।

इसी प्रकार बादरनिगोद के विषय मे भी कहना चाहिए । उनके पर्याप्त विषयक सूत्र तथा अपर्याप्त विषयक सूत्र भी इसी तरह कहने चाहिए ।

भगवन् ! निगोदजीव द्रव्य की अपेक्षा सख्यात हैं, असख्यात है या अनन्त हैं ?

गौतम ! सख्यात नही, असख्यात नही, अनन्त है । इसी तरह इसके पर्याप्तसूत्र भी जानने चाहिए । इसी प्रकार सूक्ष्मनिगोदजीव, इनके पर्याप्त और अपर्याप्तसूत्र तथा बादरनिगोदजीव और उनके पर्याप्त और अपर्याप्तसूत्र भी कहने चाहिए । (ये द्रव्य की अपेक्षा से ९ निगोद के तथा ९ निगोदजीव के कुल अठारह सूत्र हुए ।)

भगवन् ! प्रदेश की अपेक्षा निगोद सख्यात हैं, असख्यात हैं या अनन्त है ?

गौतम ! सख्यात नही, असख्यात नही, किन्तु अनन्त है । इसी प्रकार पर्याप्तसूत्र और अपर्याप्तसूत्र भी कहने चाहिए ।

इसी प्रकार सूक्ष्मनिगोद और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त सूत्र कहने चाहिए । ये सब प्रदेश की अपेक्षा अनन्त है ।

इसी प्रकार बादरनिगोद के और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त सूत्र कहने चाहिए । ये सब प्रदेश की अपेक्षा अनन्त है ।

इसी प्रकार निगोदजीवो के प्रदेशो की अपेक्षा से नो ही सूत्रो मे अनन्त कहना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे निगोद और निगोदजीवो की संख्या के विषय मे जिज्ञासा और उत्तर है । जिज्ञासा प्रकट की गई है कि निगोद सख्यात हैं, असख्यात है या अनन्त हैं ? इन प्रश्नो के उत्तर दो अपेक्षाओ से हैं— द्रव्य की अपेक्षा और प्रदेश की अपेक्षा से । द्रव्य की अपेक्षा से निगोद सख्येय नही है, क्योकि अगुलासख्येयभाग अवगाहना वाले निगोद सारे लोक मे व्याप्त हैं । वे असंख्यात है, क्योकि असख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं । वे अनन्त नही है, क्योकि केवलज्ञानियो ने उन्हे अनन्त नही जाना है । सामान्यनिगोद, अपर्याप्त सामान्यनिगोद और पर्याप्त सामान्यनिगोद सबधी तीन सूत्र इसी तरह जानने चाहिए । इसी प्रकार सूक्ष्मनिगोद के तीन सूत्र और बादरनिगोद के भी तीन सूत्र-- कुल नौ सूत्र कहे गये है ।

निगोदजीव द्रव्य की अपेक्षा से संख्यात नही हैं, असख्यात नही है किन्तु अनन्त है । प्रति-निगोद में अनन्तजीव होने से निगोदजीव द्रव्यापेक्षया अनन्त हैं । इसी तरह इनके अपर्याप्तसूत्र और पर्याप्तसूत्र मे भी अनन्त कहना चाहिए ।

इसी प्रकार सूक्ष्मनिगोदजीव और उनके अपर्याप्त और पर्याप्त विषयक तीनो सूत्रो मे भी अनन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार बादरनिगोदजीव और उनके अपर्याप्त और पर्याप्त विषयक तीन सूत्रो मे भी अनन्त कहने चाहिए। उक्त वर्णन द्रव्य की अपेक्षा से हुआ।

प्रदेशो की अपेक्षा से निगोद और निगोदजोवो के सामान्य तथा अपर्याप्त और पर्याप्त तथा सूक्ष्म और बादर सब अठारह ही सूत्रो मे अनन्त कहना चाहिए। क्योकि प्रत्येक निगोद मे अनन्त प्रदेश होते हैं। ये अठारह सूत्र इस प्रकार कहे हैं—

निगोद के ९ तथा निगोदजीवो के ९, कुल १८ हुए।

निगोद के ९ सूत्र—निगोदसामान्य, निगोद-अपर्याप्त, निगोद-पर्याप्त, सूक्ष्मनिगोदसामान्य, सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त, सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त, बादरनिगोदसामान्य, बादरनिगोद अपर्याप्त और बादर-निगोद पर्याप्त।

निगोदजीव के ९ सूत्र—निगोदजीवसामान्य, निगोदजीव अपर्याप्तक और निगोदजीव पर्याप्तक। सूक्ष्मनिगोदजीव सामान्य और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त। बादरनिगोदजीव और इनके अपर्याप्त और पर्याप्त। कुल अठारह सूत्र प्रदेशापेक्षया हैं।

निगोदों का अल्पबहुत्व

२२४ (अ) एएसि ण भंते ! णिगोदाण सुहुमाण बायराण पज्जत्तयाण अपज्जत्तगाण दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बायरणिगोदा पज्जत्तगा दव्वट्ठयाए, बादरनिगोदा अपज्जत्तगा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सुहुमनिगोदा अपज्जत्तगा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा, सुहुमनिगोदा पज्जत्तगा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

एव पएसट्ठयाएवि।

दव्वपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा बायरणिगोदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए जाव सुहुमणिओदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा। सुहुमणिगोदेहित्तो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरनिगोदा पज्जत्ता पएसट्ठया अणतगुणा, बायरणिओदा अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असखेज्जगुणा जाव सुहुमणिओया पज्जत्ता पएसट्ठयाए सखेज्जगुणा।

एव णिगोदजीवावि। णवरि सकमए जाव सुहुमणिओयजीवेहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिओदजीवा पज्जत्ता पदेसट्ठयाए असखेज्जगुणा, सेस तहेव जाव सुहुमणिओदजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए सखेज्जगुणा।

२२४ (अ) भगवन् ! इन सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त निगोदो मे द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेश की अपेक्षा तथा द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा से कौन किससे कम, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ? गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से—सबसे थोडे बादरनिगोद (मूल-कन्दादिगत) पर्याप्तक है (क्योकि ये

प्रतिनियत क्षेत्रवर्ती है ।) उनसे बादरनिगोद अपर्याप्तक असख्येयगुण हैं (क्योकि प्रत्येक बादरनिगोद की निश्रा मे असख्येय अपर्याप्त बादरनिगोद उत्पन्न होते हैं ।) उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तक असख्येय-गुण है, (क्योकि लोकव्यापी होने से क्षेत्र असख्येयगुण है ।), उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त सख्येयगुण हैं (क्योकि सूक्ष्मो मे अपर्याप्तो से पर्याप्त सख्येयगुण हैं ।)

प्रदेश की अपेक्षा से—ऊपर कहा हुआ क्रम ही जानना चाहिए । यथा—सबसे थोडे बादर-निगोद पर्याप्त, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असख्यातगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असंख्येयगुण और उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त सख्येयगुण है ।

द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा से—सबसे थोडे बादरनिगोद पर्याप्त द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्म-निगोद पर्याप्त सख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोद पर्याप्त अनन्तगुण प्रदेशापेक्षया, उनसे बादर-निगोद अपर्याप्त असख्येयगुण प्रदेशापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण प्रदेशापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त सख्येयगुण प्रदेशापेक्षया ।

निगोदजीवो का अल्पबहुत्व—द्रव्य की अपेक्षा--सबसे थोडे बादरनिगोदजीव पर्याप्त, उनसे बादरनिगोदजीव अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्तक असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्तक सख्येयगुण है ।

प्रदेशापेक्षया—सबसे थोडे बादरनिगोदजीव पर्याप्तक, उनसे बादरनिगोदजीव अपर्याप्तक असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्तक असख्येयगुण, उनके सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्तक सख्येयगुण ।

द्रव्य-प्रदेशापेक्षया—सबसे थोडे बादरनिगोदजीव पर्याप्त द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोद-जीव अपर्याप्त असख्यातगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्त असख्यगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्त सख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोदजीव पर्याप्त असख्येयगुण प्रदेशापेक्षया, उनसे बादरनिगोदजीव अपर्याप्त असख्येयगुण प्रदेशापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्त असख्येयगुण प्रदेशापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्त सख्येयगुण प्रदेशापेक्षया ।

२२४ (आ) **एएसि ण भंते ! णिगोदाण सुहुमाणं बायराणं पज्जत्ताणं अपज्जत्ताणं णिओयजीवाणं सुहुमाण बायराणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए दव्वपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?**

गोयमा ! सव्वत्थोवा बायरणिओदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए, बायरणिगोदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सुहुमणिगोदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सुहुमणिगोदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए सखेज्जगुणा । सुहुमणिगोदेहिंतो पज्जत्तेहिंतो बायरणिओवजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए अणतगुणा, बायरणिओदजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा, सुहुमणिओदजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सुहुमणिओदजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए सखेज्जगुणा ।

पएसट्ठयाए सव्वत्थोवा बायरणिगोदजीवा पज्जत्ता, पएसट्ठयाए बायरणिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, सुहुमणिओयजीवा अपज्जत्तगा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सुहुमणिओयजीवा पज्जत्ता

पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा, सुहुमणिओवजीवेहिंतो पएसट्ठयाए बायरणिगोदा पज्जत्ता पदेसट्ठयाए अणंतगुणा, बायरणिओया अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा जाव सुहुमणिओदा पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा।

दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा बायरणिओया पज्जत्ता दव्वट्ठयाए, बायरणिओदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा जाव सुहुमणिगोदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए सखेज्जगुणा, सुहुमणिगोवेहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिगोदजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए अणतगुणा, सेसा तहेव जाव सुहुमणिओवजीवा पज्जत्तगा दव्वट्ठयाए सखेज्जगुणा. सुहुमणिओदजीवेहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिओयजीवा पज्जत्ता पदेसट्ठयाए असखेज्जगुणा, सेसा तहेव जाव सुहुमणिओदा पज्जत्ता पएसट्ठयाए सखेज्जगुणा।

से त्तं छव्विहा संसारसमावण्णगा।

२२४ (आ) भगवन्! इन सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त निगोदो मे और सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त निगोदजीवो मे द्रव्यापेक्षया, प्रदेशापेक्षया और द्रव्य-प्रदेशापेक्षया कौन किससे कम, अधिक, तुल्य और विशेषाधिक है?

गौतम! सब से कम बादरनिगोद पर्याप्त द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त सख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोद जीव पर्याप्त अनन्तगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे बादरनिगोद जीव अपर्याप्त असख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्त असख्येयगुण द्रव्यापेक्षया, उनसे सूक्ष्मनिगोद जीव पर्याप्त सख्येयगुण द्रव्यापेक्षया।

प्रदेशो की अपेक्षा—सबसे थोडे बादरनिगोदजीव पर्याप्तक, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्त सख्येयगुण, उनसे बादरनिगोद पर्याप्त अनन्तगुण, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त सख्येयगुण।

द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ की अपेक्षा—सबसे थोडे बादरनिगोद पर्याप्त द्रव्यार्थतया, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण द्रव्यार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण द्रव्यार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त सख्येयगुण द्रव्यार्थतया, उनसे बादरनिगोदजीव पर्याप्त अनन्तगुण द्रव्यार्थतया, उनसे बादरनिगोदजीव अपर्याप्त असख्येयगुण द्रव्यार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्त असख्येयगुण द्रव्यार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्त सख्येयगुण द्रव्यार्थतया, उनसे बादरनिगोदजीव पर्याप्त असख्येयगुण प्रदेशार्थतया, उनसे बादरनिगोदजीव अपर्याप्त असख्येयगुण प्रदेशार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव अपर्याप्त असंख्येयगुण प्रदेशार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोदजीव पर्याप्त सख्येयगुण प्रदेशार्थतया, उनसे बादरनिगोद पर्याप्त अनतगुण प्रदेशार्थतया, उनसे बादरनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण प्रदेशार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त असख्येयगुण प्रदेशार्थतया, उनसे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त सख्येयगुण प्रदेशार्थतया।

उक्त रीति से निगोद और निगोदजीवो का सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त का अल्प-बहुत्व द्रव्यापेक्षया, प्रदेशापेक्षया और द्रव्य-प्रदेशापेक्षया बताया गया है।

इस प्रकार छह प्रकार के ससारसमापन्नको की पचम प्रतिपत्ति पूर्ण हुई। □□

सप्तविधाख्या षष्ठ प्रतिपत्ति

२२५. तत्थ ण जेते एवमाहंसु—'सत्तविहा ससारसमावण्णगा जीवा' ते एवमाहसु, त जहा—नेरइया तिरिक्खा तिरिक्खजोणिणीश्रो मणुस्सा मणुस्सीओ देवा देवीओ ।

नेरइयस्स ठिई जहण्णेण दसवाससहस्साइ, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं । तिरिक्खजोणियस्स जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि पलिश्रोवमाइ, एव तिरिक्खजोणिणीएवि, मणुस्साणवि, मणुस्सीणवि । देवाण ठिई जहा णेरइयाण, देवीण जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेण पणपन्न-पलिओवमाइ ।

नेरइय-देव-देवीणं जाचेव ठिई साचेव सचिट्ठणा । तिरिक्खजोणियाण जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण अणतकाल, तिरिक्खजोणिणीणं जहन्नेण अतोमुहुत्त उक्कोसेण तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइ । एव मणुस्सस्स मणुस्सीएवि ।

णेरइयस्स अतर जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं वणस्सइकालो । एव सव्वाण तिरिक्खजोणिय-वज्जाण । तिरिक्खजोणियाण जहन्नेण अतोमुहुत्त उक्कोसेण सागरोवमसयपुहुत्त सातिरेग ।

श्रप्पाबहुयं—सव्वत्थोवाओ मणुस्सीश्रो, मणुस्सा असंखेज्जगुणा, नेरइया असखेज्जगुणा, तिरिक्खजोणिणीओ श्रसखेज्जगुणाओ, देवा असखेज्जगुणा, देवीओ सखेज्जगुणाओ, तिरिक्खजोणिया श्रणतगुणा ।

सेत्त सत्तविहा संसारसमावण्णगा जीवा ।

२२५ जो ऐसा कहते हैं कि ससारसमापन्नकजीव सात प्रकार के हैं, उनके श्रनुसार वे सात प्रकार ये है—नैरयिक, तिर्यंच, तिरश्चो (तिर्यक्स्त्री), मनुष्य, मानुषी, देव श्रौर देवी ।

नैरयिक की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष श्रौर उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है । तिर्यक्योनिक की जघन्य श्रन्तमुहूर्त श्रौर उत्कृष्ट तीन पल्योपम है । तिर्यक्स्त्री, मनुष्य श्रौर मनुष्यस्त्री की भी यही स्थिति है । देवो की स्थिति नैरयिक की तरह जानना चाहिये श्रौर देवियो की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष श्रौर उत्कृष्ट पचपन पल्योपम है ।

नैरयिक श्रौर देवो की तथा देवियो की जो भवस्थिति है, वही उनकी सचिट्ठणा (कायस्थिति) है । तिर्यचो की जघन्य श्रन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट श्रनन्तकाल है । तिर्यक्स्त्रियो की सचिट्ठणा जघन्य श्रन्तर्मुहूर्त श्रौर उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व श्रधिक तीन पल्योपम है । इसी प्रकार मनुष्यों श्रौर मनुष्य-स्त्रियो को भी सचिट्ठणा जाननी चाहिए ।

नैरयिकों का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल (अनन्तकाल) है। तिर्यक्योनिको को छोडकर सबका अन्तर उक्त प्रमाण ही कहना चाहिए। तिर्यक्योनिको का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है।

अल्पबहुत्व—सबसे थोडी मानुषी स्त्रिया, उनसे मनुष्य असख्यातगुण, उनसे नैरयिक असख्येयगुण, उनसे तिर्यक्स्त्रिया असख्येयगुण, उनसे देव असख्येयगुण, उनसे देविया सख्यातगुण और उनसे तिर्यक्योनिक अनन्तगुण हैं।

यह सप्तविधि ससारसमापन्नक प्रतिपत्ति समाप्त हुई।

विवेचन—सप्तविधप्रतिपत्ति के अनुसार ससारसमापन्नक जीव सात प्रकार के हैं—नैरयिक, तिर्यक्योनिक, तिर्यक्स्त्रिया, मनुष्य, मानुषी स्त्रिया, देव और देविया। इन सातो की स्थिति, सचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व इस सूत्र मे प्रतिपादित है।

स्थिति—नैरयिक की स्थिति जघन्य दसहजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। तिर्यक्योनिक, तिर्यक्योनिकस्त्रिया, मनुष्य और मनुष्यस्त्रिया, इनकी जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम है। देवो की स्थिति जघन्य दसहजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम है। देवियो की स्थिति जघन्य दसहजार वर्ष और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है। यह स्थिति अपरिगृहिता ईशानदेवियो की अपेक्षा से है।

सचिट्ठणा—नैरयिको की, देवो की और देवियो की जो भवस्थिति है, वही उनकी सचिट्ठणा—कायस्थिति जाननी चाहिए। क्योकि नैरयिक और देव मरकर अनन्तरभव मे नैरयिक या देव नही होते। तिर्यक्योनिको की सचिट्ठणा जघन्य अन्तर्मुहूर्त (इतने समय बाद अन्यत्र उत्पन्न होना सभव है) और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। वह अनन्तकाल अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीप्रमाण (कालमार्गणा की अपेक्षा से) है तथा क्षेत्रमार्गणा की अपेक्षा असख्येय लोकाकाशप्रदेशो को प्रतिसमय एक-एक के अपहार करने पर जितने समय मे वे खाली हो उतनाकाल समझना चाहिए तथा असख्येय-पुद्गलपरावर्तप्रमाण वह अनन्तकाल है। आवलिका के असख्येयभाग मे जितने समय है उतने वे पुद्गलपरावर्त जानना चाहिए। तिर्यचस्त्रियो की सचिट्ठणा (कायस्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम है। निरन्तर पूर्वकोटि आयुष्यवाले सात भव और आठवे भव मे देवकुरु आदि मे उत्पन्न होने की अपेक्षा से है। मनुष्य और मनुष्यस्त्री सम्बन्धी काय-स्थिति भी यही समझनी चाहिए।

अन्तर- नैरयिक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। यह नरक से निकल कर तिर्यग् या मनुष्य गर्भ मे अशुभ अध्यवसाय से मरकर नरक मे उत्पन्न होने की अपेक्षा से समझना चाहिए। उत्कर्ष से अनन्तकाल है। यह अनन्तकाल वनस्पतिकाल समझना चाहिए। नरक से निकलकर अनन्तकाल वनस्पति मे रहकर फिर नरक मे उत्पन्न होने की अपेक्षा है।

तिर्यक्योनिक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व (दो सौ से लेकर नौ सौ सागरोपम) है। तिर्यक्योनिकी, मनुष्य, मानुषी तथा देव, देवी सूत्र मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का अन्तर है।

अल्पबहुत्व—सबसे थोडी मनुष्यस्त्रिया हैं, क्योकि वे कतिपय कोटिकोटिप्रमाण हैं। उनसे मनुष्य असख्येयगुण हैं, क्योकि सम्मूर्छिम मनुष्य श्रेणी के असख्येयप्रदेशराशिप्रमाण हैं। उनसे तिर्यंचस्त्रिया असखयेयगुण हैं, क्योकि महादण्डक मे जलचर तिर्यक्योनिकियो से वान-व्यन्तर-ज्योतिष्क देव भी सख्येयगुण कहे गये है। उनसे देविया असख्येयगुण हैं, क्योकि वे देवो से बत्तीस गुणी है। उनसे तिर्यंच अनन्तगुण है, क्योकि वनस्पतिजीव अनन्त है।[1] □□

।। इति षष्ठ प्रतिपत्ति ।।

१. "बत्तीमगुणा बत्तीसरूव-अहियाओ होति देवाण देवीओ" इति वचनात्।

अष्टविधाख्या सप्तम प्रतिपत्ति

२२६ तत्थ ण जेते एवमाहंसु—'अट्ठविहा ससारसमावण्णगा जीवा' ते एवमाहसु—पढमसमयनेरइया, अपढमसमयनेरइया, पढमसमयतिरिक्खजोणिया, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया, पढमसमयमणुस्सा, अपढमसमयमणुस्सा, पढमसमयदेवा, अपढमसमयदेवा ।

पढमसमयनेरइयस्स ण भंते ! केवइय काल ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समय, उक्कोसेण एक्कं समय । अपढमसमयनेरइयस्स जहन्नेणं दसवाससहस्साइ समय-उणाइ उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइं समय-उणाइ ।

पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जहन्नेण एक्क समय, उक्कोसेणं एक्कं समय । अपढमसमय-तिरिक्खजोणियस्स जहन्नेण खुड्डाग भवग्गहण समय-उणं, उक्कोसेणं तिण्णिपलिओवमाइं समय-उणाइ ।

एव मणुस्साणवि जहा तिरिक्खजोणियाण ।

देवाण जहा णेरइयाण ठिई ।

णेरइय-देवाण जा चेव ठिई सा चेव सचिट्ठणा दुविहाणवि ।

पढमसमयतिरिक्खजोणिए ण भते । पढमसमयतिरिक्खजोणिएत्ति कालओ केवचिर होई ? गोयमा ! जहन्नेण एक्क समय उक्कोसेणवि एक्कं समय । अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जहन्नेण खुड्डाग भवग्गहणं समय-ऊण, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

पढमसमयमणुस्साण जहन्नेण उक्कोसेण य एक्क समयं । अपढमसमयमणुस्साण जहन्नेण खुड्डागं भवग्गहणं समय-ऊणं, उक्कोसेण तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइ समय-ऊणाइ ।

२२६ जो आचार्यादि ऐसा कहते है कि ससारसमापन्नक जीव आठ प्रकार के है, उनके अनुसार ये आठ प्रकार इस तरह हैं— १ प्रथमसमयनैरयिक, २ अप्रथमसमयनैरयिक, ३ प्रथमसमय-तिर्यग्योनिक, ४ अप्रथममसयतिर्यग्योनिक, ५ प्रथमसमयमनुष्य, ६ अप्रथमसमयमनुष्य, ७ प्रथम-समयदेव और ८ अप्रथमसमयदेव ।

स्थिति—भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिक की स्थिति कितनी है ? गौतम ! जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से भी एक समय । अप्रथमसमयनैरयिक की जघन्यस्थिति एक समय कम दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से एक समय कम तेतीस सागरोपम की है ।

प्रथमसमयतिर्यग्योनिक की स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट भी एक समय है। अप्रथम-समयतिर्यग्योनिक की जघन्य स्थिति एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण[1] है और उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम तीन पल्योपम है।

इसी प्रकार मनुष्यो की स्थिति तिर्यग्योनिको के समान और देवों की स्थिति नैरयिको के समान कहनी चाहिए।

नैरयिक और देवो की जो स्थिति है, वही दोनो प्रकार के (प्रथमसमय-अप्रथमसमय) नैरयिको और देवो की कायस्थिति (सचिट्ठणा) है।

भगवन्! प्रथमसमयतिर्यग्योनिक उसी रूप मे कितने समय तक रह सकता है? गौतम! जघन्य एक समय और उत्कर्ष से भी एक समय तक रह सकता है। अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल तक रह सकता है।

प्रथमसमयमनुष्य जघन्य और उत्कृष्ट से एक समय तक और अप्रथमसमयमनुष्य जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण पर्यन्त और उत्कर्ष से एक समय कम पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकता है।

२२७ अतर—पढमसमयणेरइयस्स जहन्नेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अपढमसमयणेरइयस्स जहण्णेणं अतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

पढमसमयतिरिक्खजोणिए जहण्णेण दो खुड्डागभवग्गहणाइं समय-उणाइ, उक्कोसेणं वणस्सइ-कालो। अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जहण्णेण खुड्डागभवग्गहणं समयाहियं उक्कोसेणं सागरोवमसय-पुहुत्तं सातिरेगं।

पढमसमयमणुस्सस्स जहण्णेण दो खुड्डाइ भवग्गहणाइं समय-ऊणाइं, उक्कोसेण वणस्सइकालो। अपढमसमयमणुस्सस्स जहण्णेण खुड्डाग भवग्गहणं समयाहिय, उक्कोसेण वणस्सइकालो।

देवाण जहा णेरइयाण जहण्णेणं दसवाससहस्साइ अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेण वणस्सइ-कालो। अपढमसमयदेवाण जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण वणस्सइकालो।

अप्पाबहुय—एतेसि णं भंते! पढमसमयणेरइयाण जाव पढमसमयदेवाण य कयरे कयरेहितो अप्पा वा बहुया वा० ? गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयमणुस्सा, पढमसमयणेरइया असखेज्जगुणा, पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, पढमसमयतिरिक्खजोणिया असखेज्जगुणा, अपढमसमयनेरइयाण जाव अपढमसमयदेवाण एवं चेव अप्पाबहुयं, णवरि अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा।

एतेसि पढमसमयनेरइयाण अपढमसमयणेरइयाण य कयरे कयरेहितो अप्पा० ? सव्वत्थोवा पढमसमयणेरइया, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा।

एवं सव्वे।

---

१ २५६ आवलिकाओ का क्षुल्लकभव होता है।

पढमसमयणेरइयाणं जाव अपढमसमयदेवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० ? सव्वत्थोवा पढमसमयमणुस्सा, अपढमसमयमणुस्सा असंखेज्जगुणा, पढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा, पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ।

सेत्त अट्ठविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ।

अट्ठविहपडिवत्ती समत्ता ।

२२७ **अन्तरद्वार**—प्रथमसमयनैरयिक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष है, उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल है ।

अप्रथमसमयनैरयिक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है ।

प्रथमसमयतिर्यक्योनिक का जघन्य अन्तर एक समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है ।

अप्रथमसमयतिर्यक्योनिक का जघन्य अन्तर समयाधिक एक क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कृष्ट सागरोपमशतपृथक्त्व से कुछ अधिक है ।

प्रथमसमयमनुष्य का जघन्य अन्तर एक समय कम दो क्षुल्लकभव है, उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है ।

अप्रथमसमयमनुष्य का अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभव है और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है ।

देवो के सम्बन्ध मे नैरयिको की तरह कहना चाहिए । जैसे कि प्रथमसमयदेव का जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है । अप्रथमसमयदेव का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है ।

अल्पबहुत्वद्वार—भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिको यावत् प्रथमसमयदेवो मे कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोडे प्रथमसमयमनुष्य, उनसे प्रथमसमयनैरयिक असख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयदेव असख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयतिर्यक्योनिक असख्येयगुण ।

अप्रथमसमयनैरयिको यावत् अप्रथमसमयदेवो का अल्पबहुत्व उक्त क्रम से ही है, किन्तु अप्रथमसमयतिर्यक्योनिक अनन्तगुण कहने चाहिए ।

भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिको और अप्रथमसमयनैरयिको मे कौन किससे अल्पादि हैं ? गौतम ! सबसे थोडे प्रथमसमयनैरयिक, उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असख्येयगुण हैं ।

इसी प्रकार तिर्यक्योनिक, मनुष्य और देवो के प्रथमसमय और अप्रथमसमयो का अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिको यावत् अप्रथमसमयदेवों मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोडे प्रथमसमयमनुष्य, उनसे अप्रथमसमयमनुष्य असख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयनैरयिक असख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयदेव असख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयतिर्यक्योनिक असख्येय-

गुण, उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असख्येयगुण, उनसे अप्रथमसमयदेव असख्येयगुण, उनसे अप्रथमसमय तिर्यक्योनिक अनन्तगुण।

इस प्रकार आठ तरह के संसारसमापन्नक जीवो का वर्णन हुआ। अष्टविधप्रतिपत्ति नामक सातवी प्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

विवेचन—इस सप्तमप्रतिपत्ति मे आठ प्रकार के संसारसमापन्नक जीवो का कथन है। नारक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य और देव—इन चार के प्रथमसमय और अप्रथमसमय के रूप मे दो-दो भेद किये गये हैं, इस प्रकार आठ भेदो मे सम्पूर्ण ससारसमापन्नक जीवो का समावेश किया है।

जो अपने जन्म के प्रथमसमय मे वर्तमान है, वे प्रथमसमयनारक आदि हैं। प्रथमसमय को छोडकर शेष सब समयो मे जो वर्तमान है, वे अप्रथमसमयनारक आदि है। इन आठो भेदो को लेकर स्थिति, सचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

प्रथमसमयनैरयिक की जघन्य और उत्कृष्ट भवस्थिति एक समय की है, क्योकि द्वितीय आदि समयो मे वह प्रथमसमय वाला नही रहता। अप्रथमसमयनैरयिक की जघन्यस्थिति एक समय कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एकसमय कम तेतीस सागरोपम की है। तिर्यग्योनिको मे प्रथमसमय वालो की जघन्य उत्कर्ष स्थिति एक समय की और अप्रथमसमय वालो की जघन्य स्थिति एक समय कम क्षुल्लकभव और उत्कर्ष से एकसमय कम तीन पल्योपम है। इसी प्रकार मनुष्यो के विषय मे तिर्यचो के समान और देवो के सम्बन्ध मे नारको के समान भवस्थिति जाननी चाहिए।

सचिट्ठणा—देवो और नारको की जो भवस्थिति है, वही उनकी कायस्थिति (सचिट्ठणा) है, क्योकि देव और नारक मरकर पुन देव और नारक नही होते। प्रथमसमयतिर्यग्योनिको की जघन्य सचिट्ठणा एकसमय की है और उत्कृष्ट से भी एक समय की है। क्योकि तदनन्तर वह प्रथमसमय विशेषण वाला नही रहता। अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक की जघन्य सचिट्ठणा एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण है, क्योकि प्रथमसमय मे वह अप्रथमसमय विशेषण वाला नही है, अत वह प्रथमसमय कम करके कहा गया है। उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल अर्थात् अनन्तकाल कहना चाहिए, जिसका स्पष्टीकरण पूर्व मे कालमार्गणा और क्षेत्रमार्गणा से किया गया है।

प्रथमसमयमनुष्यो की जघन्य, उत्कृष्ट सचिट्ठणा एकसमय की है और अप्रथमसमयमनुष्यो की जघन्य एकसमय कम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्ट से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम मे एक समय कम सचिट्ठणा है। पूर्वकोटि आयुष्क वाले लगातार सात भव और आठवें भव मे देवकुरु आदि मे उत्पन्न होने की अपेक्षा से उक्त सचिट्ठणाकाल जानना चाहिए।

अन्तरद्वार—प्रथमसमयनैरयिक का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त अधिक दसहजार वर्ष है। यह दसहजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिक के नरक से निकलकर अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त अन्यत्र रहकर फिर नरक मे उत्पन्न होने की अपेक्षा से है। उत्कर्ष से अनन्तकाल है, जो नरक से निकलने के पश्चात् वनस्पति मे अनन्तकाल तक उत्पन्न होने के पश्चात् पुन. नरक मे उत्पन्न होने की अपेक्षा से है।

अप्रथमसमयनैरयिक का जघन्य अन्तर समयाधिक अन्तर्मुहूर्त है। यह नरक से निकल कर तिर्यक्गर्भ मे या मनुष्यगर्भ मे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर पुन. नरक मे उत्पन्न होने की अपेक्षा से

है। प्रथमसमय अधिक होने से समयाधिकता कही गई है। कही पर केवल अन्तर्मुहूर्त ही कहा गया है, इस कथन में प्रथम समय को भी अन्तर्मुहूर्त मे ही सम्मिलित कर लिया गया है, अत. पृथक् नही कहा गया है। उत्कर्ष से अन्तर वनस्पतिकाल है।

प्रथमसमयतिर्यक्योनिक मे जघन्य अन्तर एकसमय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण है। ये क्षुल्लक मनुष्य-भव ग्रहण के व्यवधान से पुन तिर्यचो मे उत्पन्न होने की अपेक्षा से हैं। एकभव तो प्रथम-समय कम तिर्यक्-क्षुल्लकभव और दूसरा सम्पूर्ण मनुष्य का क्षुल्लकभवग्रहण है। उत्कर्ष से वनस्पति-काल है। उसके व्यतीत होने पर मनुष्यभव व्यवधान से पुन· प्रथमसमयतिर्यंच के रूप मे उत्पन्न होने की अपेक्षा है।

अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक का जघन्य अन्तर समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण है। यह तिर्यक्योनिक-क्षुल्लकभवग्रहण के चरम समय को अधिकृत अप्रथमसमय मानकर उसमे मरने के बाद मनुष्य का क्षुल्लकभवग्रहण और फिर तिर्यंच मे उत्पन्न होने के प्रथम समय व्यतीत हो जाने की अपेक्षा जानना चाहिए। उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है। देवादि भवो मे इतने काल तक भ्रमण के पश्चात् पुन तिर्यंच मे उत्पन्न होने की अपेक्षा से है।

मनुष्यो की वक्तव्यता तिर्यक्-वक्तव्यता के अनुसार ही है। केवल वहा व्यवधान तिर्यक्भव का कहना चाहिए।

देवो का कथन नैरयिको के समान ही है।

अल्पबहुत्व—प्रथम अल्पबहुत्व प्रथमसमयनैरयिको यावत् प्रथमसमयदेवो को लेकर कहा गया है। जो इस प्रकार है—

सबसे थोडे प्रथमसमयमनुष्य हैं। ये श्रेणी के असख्येययभाग मे रहे हुए आकाश-प्रदेशतुल्य हैं। उनसे प्रथमसमयनैरयिक असख्येयगुण हैं, क्योकि एक समय मे ये अतिप्रभूत उत्पन्न हो सकते है। उनसे प्रथमसमयदेव असख्येयगुण हैं—व्यन्तर ज्योतिष्कदेव एकसमय मे अतिप्रभूततर उत्पन्न हो सकते हैं। उनसे प्रथमसमयतिर्यंच असख्येयगुण हैं। यहा नरकादि तीन गतियो से आकर तिर्यंच के प्रथमसमय मे वर्तमान हैं, वे ही प्रथमसमयतिर्यंच हैं, शेष नही। अत यद्यपि प्रतिनिगोद का असख्येय-भाग सदा विग्रहगति के प्रथमसमयवर्ती होता है, तो भी निगोदो के भी तिर्यक्त्व होने से वे प्रथमसमय-तिर्यंच नही हैं। वे इनसे सख्येयगुण ही हैं।

दूसरा अल्पबहुत्व अप्रथमसमयनैरयिको यावत् अप्रथमसमयदेवो को लेकर कहा गया है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोडे अप्रथमसमयमनुष्य है, क्योकि ये श्रेणी के असख्येयभागप्रमाण है। उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असख्येयगुण है, क्योकि ये अगुलमात्र क्षेत्र की प्रदेशराशि के प्रथमवर्गमूल मे द्वितीयवर्गमूल का गुणा करने पर जितनी प्रदेशराशि होती है, उतनी श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश हैं, उनके बराबर वे हैं। उनसे अप्रथमसमयदेव असख्येयगुण हैं, क्योकि व्यन्तर ज्योतिष्कदेव भी अतिप्रभूत है। उनसे अप्रथमसमय तिर्यच अनन्तगुण हैं, क्योकि वनस्पतिकाय अनन्त है।

तीसरा अल्पबहुत्व प्रत्येक नैरयिकादिको मे प्रथमसमय और अप्रथमसमय को लेकर है। वह इस प्रकार है—सबसे थोडे प्रथमसमयनैरयिक हैं, क्योकि एकसमय मे सख्यातीत उत्पन्न होने पर भी

स्तोक ही हैं। उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असख्येयगुण हैं, क्योंकि यह चिरकाल-स्थायी होने से अन्य-अन्य बहुत समयों मे अतिप्रभूत उत्पन्न होते हैं। इस तरह तिर्यक्योनिक, मनुष्य और देवो मे भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि तिर्यक्योनिको में अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक अनन्तगुण कहने चाहिए, क्योकि वनस्पतिजीव अनन्त हैं।

चौथा अल्पबहुत्व प्रथमसमय और अप्रथमसमय नारकादि का समुदितरूप मे कहा गया है।

सबसे थोडे प्रथमसमयमनुष्य है, क्योकि एक समय मे सख्यातीत उत्पन्न होने पर भी स्तोक ही हैं। उनसे अप्रथमसमयमनुष्य असख्येयगुण है, क्योकि चिरकालस्थायी होने से वे अतिप्रभूत उपलब्ध होते है। उनसे प्रथमसमयनैरयिक असख्येयगुण है, एक समय मे अतिप्रभूत उत्पन्न होने से। उनसे प्रथमसमयदेव असख्येयगुण है व्यन्तर ज्योतिष्को मे प्रभूत उत्पन्न होने से। उनसे प्रथमसमय-तिर्यग्योनिक असंख्येयगुण है, क्योकि नारकादि तीनो गतियो से आकर जीवो की उत्पत्ति होती रहती है। उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असख्येयगुण है, क्योकि वे अंगुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशि के प्रथम वर्गमूल मे द्वितीय वर्गमूल का गुणा करने पर जो प्रदेशराशि होती है, उतनी श्रेणियो मे जितनी प्रदेशराशि है, उसके तुल्य है। उनसे अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पतिजीव अनन्त है।

इस प्रकार अष्टविधससारसमापन्नकजीवो का कथन करने वाली सप्तम प्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

॥ इति सप्तम प्रतिपत्ति ॥

———

नवविधाख्या अष्टम प्रतिपत्ति

२२८. तत्थ णं जेते एवमाहंसु-'णवविहा संसारसमावण्णगा जीवा' ते एवमाहंसु—पुढविक्काइया, आउक्काइया, तेउक्काइया, वाउक्काइया, वणस्सइकाइया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया।

ठिई सव्वेसिं भाणियव्वा।

पुढवीक्काइयाणं सचिट्ठणा पुढविकालो जाव वाउक्काइयाणं। वणस्सइकाइयाणं वणस्सइकालो।

बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया संखेज्ज काल। पंचिंदियाणं सागरोवमसहस्स साइरेगं।

अंतर सव्वेसिं अणंतकाल। वणस्सइकाइयाणं असंखेज्जकालं।

अप्पाबहुगं—सव्वत्थोवा पंचिंदिया, चउरिंदिया विसेसाहिया, तेइंदिया विसेसाहिया, बेइंदिया विसेसाहिया, तेउक्काइया असंखेज्जगुणा, पुढविकाइया आउकाइया वाउकाइया विसेसाहिया, वणस्सइकाइया अणंतगुणा।

सेत्त णवविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता।

णवविहपडिवत्ति समत्ता।

२२८ जो नौ प्रकार के ससारसमापन्नक जीवो का कथन करते है, वे ऐसा कहते है—१ पृथ्वीकायिक, २ अप्कायिक, ३ तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक, ५ वनस्पतिकायिक, ६ द्वीन्द्रिय, ७ त्रीन्द्रिय, ८ चतुरिन्द्रिय और ९ पचेन्द्रिय।

सबकी स्थिति कहनी चाहिए।

पृथ्वीकायिको की सचिट्ठणा पृथ्वीकाल है, इसी तरह वायुकाय पर्यन्त कहना चाहिए। वनस्पतिकाय की सचिट्ठणा अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की सचिट्ठणा सख्येय काल है और पचेन्द्रियो की सचिट्ठणा साधिक हजार सागरोपम है।

सबका अन्तर अनन्तकाल है। केवल वनस्पतिकायिको का अन्तर असख्येय काल है।

अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे पचेन्द्रिय हैं, उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक है, उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक है, उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे तेजस्कायिक असख्येयगुण हैं, उनसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक क्रमश विशेषाधिक है और उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुण हैं।

इस तरह नवविध ससारसमापन्नको का कथन पूरा हुआ। नवविध प्रतिपत्ति नामक अष्टमी प्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

विवेचन—जो नौ प्रकार के ससारसमापन्नको का प्रतिपादन करते है, उनके मन्तव्य के अनुसार वे नौ प्रकार हैं—१ पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक, ५ वनस्पतिकायिक, ६ द्वीन्द्रिय, ७ त्रीन्द्रिय, ८ चतुरिन्द्रिय और ९ पचेन्द्रिय।

स्थिति—इनकी स्थिति इस प्रकार है—सबकी जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टस्थिति में पृथ्वीकाय की बावीस हजार वर्ष, अप्काय की सात हजार वर्ष, तेजस्काय की तीन अहोरात्र, वायुकायिक की तीन हजार वर्ष, वनस्पतिकायिको की दस हजार वर्ष, द्वीन्द्रिय की बारह वर्ष, त्रीन्द्रिय की ४९ दिन, चतुरिन्द्रिय की छह मास और पचेन्द्रिय की तेतीस सागरोपम है।

संचिट्ठणा—इन सबकी जघन्य सचिट्ठणा (कायस्थिति) अन्तर्मुहूर्त है। उत्कर्ष से पृथ्वीकाय की असख्येयकाल (जिसमे असख्येय उत्सर्पिणिया अवसर्पिणिया कालमार्गणा से समाविष्ट है तथा क्षेत्रमार्गणा से असख्येय लोकाकाशो के प्रदेशो के अपहारकालप्रमाण काल समाविष्ट है।) इसी तरह अप्कायिको, तेजस्कायिको और वायुकायिको की भी यही सचिट्ठणा कहनी चाहिए। वनस्पतिकाय की सचिट्ठणा अनन्तकाल है। इस अनन्तकाल मे अनन्त उत्सर्पिणिया अवसर्पिणिया समाविष्ट है तथा क्षेत्र से अनन्तलोको के आकाशप्रदेशो का अपहारकाल तथा असख्येयपुद्गलपरावर्त समाविष्ट हैं। पुद्गलपरावर्तों का प्रमाण आवलिका के असख्येयभागवर्ती समयो के बराबर है।

द्वीन्द्रिय की सचिट्ठणा सख्येयकाल है। त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय की सचिट्ठणा भी सख्येयकाल है। पचेन्द्रिय की सचिट्ठणा साधिक हजार सागरोपम है।

अन्तरद्वार—पृथ्वीकायिक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष से अनन्तकाल है। अनन्तकाल का प्रमाण पूर्ववत् जानना चाहिए। पृथ्वीकाय से निकलकर वनस्पति मे अनन्तकाल रहने के पश्चात् पुन पृथ्वीकाय मे उत्पन्न होने की अपेक्षा से है। इसी प्रकार अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रय और पचेन्द्रियो का भी अन्तर जानना चाहिए। वनस्पतिकाय का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष से असख्येयकाल है। यह असख्येयकाल असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप आदि पूर्ववत् जानना चाहिए।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोडे पचेन्द्रिय है। क्योकि ये सख्येय योजन कोटी-कोटी प्रमाण विष्कभसूची से प्रतरासख्येय भागवर्ती असंख्येय श्रेणीगत आकाशप्रदेशराशि के बराबर हैं। उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक है, क्योकि इनकी विष्कंभसूची प्रभूत संख्येययोजन कोटाकोटी प्रमाण है। उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक है, क्योकि इनकी विष्कभसूची प्रभूततर सख्येययोजन कोटाकोटी प्रमाण है। उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक है, क्योकि इनकी विष्कंभसूची प्रभूततम सख्येययोजन कोटाकोटी प्रमाण है। उनसे तेजस्कायिक असंख्येयगुण हैं, क्योकि ये असंख्येय लोकाकाशप्रदेश प्रमाण है। उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक है, क्योकि ये प्रभूतासंख्येय लोकाकाशप्रदेश प्रमाण है। उनसे अप्कायिक विशेषाधिक हैं, क्योकि प्रभूततरासख्येय लोकाकाशप्रदेश प्रमाण है। उनसे वायुकायिक विशेषाधिक है, क्योंकि ये प्रभूततमासंख्येय लोकाकाशप्रदेश प्रमाण हैं। उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुण हैं, क्योकि ये अनन्त लोकाकाशप्रदेश प्रमाण हैं।

॥ इति नवविधप्रतिपत्तिरूपा अष्टमी प्रतिपत्ति ॥

दशविधाख्या नवम प्रतिपत्ति

२२९ तत्थ णं जेते एवमाहंसु 'दसविहा संसारसमावण्णगा जीवा' ते एवमाहंसु, तं जहा—

१. पढमसमयएगिंदिया	२. अपढमसमयएगिंदिया
३ पढमसमयबेइंदिया	४ अपढमसमयबेइंदिया
५. पढमसमयतेइंदिया	६ अपढमसमयतेइंदिया
७. पढमसमयचउरिंदिया	८. अपढमसमयचउरिंदिया
९ पढमसमयपंचिंदिया	१० अपढमसमयपंचिंदिया ।

पढमसमयएगिंदियस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेण एक्कं समयं, उक्कोसेणवि एक्कं समयं । अपढमसमयएगिंदियस्स जहण्णेण खुड्डागं भवग्गहणं समय-ऊणं, उक्कोसेणं बावीसंवाससहस्साइं समय-ऊणाइं । एवं सव्वेसिं पढमसमयिकाणं जहण्णेणं एक्को समओ, उक्कोसेणं एक्को समओ । अपढमसमयिकाणं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समय-ऊणं, उक्कोसेण जा जस्स ठिई सा समय-ऊणा जाव पंचिंदियाणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समय-ऊणाइं ।

संचिट्ठणा पढमसमइयस्स जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं एक्कं समयं । अपढमसमयिकाणं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समय-ऊणं, उक्कोसेण एगिंदियाणं वणस्सइकालो । बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं संखेज्जकालं । पंचेंदियाणं सागरोवमसहस्सं सातिरेगं ।

२२९ जो आचार्यादि दस प्रकार के संसारसमापन्नक जीवों का प्रतिपादन करते हैं, वे उन जीवों के दस प्रकार इस तरह कहते हैं—

१ प्रथमसमयएकेन्द्रिय	२ अप्रथमसमयएकेन्द्रिय
३ प्रथमसमयद्वीन्द्रिय	४ अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय
५ प्रथमसमयत्रीन्द्रिय	६ अप्रथमसमयत्रीन्द्रिय
७ प्रथमसमयचतुरिन्द्रिय	८ अप्रथमसमयचतुरिन्द्रिय
९ प्रथमसमयपंचेन्द्रिय	१० अप्रथमसमयपंचेन्द्रिय ।

भगवन् ! प्रथमसमयएकेन्द्रिय की स्थिति कितनी है ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट भी एक समय है । अप्रथमसमयएकेन्द्रिय की जघन्य एक समय कम क्षुल्लक-भवग्रहण और उत्कर्ष से एक समय कम बावीस हजार वर्ष । इस प्रकार सब प्रथमसमयिकों की जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से भी एक समय की स्थिति कहनी चाहिए । अप्रथमसमय वालों की स्थिति जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभव और उत्कर्ष से जिसकी जो स्थिति कही गई है, उसमें एक समय कम करके कथन करना चाहिए यावत् पंचेन्द्रिय की एकसमय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति है ।

प्रथमसमयवालों की सचिट्ठणा (कायस्थिति) जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से भी एक समय है। अप्रथमसमयवालों की जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कर्ष से एकेन्द्रियो की वनस्पतिकाल और द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियो की सखेयकाल एव पचेन्द्रियो की साधिक हजार सागरोपम पर्यन्त संचिट्ठणा (कायस्थिति) है।

२३०. पढमसमयएगिंदियाणं केवइयं अंतरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समय-ऊणाइं, उक्कोसेण वणस्सइकालो। अपढमसमयएगिंदियाणं अंतरं जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइ सखेज्जवासमब्भहियाइ।

सेसाण सव्वेसिं पढमसमयिकाणं अतरं जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं समय-ऊणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अपढमसमयिकाणं सेसाण जहण्णेणं खुड्डाग भवग्गहणं समयाहियं उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

पढमसमयाणं सव्वेसिं सव्वत्थोवा पढमसमयपंचेंदिया, पढमसमयचउरिंदिया विसेसाहिया, पढमसमयतेइंदिया विसेसाहिया, पढमसमयबेइंदिया विसेसाहिया, पढमसमयएगिंदिया विसेसाहिया।

एव अपढमसमयिकावि नवरिं अपढमसमयएगिंदिया अणतगुणा।

दोण्ह अप्पबहुयं—सव्वत्थोवा पढमसमयएगिंदिया, अपढमसमयएगिंदिया अणतगुणा। सेसाण सव्वत्थोवा पढमसमयिका, अपढमसमयिका असखेज्जगुणा।

एएसि ण भंते ! पढमसमयएगिंदियाणं अपढमसमयएगिंदियाणं जाव अपढमसमयपंचिंदियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयपंचिंदिया, पढमसमयचउरिंदिया विसेसाहिया, पढमसमयतेइंदिया विसेसाहिया एव हेट्ठामुहा जाव पढमसमयएगिंदिया विसेसाहिया, अपढमसमयपंचिंदिया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयचउरिंदिया विसेसाहिया जाव अपढमसमयएगिंदिया अणंतगुणा।

सेत्त दसविहा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता।

सेत्त ससारसमावण्णगजीवाभिगमे।

२३० भगवन् ! प्रथमसमयएकेन्द्रियो का अन्तर कितना होता है ? गौतम ! जघन्य से समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। अप्रथमसमयएकेन्द्रिय का जघन्य अन्तर एकसमय अधिक एक क्षुल्लकभव है और उत्कर्ष से सख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है। शेष सब प्रथमसमयिको का अन्तर जघन्य से एक समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है। शेष अप्रथमसमयिकों का जघन्य अन्तर समयाधिक एक क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

सब प्रथमसमयिको मे सबसे थोड़े प्रथमसमय पचेन्द्रिय हैं, उनसे प्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे प्रथमसमयत्रीन्द्रिय विशेषाधिक है, उनसे प्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं और उनसे प्रथमसमयएकेन्द्रिय विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार अप्रथमसमयिकों का अल्पबहुत्व भी जानना चाहिए। विशेषता यह है कि अप्रथमसमयएकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं।

दोनो का अल्पबहुत्व—सबसे थोडे प्रथमसमयएकेन्द्रिय, उनसे अप्रथमसमयएकेन्द्रिय अनन्तगुण है। शेष मे सबसे थोडे प्रथमसमय वाले है और अप्रथमसमय वाले असख्येयगुण है।

भगवन्! इन प्रथमसमयएकेन्द्रिय, अप्रथमसमयएकेन्द्रिय यावत् अप्रथमसमयपचेन्द्रियो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

गौतम! सबसे थोड़े प्रथमसमयपचेन्द्रिय, उनसे प्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथमसमयत्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथमसमयएकेन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयपचेन्द्रिय असख्येयगुण, उनसे अप्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयत्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमय एकेन्द्रिय अनन्तगुण है।

इस प्रकार दस प्रकार के ससारसमापन्नक जीवो का कथन पूर्ण हुआ। इस प्रकार ससार-समापन्नकजीवाभिगम का वर्णन पूरा हुआ।

विवेचन--प्रस्तुत प्रतिपत्ति मे ससारसमापन्नक जीवो के दस भेद कहे गये है, जो एकेन्द्रिय से लगाकर पचेन्द्रियो के प्रथमसमय और अप्रथमसमय रूप मे दो-दो भेद करने पर प्राप्त होते है। प्रथमसमयएकेन्द्रिय वे हैं जो एकेन्द्रियत्व के प्रथमसमय मे वर्तमान है, शेष एकेन्द्रिय अप्रथमसमय-एकेन्द्रिय हैं। इसी तरह द्वीन्द्रियादि के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए।

उक्त दसो की स्थिति, सचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व इस प्रतिपत्ति मे प्रतिपादित है।

स्थिति—प्रथमसमयएकेन्द्रिय की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति एक समय की है, क्योकि दूसरे समयो में वह प्रथमसमय वाला नही रहता। इसी प्रकार प्रथमसमय वाले द्वीन्द्रियो आदि के विषय मे भी समझ लेना चाहिए। अप्रथमसमयएकेन्द्रिय की स्थिति जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभव (२५६ आवलिका-प्रमाण) है। एकसमय कम कहने का तात्पर्य यह है कि प्रथमसमय मे वह अप्रथमसमय वाला नही है। उत्कर्ष मे एक समय कम बावीस हजार वर्ष की स्थिति है।

अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय मे जघन्यस्थिति समयकम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्ट समयकम बारह वर्ष, अप्रथमसमयत्रीन्द्रियो की जघन्यस्थिति समय कम क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट समयकम ४९ अहोरात्र है। अप्रथमसमयचतुरिन्द्रिय की जघन्य स्थिति समयोन क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट समयोन छहमास है। अप्रथमसमयपचेन्द्रियो की जघन्य स्थिति समयोन क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट समयोन तेतीस सागरोपम है। सर्वत्र समयोनता प्रथमसमय से हीन समझना चाहिए।

संचिट्ठणा (कायस्थिति)—प्रथमसमयएकेन्द्रिय उसी रूप मे एक समय तक रहता है। इसके बाद वह प्रथमसमय वाला नही रहता। इसी तरह प्रथमसमयद्वीन्द्रियादि के विषय में भी समझना चाहिए। अप्रथमसमयएकेन्द्रिय जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण तक रहता है। फिर अन्यत्र कही उत्पन्न हो सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल तक रहता है। अनन्तकाल का स्पष्टीकरण पूर्ववत् अनन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीकाल पर्यन्त आदि जानना चाहिए।

अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय जघन्य समयोन क्षुल्लकभव, उत्कर्ष से सख्येयकाल तक रहता है, फिर अवश्य अन्यत्र उत्पन्न होता है। इसी तरह अप्रथमसमयत्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय के लिए भी समझना चाहिए।

अप्रथमसमयपंचेन्द्रिय जघन्य से समयोन क्षुल्लकभव और उत्कर्ष से साधिक हजार सागरोपम तक रहता है, क्योंकि देवादिभवों में लगातार परिभ्रमण करते हुए उत्कर्ष से इतने काल तक ही पचेन्द्रिय के रूप मे रह सकता है।

अन्तरद्वार—प्रथमसमयएकेन्द्रिय का अन्तर जघन्य से समयोन दो क्षुल्लकभव है। वे क्षुल्लकभव द्वीन्द्रियादि भवग्रहण के व्यवधान से पुन· एकेन्द्रिय मे उत्पन्न होने की अपेक्षा से हैं। जैसे कि एक भव तो प्रथमसमय कम एकेन्द्रिय का क्षुल्लकभव और दूसरा भव द्वीन्द्रियादि का सम्पूर्ण क्षुल्लकभव, इस तरह समयोन दो क्षुल्लकभव जानने चाहिए। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल— अनन्तकाल है, जिसका स्पष्टीकरण पूर्व में बताया जा चुका है। इतने काल तक वह अप्रथमसमय है, प्रथमसमय नही। क्योकि द्वीन्द्रियादि मे क्षुल्लकभव के रूप मे रहकर फिर एकेन्द्रिय रूप में उत्पन्न होने पर प्रथम-समय मे प्रथमसमयएकेन्द्रिय कहा जाता है। अत उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल कहा गया है।

अप्रथमसमयएकेन्द्रिय का जघन्य अन्तर समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण है। उस एकेन्द्रिय-भवगत चरमसमय को अधिक अप्रथमसमय मानकर उसमे मरकर द्वीन्द्रियादि क्षुल्लकभवग्रहण का व्यवधान होने पर फिर एकेन्द्रिय रूप मे उत्पन्न होने का प्रथमसमय बीत जाने पर प्राप्त होता है। इतने काल का अप्रथमसमयएकेन्द्रिय का अन्तर प्राप्त होता है। उत्कर्ष से संख्येयवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम का अन्तर हो सकता है। द्वीन्द्रियादि भवभ्रमण लगातार इतने काल तक ही सम्भव है।

प्रथमसमयद्वीन्द्रिय का जघन्य अन्तर समयोन दो क्षुल्लकभवग्रहण है। एक तो प्रथमसमयहीन द्वीन्द्रिय का क्षुल्लकभव और दूसरा सम्पूर्ण एकेन्द्रिय-त्रीन्द्रियादि का कोई भी क्षुल्लकभवग्रहण है। इसी प्रकार प्रथमसमयत्रीन्द्रिय, प्रथमसमयचतुरिन्द्रिय और प्रथमसमयपचेन्द्रियो का अन्तर भी जानना चाहिए।

अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय का जघन्य अन्तर समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण है। वह अन्यत्र क्षुल्लक। भव पर्यन्त रहकर पुन द्वीन्द्रिय के रूप मे उत्पन्न होने का प्रथमसमय बीत जाने पर प्राप्त होता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल का अन्तर है। यह अनन्तकाल पूर्ववत् अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो का होता है आदि कथन करना चाहिए। द्वीन्द्रियभव से निकल कर इतने काल तक वनस्पति मे रहकर पुन द्वीन्द्रिय रूप मे उत्पन्न होने से प्रथमसमय बीत जाने के पश्चात् यह अन्तर प्राप्त होता है। इसी तरह अप्रथमसमय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर समझना चाहिए।

अल्पबहुत्वद्वार—पहला अल्पबहुत्व प्रथमसमयिको को लेकर कहा गया है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोडे प्रथमसमयपचेन्द्रिय है, क्योकि वे एक समय मे थोडे ही उत्पन्न होते हैं। उनसे प्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, क्योकि वे एकसमय मे प्रभूत उत्पन्न होते हैं। उनसे प्रथमसमय-त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, क्योकि वे एकसमय मे प्रभूततर उत्पन्न होते है। उनसे प्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, क्योकि वे एक समय मे प्रभूततम उत्पन्न होते है। उनसे प्रथमसमयएकेन्द्रिय विशेषाधिक हैं। यहा जो द्वीन्द्रियादि से निकलकर एकेन्द्रिय रूप मे उत्पन्न होते है और प्रथमसमय मे वर्तमान हैं वे ही प्रथमसमयएकेन्द्रिय जानना चाहिए, अन्य नही। वे प्रथमसमयद्वीन्द्रियो से विशेषाधिक ही हैं, असंख्येय या अनन्तगुण नही।

दूसरा अल्पबहुत्व अप्रथमसमयिको का लेकर कहा गया है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोडे अप्रथमसमयपचेन्द्रिय, उनसे अप्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयत्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयएकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं।

तीसरा अल्पबहुत्व प्रत्येक एकेन्द्रियादि मे प्रथमसमय वालो और अप्रथमसमय वालो की अपेक्षा से है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोडे प्रथमसमयएकेन्द्रिय है, क्योकि द्वीन्द्रियादि से आकर एक समय मे थोडे ही उत्पन्न होते है। उनसे अप्रथमसमयएकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं, क्योंकि वनस्पतिकाल अनन्त है।

द्वीन्द्रियो मे सबसे थोडे प्रथमसमयद्वीन्द्रिय हैं, उनसे अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय असख्येयगुण है, क्योंकि द्वीन्द्रिय सब सख्या से भी असख्यात ही है।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पचेन्द्रियो मे भी प्रथमसमय वाले कम है और अप्रथमसमय वाले असंख्यातगुण है।

चौथा अल्पबहुत्व उक्त दस भेदो की अपेक्षा से कहा गया है। वह इस प्रकार है—

सबसे थोडे प्रथमसमयपचेन्द्रिय, उनसे प्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथमसमयत्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे प्रथमसमयएकेन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयपंचेन्द्रिय असख्येयगुण, उनसे अप्रथमसमयचतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयत्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयद्वीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अप्रथमसमयएकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं।

युक्ति स्पष्ट ही है।

इस प्रकार दसविधि प्रतिपत्ति पूर्ण हुई। उसके पूर्ण होने से ससारसमापन्नक जीवाभिगम भी पूर्ण हुआ। □□

सर्वजीवाभिगम

सर्वजीव–द्विविधवक्तव्यता

संसारसमापन्नक जीवो की दस प्रकार की प्रतिपत्तियो का प्रतिपादन करने के पश्चात् अब सर्वजीवाभिगम का कथन किया जा रहा है। इस सर्वजीवाभिगम मे संसारसमापन्नक और असंसार-समापन्नक—दोनो को लेकर प्रतिपादन किया गया है।

२३१. से किं त सव्वजीवाभिगमे ?

सव्वजीवेसु णं इमाओ णव पडिवत्तीओ एवमाहिज्जंति। एगे एवमाहंसु—दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता जाव दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता।

तत्थ ण जे ते एवमाहंसु—दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तं जहा—सिद्धा य असिद्धा य।

सिद्धे ण भंते ! सिद्धेत्ति कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! साइ-अपज्जवसिए।

असिद्धे ण भंते ! असिद्धत्ति कालओ केवचिर होइ ?

गोयमा ! असिद्धे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए।

सिद्धस्स ण भंते ! केवइकाल अंतर होइ ?

गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

असिद्धे ण भंते ! केवइय अंतरं होइ ?

गोयमा ! अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

एएसि ण भंते ! सिद्धाण असिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सिद्धा, असिद्धा अणंतगुणा।

२३१ भगवन् ! सर्वजीवाभिगम क्या है ?

गौतम ! सर्वजीवाभिगम मे नौ प्रतिपत्तिया कही हैं। उनमे कोई ऐसा कहते हैं कि सब जीव दो प्रकार के हैं यावत् दस प्रकार के हैं। जो दो प्रकार के सब जीव कहते है, वे ऐसा कहते हैं, यथा—सिद्ध और असिद्ध।

भगवन् ! सिद्ध, सिद्ध के रूप मे कितने समय तक रह सकता है ? गौतम ! सिद्ध सादि-अपर्यवसित है, (अत. सदाकाल सिद्धरूप मे रहता है।)

भगवन् ! असिद्ध, असिद्ध के रूप मे कितने समय तक रहता है ? गौतम ! असिद्ध जीव दो प्रकार के है—

अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। (अनादि-अपर्यवसित असिद्ध सदाकाल असिद्ध रहता है और अनादि-सपर्यवसित मुक्ति-प्राप्ति के पहले तक असिद्धरूप मे रहता है।)

भगवन् ! सिद्ध का अन्तर कितना है ? गौतम ! सादि-अपर्यवसित का अन्तर नही होता है।

भगवन् ! असिद्ध का अतर कितना होता है ?

गौतम ! अनादि-अपर्यवसित असिद्ध का अतर नही होता है। अनादि-सपर्यवसित का भी अतर नही होता है।

भगवन् ! इन सिद्धो और असिद्धो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

गौतम ! सबसे थोडे सिद्ध, उनसे असिद्ध अनन्तगुण है।

विवेचन—जैसे ससारसमापन्नक जीवो के विषयो मे नौ प्रकार की प्रतिपत्तिया कही गई है, वैसे ही सर्वजीव के विषय मे भी नौ प्रतिपत्तिया कही गई हैं। सर्वजीव मे ससारी और मुक्त, दोनो प्रकार के जीवो का समावेश होता है। अतएव इन कही जाने वाली नौ प्रतिपत्तियो मे सब जीवो का समावेश होता है। वे नौ प्रतिपत्तिया इस प्रकार है—

(१) कोई कहते है कि सब जीव दो प्रकार के हैं, यथा—सिद्ध और असिद्ध।

(२) कोई कहते है कि सब जीव तीन प्रकार के है, यथा—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि।

(३) कोई कहते हैं कि सब जीव चार प्रकार के है, यथा—मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी।

(४) कोई कहते है कि सब जीव पाच प्रकार के हैं, यथा—नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध।

(५) कोई कहते है कि सब जीव छह प्रकार के है—औदारिकशरीरी, वैक्रियशरीरी, आहारकशरीरी, तैजसशरीरी, कार्मणशरीरी और अशरीरी।

(६) कोई कहते हैं कि सब जीव सात प्रकार के हैं, यथा– पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक।

(७) कोई कहते है सब जीव आठ प्रकार के हैं, यथा—मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्यायज्ञानी, केवलज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभगज्ञानी।

(८) कोई कहते है कि सब जीव नौ प्रकार के है, यथा—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रय, नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध।

(९) कोई कहते है कि सब जीव दस प्रकार के है, यथा—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय और अतीन्द्रिय।

उक्त नौ प्रतिपत्तियो मे से प्रत्येक मे और भी विवक्षा से अन्य भेद भी किये गये है, जो यथास्थान कहे जायेंगे।

जो ऐसा प्रतिपादन करते है कि सब जीव दो प्रकार के है, उनका मन्तव्य है कि सब जीवो का समावेश सिद्ध और असिद्ध इन दो भेदो मे हो जाता है। जिन्होने आठ प्रकार के बधे हुए कर्मों को

भस्मीकृत कर दिया है, वे सिद्ध है।[1] अर्थात् जो कर्मबधनो से सर्वथा मुक्त हो चुके है, वे सिद्ध है। जो ससार के एवं कर्म के बन्धनो से मुक्त नही हुए है, वे असिद्ध है।

सिद्ध सदा काल निजस्वरूप मे रमण करते रहते है, अत उनकी कालमर्यादारूप भवस्थिति नही कही गई है। उनकी कायस्थिति अर्थात् सिद्धत्व के रूप मे उनकी स्थिति सदा काल रहती है। सिद्ध सादि-अपर्यवसित है। अर्थात् ससार से मुक्ति के समय सिद्धत्व की आदि है और सिद्धत्व की कभी च्युति न होने से अपर्यवसित है।

असिद्ध दो प्रकार के है—अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। जो अभव्य होने से या तथाविध सामग्री के अभाव से कभी सिद्ध नही होगा, वह अनादि-अपर्यवसित असिद्ध है। जो सिद्धि को प्राप्त करेगा वह अनादि-सपर्यवसित है, अर्थात् अनादि ससार का अन्त करने वाला है। जब तक वह मुक्ति नही प्राप्त कर लेता, तब तक असिद्ध, असिद्ध के रूप मे रहता है।

सिद्ध सिद्धत्व से च्युत होकर फिर सिद्ध नही बनते, अतएव उनमे अन्तर नही है। वे सादि और अपर्यवसित है, अत अन्तर नही है। असिद्धो मे जो अनादि-अपर्यवसित हैं, उनका असिद्धत्व कभी छूटेगा ही नही, अत अन्तर नही है। जो अनादि-सपर्यवसित है, उनका भी अन्तर नही है, क्योकि मुक्ति से पुन आना नही होता। अल्पबहुत्वद्वार मे सिद्ध थोडे है और असिद्ध अनन्तगुण हैं, क्योकि निगोदजीव अतिप्रभूत हैं।

२३२. **अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—सइंदिया चेव अणिंदिया चेव। सइंदिए ण भते! सइंदिएत्ति कालओ केवच्चिर होइ? गोयमा! सइंदिए दुविहे पण्णत्ते, —अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए। अणिंदिए साइए वा अपज्जवसिए, दोण्हवि अतर णत्थि। सव्वत्थोवा अणिंदिया, सइंदिया अणतगुणा।**

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—सकाइया चेव अकाइया चेव। एव चेव।

एव सजोगी चेव अजोगी चेव तहेव,

(एव सलेस्सा चेव अलेस्सा चेव, ससरीरा चेव असरीरा चेव।) सचिट्ठण अतर अप्पाबहुय जहा सइंदियाण।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—सवेदगा चेव अवेदगा चेव। सवेदए ण भते! सवेदएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! सवेदए तिविहे पण्णत्ते, त जहा—अणाइए अपज्जवसिए, अणाइए सपज्जवसिए, साइए सपज्जवसिए। तत्थ ण जेसे साइए सपज्जवसिए से जहन्नेणं अतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणतकाल जाव खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। अवेयए णं भते! अवेयएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! अवेयए दुविहे पण्णत्ते, त जहा—साईए वा अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ ण जेसे साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं एक्कं समय, उक्कोसेण अंतोमुहुत्त।

सवेयगस्स णं भते! केवइय कालं अंतरं होइ? अणादियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। अणादियस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अतरं। सादियस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेण एक्क समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

१ सित बद्धमष्टप्रकार कर्म ध्मात-भस्मीकृत यैस्ते सिद्धा। —वृत्ति

अवेयगस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ? साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतकालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।

अप्पाबहुगं—सव्वत्थोवा अवेयगा, सवेयगा अणंतगुणा। एवं सकसाई चेव अकसाई चेव जहा सवेयगे तहेव भाणियव्वे।

अहवा दुविहा सव्वजीवा—सलेसा य अलेसा य जहा असिद्धा सिद्धा। सव्वत्थोवा अलेसा, सलेसा अणंतगुणा।

२३२ अथवा सब जीव दो प्रकार के है, यथा—सेन्द्रिय और अनिन्द्रिय।

भगवन् ! सेन्द्रिय, सेन्द्रिय के रूप मे काल से कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! सेन्द्रिय जीव दो प्रकार के है—अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। अनिन्द्रिय मे सादि-अपर्यवसित। दोनो मे अन्तर नही है। सेन्द्रिय की वक्तव्यता असिद्ध की तरह और अनिन्द्रिय की वक्तव्यता सिद्ध की तरह कहनी चाहिए। अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे अनिन्द्रिय है और सेन्द्रिय अनन्तगुण हैं।

अथवा दो प्रकार के सर्व जीव है—सकायिक और अकायिक। इसी तरह सयोगी और अयोगी (सलेश्य और अलेश्य, सशरीर और अशरीर)। इनकी संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व सेन्द्रिय की तरह जानना चाहिए।

अथवा सब जीव दो प्रकार के है—सवेदक और अवेदक।

भगवन् ! सवेदक कितने समय तक सवेदक रहता है ? गौतम ! सवेदक तीन प्रकार के हैं, यथा—अनादि-अपर्यवसित, अनादि-सपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। इनमे जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से अनन्तकाल तक रहता है यावत् वह अनन्तकाल क्षेत्र से देशोन अपार्द्ध पुद्‌गलपरावर्त है।

भगवन् ! अवेदक, अवेदक रूप मे कितने काल तक रहता है ? गौतम ! अवेदक दो प्रकार के कहे गये है—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। इनमे जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य से एकसमय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

भगवन् ! सवेदक का अन्तर कितने काल का है ? गौतम ! अनादि-अपर्यवसित का अन्तर नही होता। अनादि-सपर्यवसित का भी अन्तर नही होता। सादि-सपर्यवसित का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

भगवन् ! अवेदक का अन्तर कितना है ? गौतम ! सादि-अपर्यवसित का अन्तर नही होता, सादि-सपर्यवसित का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है यावत् देशोन अपार्ध-पुद्‌गलपरावर्त।

अल्पबहुत्व—सबसे थोडे अवेदक है, उनसे सवेदक अनन्तगुण है। इसी प्रकार सकषायिक का भी कथन वैसा करना चाहिए जैसा सवेदक का किया है।

अथवा दो प्रकार के सब जीव हैं—सलेश्य और अलेश्य। जैसा असिद्धो और सिद्धो का कथन किया, वैसा इनका भी कथन करना चाहिए यावत् सबसे थोडे अलेश्य हैं, उनसे सलेश्य अनन्तगुण है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे सर्वजीवाभिगम की द्विविध प्रतिपत्ति का अन्य-अन्य अपेक्षाओ से प्ररूपण किया गया है ।

पूर्वसूत्र मे सिद्धत्व और असिद्धत्व को लेकर दो भेद किये थे । इस सूत्र मे सेन्द्रिय-अनिन्द्रिय, सकायिक-अकायिक, सयोगी-अयोगी, सलेश्य-अलेश्य, सवेदक-अवेदक और सकषाय-अकषाय को लेकर सर्वजीवाभिगम का द्वैविध्य बताया है ।

टीकाकार के अनुसार सयोगी-अयोगी के अनन्तर ही सलेश्य-अलेश्य और सशरीर-अशरीर का कथन है, जबकि मूलपाठ मे सलेश्य-अलेश्य के विषय मे अन्त मे अलग सूत्र दिया गया है ।

सर्वजीवो के इन दो-दो भेदो मे उपाधि और अनोपाधिकृत भेद है । कर्मजन्य-उपाधि के कारण सेन्द्रिय, सकायिक, सयोगी, सलेश्य, सवेदक और सकषायिक ससारी जीव कहे गये है । जबकि कर्मजन्य उपाधि से रहित होने के कारण अनिन्द्रिय, अकायिक, अयोगी, अलेश्य और अकषायिक सिद्ध जीव कहे गये है ।

सेन्द्रिय की कायस्थिति और अन्तर असिद्ध की वक्तव्यता के अनुसार और अनिन्द्रिय की वक्तव्यता सिद्ध की वक्तव्यता के अनुसार कहनी चाहिए । वह इस प्रकार है—

भगवन् ! सेन्द्रिय के रूप मे कितने काल तक रहता है ? गौतम ! सेन्द्रिय दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित । अनिन्द्रिय, अनिन्द्रिय के रूप मे कितने समय तक रहता है ? गौतम ! वह सादि-अपर्यवसित है । भगवन् ! सेन्द्रिय का काल से कितना अन्तर है ? गौतम ! अनादि-अपर्यवसित का अन्तर नही है, अनादि-सपर्यवसित का भी अन्तर नही है । अनिन्द्रिय का अन्तर कितना है ? गौतम ! सादि-अपर्यवसित का अन्तर नही है ? अल्पबहुत्व मे अनिन्द्रिय थोडे है और सेन्द्रिय अनन्तगुण है, क्योकि सेन्द्रिय वनस्पतिजीव अनन्त है ।

इसीतरह की वक्तव्यता सकायिक-अकायिक, सयोगी-अयोगी, सलेश्य-अलेश्य और सशरीर-अशरीर जीवो के विषय मे भी कहनी चाहिए । अर्थात् इनकी सचिट्ठणा (कायस्थिति), अन्तर और अल्पबहुत्व सेन्द्रिय-अनिन्द्रिय की तरह ही है ।

सवेदक-अवेदक और सकषायिक-अकषायिक के सम्बन्ध मे विशेषता होने से पृथक् निरूपण है । वह इस प्रकार है—

सवेदक की कायस्थिति बताते हुए कहा गया है कि सवेदक तीन प्रकार के हैं—१ अनादि-अपर्यवसित २ अनादि-सपर्यवसित और ३ सादि-सपर्यवसित । उनमे अनादि-अपर्यवसित सवेदक या तो अभव्य जीव हैं या तथाविध सामग्री के अभाव से मुक्ति मे न जाने वाले जीव हैं । क्योकि कई भव्य जीव भी सिद्ध नही होते ।[1] अनादि-सपर्यवसित सवेदक वह भव्य जीव है, जो मुक्तिगामी है और जिसने पहले उपशमश्रेणी प्राप्त नही की है । सादि-सपर्यवसित सवेदक वह है जो भव्य मुक्तिगामी है और जिसने पहले उपशमश्रेणी प्राप्त की है ।

इनमे उपशमश्रेणी को प्राप्त कर वेदोपशम के उत्तरकाल मे अवेदकत्व का अनुभव कर श्रेणी समाप्ति पर भवक्षय से अपान्तराल मे मरण होने से अथवा उपशमश्रेणी से गिरने पर पुन

१ "भव्वावि ण सिज्झति केइ ।' इति वचनात् ।

वेदोदय हो जाने से सवेदक हो गया जीव सादि-सपर्यवसित सवेदक है। इस सादि-सपर्यवसित सवेदक की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। क्योकि श्रेणी की समाप्ति पर सवेदक हो जाने के अन्तर्मुहूर्त बाद पुन श्रेणी पर चढ़कर अवेदक हो सकता है।

यहा शका हो सकती है कि क्या एक जन्म मे दो बार उपशमश्रेणी पर चढा जा सकता है? समाधान करते हुए कहा गया है कि दो बार उपशमश्रेणी हो सकती है, किन्तु एक जन्म मे उपशम-श्रेणी और क्षपकश्रेणी ये दोनो श्रेणिया नही हो सकती है।[1]

सादि-सपर्यवसित सवेदक की उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्तकाल है। यह अनन्तकाल, काल-मार्गणा की अपेक्षा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्रमार्गणा से देशोन अपार्द्धपुद्गल-परावर्त है। इतने काल के बाद पूर्वप्रतिपन्न उपशमश्रेणी वाला जीव आसन्नमुक्ति वाला होकर श्रेणी को प्राप्त कर अवेदक हो सकता है।

अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित की सचिट्ठणा नही है।

अवेदक के सम्बन्ध मे प्रश्न किये जाने पर कहा गया है कि अवेदक दो प्रकार के है-- सादि-अपर्यवसित (समयानन्तर) क्षीणवेद वाले और सादि-सपर्यवसित उपशान्तवेद वाले। जो सादि-सपर्यवसित अवेदक है उनकी सचिट्ठणा जघन्य एक समय, उपशमश्रेणी को प्राप्त कर वेदोपशमन के एक समय बाद मरण होने पर पुन सवेदक होने की अपेक्षा से। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त, क्योकि उपशमश्रेणी का काल इतना ही है। इसके बाद पतन होने से नियमत सवेदक होता है।

अनादि-अपर्यवसित सवेदक का अन्तर नही है, क्योकि अपर्यवसित होने से उस भाव का कभी त्याग नही होता। अनादि-सपर्यवसित सवेदक का भी अन्तर नही होता, क्योकि अनादि-सपर्यवसित अपान्तराल मे उपशमश्रेणी न करके भावी क्षीणवेदी होता है। क्षीणवेदी के पुन सवेदक होने की सम्भावना नही है, क्योकि उसमे प्रतिपात नही होता। सादि-सपर्यवसित सवेदक का अन्तर जघन्य एक समय है, क्योकि दूसरी बार उपशमश्रेणीप्रतिपन्न का वेदोपशमन के अनन्तर समय मे किसी का मरण सम्भव है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि दूसरी बार उपशमश्रेणीप्रतिपन्न का वेदोपशमन होने पर श्रेणी का अन्तर्मुहूर्त काल समाप्त होने पर पुन सवेदकत्व सभव है।

अवेदकसूत्र मे सादि-अपर्यवसित अवेदक का अन्तर नही है, क्योकि क्षीणवेद वाला जीव पुन सवेदक नही होता। सादि-सपर्यवसित अवेदक का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि उपशमश्रेणी की समाप्ति पर सवेदक होने पर पुन अन्तर्मुहूर्त मे दूसरी बार उपशमश्रेणी पर चढकर अवेदकत्व स्थिति हो सकती है। उत्कर्ष से अन्तर अनन्तकाल है। वह अनन्तकाल अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्र से अपार्धपुद्गलपरावर्त है, क्योकि एक बार उपशमश्रेणी प्राप्त कर वहा अवेदक होकर श्रेणी समाप्ति पर पुन सवेदक होने की स्थिति मे इतने काल के अनन्तर पुन श्रेणी को प्राप्त कर अवेदक हो सकता है।

इनका अल्पबहुत्व पूर्ववत् जानना चाहिये, अर्थात् अवेदक थोडे और सवेदक अनन्तगुण हैं, वनस्पतिजीवो की अनन्तता की अपेक्षा से।

---

१ तथा चाह मूलटीकाकार --"नैकस्मिन् जन्मनि उपशमश्रेणि क्षपकश्रेणिश्च जायते, उपशमश्रेणिद्वय तु भवत्येव।"

सकषायिक और अकषायिक जीवो के विषय मे यही सवेदक और अवेदक की वक्तव्यता कहनी चाहिए।

२३३. अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता—णाणी चेव अण्णाणी चेव। णाणी णं भंते! कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! णाणी दुविहे पण्णत्ते—साईए वा अपज्जवसिए साईए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जेसे साईए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं छावट्ठिसागरोवमाइं साइरेगाइं। अण्णाणी जहा सवेदया।

णाणिस्स अंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणंत काल अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। अण्णाणियस्स दोण्हवि आइल्लाणं णत्थि अंतर, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्त, उक्कोसेणं छावट्ठिसागरोवमाइं साइरेगाइं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा णाणी, अण्णाणी अणंतगुणा।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता—सागारोवउत्ता य अणागारोवउत्ता य। संचिट्ठणा अंतरं य जहण्णेणं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं। अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा अणागारोवउत्ता, सागारोवउत्ता सखेज्जगुणा।

२३३ अथवा सब जीव दो प्रकार के है—ज्ञानी और अज्ञानी।

भगवन्! ज्ञानी, ज्ञानीरूप मे कितने काल तक रहता है?

गौतम! ज्ञानी दो प्रकार के है—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। इनमे जो सादि-सपर्यवसित हैं वे जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकते है।

अज्ञानी के लिए वही वक्तव्यता है जो पूर्वोक्त सवेदक की है।

ज्ञानी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल, जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है। आदि के दो अज्ञानी—अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर नही है। सादि-सपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है।

अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे ज्ञानी, उनसे अज्ञानी अनन्तगुण है।

अथवा दो प्रकार के सब जीव हैं—साकार-उपयोग वाले और अनाकार-उपयोग वाले। इनकी सचिट्ठणा और अन्तर जघन्य और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है। अल्पबहुत्व मे अनाकार-उपयोग वाले थोडे है, उनसे साकार-उपयोग वाले सख्येयगुण है।

विवेचन—ज्ञानी और अज्ञानी की अपेक्षा से सब जीवो का द्वैविध्य इस सूत्र मे कहा गया है। ज्ञानी से यहा सम्यग्ज्ञानी अर्थ अभिप्रेत है और अज्ञानी से मिथ्याज्ञानी अर्थ समझना चाहिए। ज्ञानी दो प्रकार के है—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। केवली सादि-अपर्यवसित है, क्योकि केवलज्ञान सादि-अनन्त है। मतिज्ञानी आदि सादि-सपर्यवसित है, क्योकि मतिज्ञान आदि छाद्मस्थिक होने से सादि-सान्त है। इनमे जो सादि-सपर्यवसित ज्ञानी है, वह जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक और उत्कृष्ट से छियासठ सागरोपम तक रहता। सम्यक्त्व की जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त है इस अपेक्षा से[1] सम्यक्त्वधारी ज्ञानी की जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त बतायी है। सम्यग्दर्शन का उत्कृष्ट काल छियासठ

१ "सम्यग्दृष्टेर्ज्ञान मिथ्यादृष्टेर्विपर्यास" इति वचनात्।

सागरोपम से कुछ अधिक है, अत ज्ञानी की उत्कृष्ट सचिट्ठणा छियासठ सागरोपम से कुछ अधिक बताई है। यह स्थिति सम्यक्त्व से गिरे बिना विजयादि मे जाने की अपेक्षा से है। जैसा कि भाष्य मे कहा है कि दो बार विजयादि विमान मे अथवा तीन बार अच्युत देवलोक मे जाने से छियासठ सागरोपम काल और मनुष्य के भवो का काल साधिक मे गिनने से उक्त स्थिति बनती है।[1]

अज्ञानी की सचिट्ठणा बताते हुए कहा गया है कि अज्ञानी तीन प्रकार के है—अनादि-अपर्यवसित, अनादि-सपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। अनादि-अपर्यवसित अज्ञानी वह है जो कभी मोक्ष मे नही जायेगा। अनादि-सपर्यवसित अज्ञानी वह है जो अनादि-मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्व पाकर और उससे अप्रतिपतित होकर क्षपकश्रेणी को प्राप्त करेगा। सादि-सपर्यवसित अज्ञानी वह है जो सम्यग्दृष्टि बनकर मिथ्यादृष्टि बन गया हो। ऐसा अज्ञानी जघन्य से अन्तर्मुहूर्तकाल उसमे रहकर फिर सम्यग्दृष्टि बन सकता है, इस अपेक्षा से उसकी सचिट्ठणा जघन्य अन्तर्मुहूर्त कही है और उत्कर्ष से अनन्तकाल है, जो अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्र मे देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त है।

अन्तरद्वार—सादि-अपर्यवसित ज्ञानी का अन्तर नही होता, क्योकि अपर्यवसित होने से वह कभी उस रूप का त्याग नही करता। सादि-सपर्यवसित ज्ञानी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। इतने काल तक मिथ्यादर्शन मे रहकर फिर ज्ञानी हो सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल (अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप) है, जो क्षेत्र से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है। क्योकि सम्यग्दृष्टि, सम्यक्त्व से गिरकर इतने काल तक मिथ्यात्व का अनुभव करके अवश्य ही फिर सम्यक्त्व पाता है।

अज्ञानी का अन्तर बताते हुए कहा है कि अनादि-अपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर नही है, क्योकि वह अपर्यवसित होने से उस भाव का त्याग नही करता। अनादि-सपर्यवसित अज्ञानी का भी अन्तर नही है, क्योकि केवलज्ञान प्राप्त करने पर वह जाता नही है। सादि-सपर्यवसित अज्ञानी का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि जघन्य सम्यग्दर्शन का काल इतना ही है। उत्कर्ष से साधिक छियासठ सागरोपम का अन्तर है, क्योकि सम्यग्दर्शन से गिरने के बाद इतने काल तक अज्ञानी रह सकता है।

अल्पबहुत्व सूत्र स्पष्ट ही है। ज्ञानियो से अज्ञानी अनन्तगुण है। अज्ञानी वनस्पतिजीव अनन्त हैं।

अथवा सब जीवो के दो भेद उपयोग को लेकर किये गये है। दो प्रकार के उपयोग है—साकार-उपयोग और अनाकार-उपयोग। उपयोग की द्विरूपता के कारण सब जीव भी दो प्रकार के हैं—साकार-उपयोग वाले और अनाकार-उपयोग वाले।

इन दोनो की सचिट्ठणा और अन्तर जघन्य और उत्कृष्ट दोनो अपेक्षा से अन्तर्मुहूर्त है। यहा टीकाकार लिखते हैं कि सूत्रगति विचित्र होने से यहा सब जीवो से तात्पर्य छद्मस्थ ही लेने चाहिए, केवली नही। क्योकि केवलियो का साकार-अनाकार उपयोग एकसामयिक होने से कायस्थिति और अन्तरद्वार मे एकसामयिक भी कहा जाना चाहिए, जो नही कहा गया है। वह "अन्तर्मुहूर्त" ही कहा गया है, जो छद्मस्थो मे होता है।

१. दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्निअच्चुए अहव ताइ।
अइरेग नरभविय नाणा जीवाण सव्वद्धा॥ —भाष्यगाथा

अल्पबहुत्वद्वार मे सबसे थोड़े अनाकार-उपयोग वाले हैं, क्योंकि अनाकार-उपयोग का काल अल्प होने से पृच्छा के समय वे अल्प ही प्राप्त होते है। साकार-उपयोग वाले उनसे सख्येयगुण है, क्योकि अनाकार-उपयोग के काल से साकार-उपयोग का काल सख्येयगुण है।

२३४ अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—आहारगा चेव अणाहारगा चेव।

आहारए णं भंते! जाव केवचिर होइ ? गोयमा ! आहारए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—छउमत्थआहारए य केवलिआहारए य। छउमत्थआहारए ण जाव केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेण खुड्डागं भवग्गहणं दुसमयऊणं उक्कोसेणं असंखेज्जकालं जाव कालओ० खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागं। केवलिआहारए णं जाव केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

अणाहारए णं भंते ! केवचिरं होइ ? गोयमा ! अणाहारए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—छउमत्थअणाहारए य केवलिअणाहारए य। छउमत्थअणाहारए णं जाव केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समय उक्कोसेण दो समया।

केवलिअणाहारए दुविहे पण्णत्ते, त जहा—सिद्धकेवलिअणाहारए य भवत्थकेवलिअणाहारए य। सिद्धकेवलिअणाहारए ण भते ! कालओ केवचिर होइ ? साइए अपज्जवसिए। भवत्थकेवलि-अणाहाराए ण भते ! कइविहे पण्णत्ते ? भवत्थकेवलिअणाहाराए दुविहे पण्णत्ते, सजोगिभवत्थ-केवलिअणाहारए य अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए य।

सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए ण भते ! कालओ केवचिर होइ ? अजहण्णमणुक्कोसेणं तिण्णि समया। अजोगीभवत्थकेवली० ? जहण्णेणं अतोमुहुत्त उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

छउमत्थआहारगस्स केवइयं काल अतरं ? गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं दो समया।

केवलिआहारगस्स अंतर अजहण्णमणुक्कोसेण तिण्णि समया। छउमत्थअणाहारगस्स अतर जहन्नेण खुड्डागभवग्गहण दुसमयऊण उक्कोसेण असंखेज्जकालं जाव अंगुलस्य असंखेज्जइभागं।

सिद्धकेवलिअणाहारगस्स साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेण वि। अजोगिभवत्थकेवलि-अणाहारगस्स णत्थि अतर।

एएसि णं भंते ! आहारगाणं अणाहारगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा० गोयमा ! सव्वत्थोवा अणाहारगा, आहारगा असंखेज्जगुणा।

२३४ अथवा सर्व जीव दो प्रकार के है—आहारक और अनाहारक।

भगवन् ! आहारक, आहारक के रूप में कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! आहारक दो प्रकार के हैं—छद्मस्थ-आहारक और केवलि-आहारक।

भगवन् ! छद्मस्थ-आहारक, आहारक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

गौतम ! जघन्य दो समय कम क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट से असख्येय काल तक यावत् क्षेत्र की अपेक्षा अगुल का असख्यातवा भाग।

केवलि-आहारक यावत् काल से कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोन पूर्वकोटि।

भगवन् ! अनाहारक यावत् काल से कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! अनाहारक दो प्रकार के है— छद्मस्थ-अनाहारक और केवलि-अनाहारक।

भगवन् ! छद्मस्थ-अनाहारक उसी रूप मे कितने काल तक रहता है ?

गौतम ! जघन्य से एक समय, उत्कृष्ट दो समय तक। केवलि-अनाहारक दो प्रकार के हैं— सिद्धकेवलि-अनाहारक और भवस्थकेवलि-अनाहारक।

भगवन् ! सिद्धकेवलि-अनाहारक उसी रूप मे कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! वह सादि-अपर्यवसित है।

भगवन् ! भवस्थकेवलि-अनाहारक कितने प्रकार के है ?

गौतम ! दो प्रकार के हैं--सयोगिभवस्थकेवलि-अनाहारक और अयोगि-भवस्थकेवलि-अनाहारक।

भगवन् ! सयोगिभवस्थकेवलि-अनाहारक उसी रूप मे कितने समय तक रहता है ? जघन्य उत्कृष्ट रहित तीन समय तक। अयोगिभवस्थकेवलि-अनाहारक जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त।

भगवन् ! छद्मस्थ-आहारक का अन्तर कितना कहा गया है ?

गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो समय। केवलि-आहारक का अन्तर जघन्य-उत्कृष्ट रहित तीन समय। अनाहारक का अतर जघन्य दो समय कम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कर्ष से असख्यात काल यावत् अगुल का असख्यातभाग।

सिद्धकेवलि-अनाहारक सादि-अपर्यवसित है अत अन्तर नही है। सयोगिभवस्थकेवलि-अनाहारक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट से भी यही है।

अयोगिभवस्थकेवलि-अनाहारक का अन्तर नही है।

भगवन् ! इन आहारको और अनाहारको मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

गौतम ! सबसे थोडे अनाहारक है, उनसे आहारक असख्येयगुण हैं।

विवेचन—आहारक और अनाहारक को लेकर प्रस्तुत सूत्र मे सर्व जीवो के दो प्रकार बताये है। विग्रहगतिसमापन्न, केवलिसमुद्घात वाले केवली, अयोगी केवली और सिद्ध—ये ही अनाहारक हैं, शेष जीव आहारक हैं।[1]

---

१ विग्गहगइमावन्ना केवलिणो समुहया अजोगी या।
सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारगा जीवा॥

कायस्थिति—आहारक जीव दो प्रकार के है—छद्मस्थ-आहारक और केवलि-आहारक। छद्मस्थ-आहारक की जघन्य कायस्थिति दो समय कम क्षुल्लकभवग्रहण है। यह विग्रहगति से आकर क्षुल्लकभव मे उत्पन्न होने की अपेक्षा से है।

लोकनिष्कुट आदि मे उत्पन्न होने की स्थिति मे चार समय की या पाच समय की भी विग्रहगति होती है, परन्तु बाहुल्य से तीन समय को विग्रहगति होती है। उसो को लेकर यह सूत्र कहा गया है। अन्य पूर्वाचार्यों ने भी यही कहा है। जैसा कि तत्त्वार्थसूत्र मे "एक द्वौ वा अनाहारका." कहा है।[1] तीन समय को विग्रहगति मे से दो समय अनाहारकत्व के है। उन दो समयो को छोड़कर शेष क्षुल्लकभव तक जघन्य रूप से आहारक रह सकता है। उत्कर्ष से असख्यातकाल तक आहारक रह सकता है। यह असख्येयकाल कालमार्गणा से असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण है और क्षेत्रमार्गणा की अपेक्षा अगुलासख्येय भाग है। अर्थात् अगुलमात्र के असख्येयभाग मे जितने आकाश-प्रदेश है, उनका प्रतिसमय एक-एक अपहार करने पर जितने काल मे वे निर्लेप होते हैं, उतनी उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है। इतने काल तक जीव अविग्रह रूप से उत्पन्न हो सकता है और अविग्रह से उत्पत्ति मे सतत आहारकत्व होता है।

केवली-आहारक की जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त है। यह अन्तकृतकेवली की अपेक्षा से है। उत्कर्ष से देशोनपूर्वकोटि है। यह पूर्वकोटि आयु वाले को नौ वर्ष की वय मे केवलज्ञान उत्पन्न होने की अपेक्षा से है।

अनाहारक दो प्रकार के हैं—छद्मस्थ-अनाहारक और केवली-अनाहारक। छद्मस्थ-अनाहारक जघन्य से एक समय तक अनाहारक रह सकता है। यह दो समय की विग्रहगति की अपेक्षा से है। उत्कर्ष से दो समय अनाहारक रह सकता है। यह तीन समय की विग्रहगति की अपेक्षा से है। चूर्णिकार ने कहा है कि यद्यपि भगवती मे चार समय तक अनाहारकत्व कहा है, तथापि वह कादाचित्क होने से यहा उसे स्वीकार न कर बाहुल्य को प्रधानता दी गई है। बाहुल्य से दो समय तक अनाहारक रह सकता है।[2]

केवली-अनाहारक दो प्रकार के है—भवस्थकेवली-अनाहारक और सिद्धकेवली-अनाहारक। सिद्धकेवली-अनाहारक सादि-अपर्यवसित है। सिद्धो के सादि-अपर्यवसित होने से उनका अनाहारकत्व भी सादि-अपर्यवसित है।

भवस्थकेवली-अनाहारक दो प्रकार के है—सयोगिभवस्थकेवली-अनाहारक और अयोगिभवस्थ-केवली-अनाहारक। अयोगिभवस्थकेवली-अनाहारक जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त तक अनाहारक रह सकता है। अयोगित्व शैलेशी-अवस्था मे होता है। उसमे नियम से वह अनाहारक ही होता है, क्योकि औदारिककाययोग उस समय नही रहता। शैलेशी-अवस्था का कालमान जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त ही है। परन्तु जघन्यपद से उत्कृष्टपद अधिक जानना चाहिए, अन्यथा उभयपद देने की आवश्यकता नही थी।

---

१. "एकं द्वौ वा अनाहारका —" तत्त्वार्थ अ २, सू ३१

२. यद्यपि भगवत्या चतु सामयिकोऽनाहारक उक्तस्तथापि नागीक्रियते, कदाचित्कोऽसो भावो येन, बाहुल्यमेवाङ्गी-क्रियते, बाहुल्याच्च समयद्वयमेवेति। —वृत्ति

सयोगिभवस्थकेवली-अनाहारक जघन्य और उत्कर्ष के भेद बिना तीन समय तक रह सकता है। यह अष्ट-सामयिक केवलीसमुद्घात की अवस्था मे तीसरे, चौथे और पाचवे समय मे केवल कार्मणकाययोग ही होता है। अत. उन तीन समयो मे वह नियम से अनाहारक होता है।[1]

अन्तरद्वार—छद्मस्थ-आहारक का अन्तर जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से दो समय है। जितना काल जघन्य और उत्कर्ष से छद्मस्थ-अनाहरक का है, उतना ही काल छद्मस्थ-आहारक का अन्तरकाल है। वह काल जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से दो समय अनाहारकत्व का है। अतः छद्मस्थ-आहारकत्व का अन्तर जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से दो समय कहा है।

केवली-आहारक का अन्तर अजघन्योत्कर्ष से तीन समय का है। केवली-आहारक सयोगी-भवस्थकेवली होता है। उसका अनाहारकत्व तीन समय का ही है जो पहले बताया जा चुका है। केवली-आहारक का अन्तर यही तीन समय का है।

छद्मस्थ-अनाहारक का अन्तर जघन्य से दो समय कम क्षुल्लकभव है और उत्कर्ष से असख्येयकाल यावत् अगुल का असख्येय भाग है। इसकी स्पष्टता पहले की जा चुकी है। जितना छद्मस्थ का आहारककाल है, उतना ही छद्मस्थ-अनाहारक का अन्तर है।

सिद्धकेवली-अनाहारक सादि-अपर्यवसित होने से अतर नही है।

सयोगिभवस्थकेवलि-अनाहरक का अन्तर जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त है। क्योकि केवलि-समुद्घात करने के अनन्तर अन्तर्मुहूर्त मे ही शैलेशी-अवस्था हो जाती है। यहा भी जघन्यपद से उत्कृष्टपद विशेषाधिक समझना चाहिए।

अयोगीभवस्थकेवली-अनाहारक का अन्तर नही है। क्योकि अयोगी-अवस्था मे सब अनाहारक ही होते है। सिद्धो मे भी सादि-अपर्यवसित होने से अनाहारक का अन्तर नही है।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोडे अनाहारक हैं, क्योकि सिद्ध, विग्रहगतिसमापन्नक, समुद्घातगत-केवली और अयोगीकेवली ही अनाहारक हैं। उनसे आहारक असख्येयगुण है।

यहाँ शका हो सकती है कि सिद्धो से वनस्पतिजीव अनन्तगुण हैं और वे प्राय आहारक हैं तो अनन्तगुण क्यों नही कहा गया है? समाधान यह है कि प्रतिनिगोद का असख्येयभाग प्रतिसमय सदा विग्रहगति मे होता है और विग्रहगति मे जीव अनाहारक होते हैं। इसलिए आहारक असख्येयगुण ही घटित होते है, अनन्तगुण नहीं।

यहा वृत्ति मे क्षुल्लक भव के विषय मे जानकारी दी गई है। वह उपयोगी होने से यहा भी दी जा रही है।

क्षुल्लकभव—क्षुल्लक का अर्थ लघु या स्तोक है। सबसे छोटे भव (लघु आयु का सवेदनकाल) का ग्रहण क्षुल्लकभवग्रहण है। आवलिकाओ के मान से वह दो सौ छप्पन आवलिका का होता है। एक श्वासोच्छ्वास मे कुछ अधिक सत्रह क्षुल्लकभव होते है। एक मुहूर्त मे पैसठ हजार पाच सौ

---

१. कार्मणशरीरयोगी चतुर्थके पचमे तृतीये च।
समयत्रयेऽपि तस्माद् भवत्यनाहारको नियमात् ॥ —वृत्ति

छत्तीस (६५५३६) क्षुल्लकभव होते है ।[1]

एक मुहूर्त मे तीन हजार सात सौ तिहत्तर (३७७३) आनप्राण (श्वासोच्छ्वास) होते हैं ।[2] त्रैराशिक से एक उच्छ्वास मे सत्रह क्षुल्लकभव प्राप्त होते हैं। पंसठ हजार पाच सौ छत्तीस में तीन हजार सात सौ तिहत्तर का भाग देने से एक उच्छ्वास मे भवो की सख्या प्राप्त होती है। उक्त भाग देने से १७ भव और १३९४ शेष बचता है, जिसकी आवलिकाए कुछ अधिक ९४ होती हैं।

यदि हम एक आनप्राण मे आवलिकाओ की सख्या जानना चाहते हैं तो २५६ में १७ का गुणा करके उसमे ऊपर की ९४ आवलिकाए मिलानी चाहिए, तो ४४४६ आवलिकाए होती हैं। यदि एक मुहूर्त मे आवलिकाओ की सख्या जानना चाहते है तो इन ४४४६ एक श्वासोच्छ्वास की आवलिकाओ को एक मुहूर्त के श्वासोच्छ्वास ३७७३ से गुणा करने से १,६७,७४,७५८ आवलिका होती हैं। इसमे साधिक की २४५८ आवलिकाए मिलाने से १,६७,७७,२१६ आवलिकाए एक मुहूर्त मे होती हैं।[3]

अथवा मुहूर्त के ६५५३६ क्षुल्लकभवो को एक भव की २५६ आवलिकाओं से गुणा करने पर एक मुहूर्त मे आवलिकाओ की सख्या ज्ञात हो जाती है। इसलिए जो कहा जाता है कि एक उच्छ्वास-नि श्वास मे सख्येय आवलिकाए है, सो समीचीन ही है।

२३५. अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा--सभासगा य अभासगा य।

सभासए ण भंते ! सभासएत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्त। अभासए णं भंते ! ०? गोयमा ! अभासए दुविहे पण्णत्ते—साइए वा अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए । तत्थ णं जेसे साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण अणतकाल—अणंता उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ वणस्सइकालो ।

भासगस्स ण भंते ! केवइकालं अतर होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेणं अणंतकालं वणस्सइकालो । अभासगस्स साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। साइय-सपज्जवसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अतोमुहुत्त ।

अप्पाबहुयं--सव्वत्थोवा भासगा, अभासया अणंतगुणा ।

अहवा दुविहा सव्वजीवा ससरीरी य असरीरी य । असरीरी जहा सिद्धा। ससरीरी जहा असिद्धा। थोवा असरीरी, ससरीरी अणंतगुणा।

२३५ अथवा सर्व जीव दो प्रकार के हैं—सभाषक और अभाषक। भगवन् ! सभाषक, सभाषक के रूप मे कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य से एक समय, उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त ।

---

१ पन्नट्ठिसहस्साइ पचेव सया हवति छत्तीसा।
खुड्डागभवग्गहणा हवति अतोमुहुत्तम्मि ॥

२. तिन्नि सहस्सा सत्त य सयाइ तेवत्तरिं च ऊसासा।
एस मुहुत्तो भणिओ, सव्वेहिं अणतणाणीहिं ॥

३ एगा कोडी सत्तट्ठि लक्ख सत्तत्तरी सहस्सा य।
दोयसया सोलहिया आवलिया मुहुत्तम्मि ॥

भंते ! अभाषक, अभाषक रूप मे कितने समय रहता है ? गौतम ! अभाषक दो प्रकार के है—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित । इनमे जो सादि-सपर्यवसित अभाषक है, वह जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट मे अनन्त काल तक अर्थात् अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल तक अर्थात् वनस्पतिकाल तक ।

भगवन् ! भाषक का अन्तर कितना है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल ।

सादि-अपर्यवसित अभाषक का अन्तर नही है । सादि-सपर्यवसित का अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे भाषक हैं, अभाषक उनसे अनन्तगुण है ।

अथवा सब जीव दो प्रकार के हैं—सशरीरी और अशरीरी । अशरीरी की संचिट्ठणा आदि सिद्धो की तरह तथा सशरीरी की असिद्धो की तरह कहना चाहिए यावत् अशरीरी थोडे हैं और सशरीरी अनन्तगुण है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे भाषक और अभाषक की अपेक्षा से सब जीवो के दो भेद कहे गये हैं । जो बोल रहा है वह भाषक है और अन्य अभाषक है ।[1]

भाषक, भाषक के रूप मे जघन्य एक समय रहता है । भाषा द्रव्य के ग्रहण समय मे ही मरण हो जाने से या अन्य किसी कारण से भाषा-व्यापार से उपरत हो जाने से एक समय कहा गया है । उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त तक रहता है । इतने काल तक ही भाषा द्रव्य का निरन्तर ग्रहण और निसर्ग होता है । इसके बाद तथाविध जीवस्वभाव से वह अवश्य अभाषक हो जाता है ।

अभाषक दो प्रकार के है—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित । सादि-अपर्यवसित सिद्ध हैं और सादि-सपर्यवसित पृथ्वीकाय आदि है । जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक अभाषक रहता है, इसके बाद पुन भाषक हो जाता है । अथवा पृथ्वी आदि भव की जघन्य स्थिति इतने ही काल की है । उत्कर्ष से अभाषक, अभाषक रूप मे वनस्पतिकाल पर्यन्त रहता है । वह वनस्पतिकाल अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्रमार्गणा से अनन्त लोकाकाश के प्रदेशो का प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार करने पर उनके निर्लेप होने मे जितना काल लगता है, उतना काल है, यह काल असख्येय पुद्गलपरावर्त रूप है । इन पुद्गलपरावर्तों का प्रमाण आवलिका के असख्येयभागवर्ती समयो के बराबर है । वनस्पति मे इतने काल तक अभाषक रूप मे रह सकता है ।

अन्तरद्वार—भाषक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष से अनन्तकाल—वनस्पतिकाल है । अभाषक रहने का जो काल है, वही भाषक का अन्तर है । सादि-अपर्यवसित अभाषक का अन्तर नही है । क्योकि वह अपर्यवसित है । सादि-सपर्यवसित का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि भाषक का काल ही अभाषक का अन्तर है । भाषक का काल जघन्य एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त ही है । अल्पबहुत्वसूत्र स्पष्ट ही है ।

---

१. भाषमाणा भाषका इतरेऽभाषका । —वृत्ति

सशरीरी और अशरीरी की वक्तव्यता सिद्ध और असिद्धवत् जाननी चाहिए ।

२३६. अथवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—चरिमा चेव अचरिमा चेव ।

चरिमे णं भंते ! चरिमेत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! चरिमे अणाइए सपज्जवसिए । अचरिमे दुविहे पण्णत्ते—अणाइए वा अपज्जवसिए, साइए वा अपज्जवसिए । दोण्हंपि णत्थि अंतरं ।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा अचरिमा, चरिमा अणंतगुणा । (सेत्तं दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ।)

२३६ अथवा सर्व जीव दो प्रकार के है—चरम और अचरम ।

भगवन् ! चरम, चरमरूप मे कितने काल तक रहता है ?

गौतम ! चरम अनादि-सपर्यवसित है । अचरम दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित और सादि-अपर्यवसित । दोनो का अन्तर नही है । अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे अचरम हैं, उनसे चरम अनन्तगुण है । (यह सर्व जीवो की दो भेदरूप प्रतिपत्ति पूरी हुई ।)

विवेचन—चरम और अचरम के रूप मे सर्व जीवो के दो भेद इस सूत्र मे वर्णित हैं । चरम भव वाले भव्य विशेष जो सिद्ध होगे, वे चरम कहलाते हैं । इनसे विपरीत अचरम कहलाते हैं । ये अचरम हैं अभव्य और सिद्ध ।

कायस्थितिसूत्र मे चरम अनादि-सपर्यवसित है अन्यथा वह चरम नही कहा जा सकता । अचरमसूत्र मे अचरम दो प्रकार के है —अनादि-अपर्यवसित और सादि-अपर्यवसित । अनादि-अपर्यवसित-अचरम अभव्य जीव है और सादि-अपर्यवसित-अचरम सिद्ध हैं ।

अन्तरद्वार मे दोनो का अन्तर नही है । अनादि-सपर्यवसित-चरम का अन्तर नही है, क्योकि चरमत्व के जाने पर पुन चरमत्व सम्भव नही है । अचरम चाहे अनादि-अपर्यवसित हो, चाहे सादि-अपर्यवसित हो, उसका अन्तर नही है, क्योकि इनका चरमत्व होता ही नही ।

अल्पबहुत्वसूत्र मे सबसे थोडे अचरम है, क्योकि अभव्य और सिद्ध ही अचरम हैं । उनसे चरम अनन्तगुण है । सामान्य भव की अपेक्षा से यह कथन समझना चाहिए, अन्यथा अनन्तगुण नही घट सकता । जैसा कि मूल टीकाकार ने कहा है -"चरम-अनन्तगुण है । सामान्य भव्यो की अपेक्षा से यह समझना चाहिए । सूत्रो का विषय-विभाग दुर्लक्ष्य है ।[1]"

इस प्रकार सर्व जीव सम्बन्धी द्विविध प्रतिपत्ति पूरी हुई । इसमे कही गई द्विविध वक्तव्यता को सग्रहीत करनेवाली गाथा इस प्रकार है —

सिद्धसइंदियकाए जोए वेए कसायलेसा य ।
नाणुवओगाहारा भाससरीरी य चरमो य ।।

इसका अर्थ स्पष्ट ही है ।

१ "चरमा अनन्तगुणा , समान्यभव्यापेक्षमेतदिति भावनीय, दुर्लक्ष्य सूत्राणा विषयविभाग ।"

सर्वजीव-त्रिविध-वक्तव्यता

२३७. तत्थ णं जेते एवमाहंसु तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु तं जहा—सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी।

सम्मदिट्ठी णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! सम्मदिट्ठी दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—साइए वा अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ जेते साइए सपज्जवसिए, से जहन्नेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं।

मिच्छादिट्ठी तिविहे—साइए वा सपज्जवसिए, अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए। तत्थ जेते साइए-सपज्जवसिए से जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण अणंतकालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।

सम्मामिच्छादिट्ठी जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं।

सम्मदिट्ठिस्स अंतरं साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। साइयस्स सपज्जवसियस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसणं अणंतकालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं। मिच्छादिट्ठिस्स अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसणं छावट्ठि सागरोवमाइं साइरेगाइ। सम्मामिच्छादिट्ठिस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूण।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा सम्मामिच्छादिट्ठी, सम्मदिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छादिट्ठी अणतगुणा।

२३७ जो ऐसा कहते हैं कि सर्व जीव तीन प्रकार के हैं, उनका मतव्य इस प्रकार है—यथा सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि।

भगवन् ! सम्यग्दृष्टि काल से सम्यग्दृष्टि कब तक रह सकता है ?

गौतम ! सम्यग्दृष्टि दो प्रकार के हैं—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। जो सादि-सपर्यवसित सम्यग्दृष्टि हैं, वे जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से साधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकते हैं।

मिथ्यादृष्टि तीन प्रकार के हैं—सादि-सपर्यवसित, अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। इनमे जो सादि-सपर्यवसित है वे जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से अनन्तकाल तक जो यावत् देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है, मिथ्यादृष्टि रूप से रह सकते हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त तक रह सकता है।

सम्यग्दृष्टि के अन्तरद्वार मे सादि-अपर्यवसित का अतर नही है, सादि-सपर्यवसित का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है, जो यावत् अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है।

अनादि-अपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का अन्तर नही है, अनादि-सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का भी अन्तर नही है, सादि-सपर्यवसित का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है, जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है ।

अल्पबहुत्वद्वार मे सबसे थोडे सम्यग्मिथ्यादृष्टि है, उनसे सम्यग्दृष्टि अनन्तगुण हैं और उनसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुण हैं ।

विवेचन—सर्व जीव तीन प्रकार के है- सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि । इनका स्वरूप पहले बताया जा चुका है । यहा इनकी कायस्थिति (सचिट्ठणा), अन्तर और अल्पबहुत्व को लेकर विवेचना की गई है ।

कायस्थिति—सम्यग्दृष्टि दो प्रकार के है -सादि-अपर्यवसित (क्षायिक सम्यग्दृष्टि) और सादि-सपर्यवसित (क्षायोपशमिक आदि सम्यग्दर्शनी) । इनमे जो सादि-सपर्यवसित सम्यग्दृष्टि हैं, उनकी सचिट्ठणा (कायस्थिति) जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि विचित्र कर्मपरिणाम होने से इतने काल के पश्चात् कोई जीव मिथ्यात्व मे चला जा सकता है । उत्कर्ष से छियासठ सागरोपम तक वह रह सकता है । इसके बाद नियम मे क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन नही रहता ।

मिथ्यादृष्टि तीन प्रकार के है--अनादि-अपर्यवसित, अनादि-सपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित । इनमे जो सादि-सपर्यवसित है वह जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक रहता है । इतने काल के बाद कोई जीव पुन सम्यग्दर्शन पा सकता है । उत्कर्ष मे अनन्तकाल तक रह सकता है । यह अनन्तकाल कालमार्गणा मे अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है और क्षेत्रमार्गणा मे देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त है, क्योकि जिसने पहले एक बार भी सम्यक्त्व पा लिया हो, वह इतने काल के बाद पुन अवश्य सम्यग्दर्शन पा लेता है । पूर्व सम्यक्त्व के प्रभाव मे उसने ससार को परित्त कर लिया होता है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि उस रूप मे जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है, क्योकि स्वभावत मिश्रदृष्टि का इतना ही कालप्रमाण है । केवल जघन्य से उत्कृष्ट पद अधिक है ।

अन्तरद्वार—सादि-अपर्यवसित सम्यग्दृष्टि का अन्तर नही है, क्योकि वह अपर्यवसित है । सादि-सपर्यवसित सम्यग्दृष्टि का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि सम्यक्त्व से गिरकर कोई जीव अन्तर्मुहूर्त काल मे पुन सम्यक्त्व पा लेता है । उत्कर्ष से उसका अन्तर अनन्तकाल अर्थात् अपार्धपुद्गलपरावर्त है ।

अनादि-अपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का अन्तर नही है, क्योकि उसका मिथ्यात्व छूटता ही नही है । अनादि-सपर्यवसित मिथ्यात्व का भी अन्तर नही है, क्योकि छूटकर पुन. होने पर अनादित्व नही रहता ।

सादि-सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है, क्योकि सम्यग्दर्शन का काल ही मिथ्यादर्शन का प्राय अन्तर है । सम्यग्दर्शन का जघन्य और उत्कर्ष काल इतना ही है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि सम्यग्मिथ्यादर्शन से गिरकर कोई अन्तर्मुहूर्त मे फिर सम्यग्मिथ्यादर्शन पा लेता है । उत्कर्ष से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त का

अन्तर है। यदि सम्यग्मिथ्यादर्शन से गिरकर फिर सम्यग्मिथ्यादर्शन का लाभ हो तो नियम से इतने काल के बाद होता ही है, अन्यथा मुक्ति होती है ।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थाडे सम्यग्मिथ्यादृष्टि है, क्योकि तद्योग्य परिणाम थोडे काल तक रहते है और पृच्छा के समय वे अल्प ही प्राप्त होते है । उनसे सम्यग्दृष्टि अनन्तगुण है, क्योकि सिद्ध जीव भी सम्यग्दृष्टि हैं और वे अनन्त है । उनसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुण है, क्योकि वनस्पतिजीव सिद्धो से भी अन्ततगुण है और वे मिथ्यादृष्टि है ।

२३८. अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता—परित्ता अपरित्ता नोपरित्ता-नोअपरित्ता ।

परित्ते ण भते ! कालओ केवचिर होइ ? गोयमा ! परित्ते दुविहे पण्णत्ते—कायपरित्ते य संसारपरित्ते य । कायपरित्ते ण भते ! कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेण अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्ज काल जाव असखेज्जा लोगा ।

संसारपरित्ते ण भते ! ससारपरित्तेत्ति कालओ केवचिरं होइ ? जहन्नेण अंतोमुहुत्त उक्कोसेण अणतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्ट देसूण ।

अपरित्ते णं भंते० ? अपरित्ते दुविहे पण्णत्ते—कायअपरित्ते य ससारअपरित्ते य । कायअपरित्ते णं जहन्नेण अतोमुहुत्तं उक्कोसेण अणतं काल- वणस्सइकालो ।

ससारापरित्ते दुविहे पण्णत्ते -अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए ।

णोपरित्ते-णोअपरित्ते साइए अपज्जवसिए ।

कायपरित्तस्स जहन्नेण अतर अतोमुहुत्त उक्कोसेण वणस्सइकालो । संसारपरित्तस्स णत्थि अतर । कायपरित्तस्स जहन्नेण अतोमुहुत्त उक्कोसेण असखिज्ज काल पुढविकालो । संसारापरित्तस्स अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अतर । अणाइयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अतर । णोपरित्त-नोअपरित्तस्सवि णत्थि अतर ।

अप्पाबहुय—सव्वत्थोवा परित्ता, णोपरित्ता-नोअपरित्ता अणतगुणा, अपरित्ता अणतगुणा ।

२३८ अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के है-—परित्त, अपरित्त और नोपरित्त-नोअपरित्त ।

भगवन् ! परित्त, परित्त के रूप मे किनने काल तक रहता है ? गौतम ! परित्त दो प्रकार के है—कायपरित्त और ससारपरित्त ।

भगवन् ! कायपरित्त, कायपरित्त के रूप मे कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असख्येय काल तक यावत् असख्येय लोक ।

भते ! ससारपरित्त, ससारपरित्त के रूप मे कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल जो यावत् देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्तरूप है ।

भगवन् ! अपरित्त, अपरित्त के रूप मे कितने काल तक रहता है ? गौतम ! अपरित्त दो प्रकार के है—काय-अपरित्त और ससार-अपरित्त ।

भगवन् ! काय-अपरित्त, काय-अपरित्त के रूप मे कितने काल रहता है ? गौतम ! जघन्य से अतर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल तक रहता है ।

ससार-अपरित्त दो प्रकार के है—अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित ।

नोपरित्त-नोअपरित्त सादि-अपर्यवसित है । कायपरित्त का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल है । ससारपरित्त का अन्तर नही है । काय-अपरित्त का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असख्येयकाल अर्थात् पृथ्वीकाल है । अनादि-अपर्यवसित ससारापरित्त का अतर नही है । अनादि-सपर्यवसित ससारापरित्त का अन्तर नही है । अनादि-सपर्यवसित ससारापरित्त का भी अन्तर नही है । नोपरित्त-नोअपरित्त का भी अन्तर नही है । अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे परित्त है, नोपरित्त-नोअपरित्त अनन्तगुण हैं और अपरित्त अनन्तगुण है ।

विवेचन—अन्य विवक्षा से सर्व ससारी जीव तीन प्रकार के है—परित्त, अपरित्त और नोपरित्त-नोअपरित्त । परित्त का सामान्यतया अर्थ है सीमित । जिन्होने ससार को तथा साधारण वनस्पतिकाय को सीमित कर दिया है, वे जीव परित्त कहलाते है । इससे विपरीत अपरित्त है तथा सिद्धजीव नोपरित्त-नोअपरित्त है । इन तीनो प्रकार के जीवो की कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व का विचार इस सूत्र मे किया गया है ।

कायस्थिति—परित्त दो प्रकार के है—कायपरित्त और ससारपरित्त । कायपरित्त अर्थात् प्रत्येकशरीर । ससारपरित्त अर्थात् जिसका ससार-परिभ्रमणकाल अपार्धपुद्गलपरावर्त के अन्दर-अन्दर है ।

कायपरित्त जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक कायपरित्त रह सकता है । वह साधारणवनस्पति से परित्तो मे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर पुन साधारण मे चले जाने की अपेक्षा से है । उत्कर्ष से असख्येयकाल तक रह सकता है । यह असख्येयकाल असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्र से असख्येय लोको के आकाशप्रदेशो का प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार करने पर जितने समय मे वे निर्लेप हो जाये, उतने समय तक का है । अथवा यो कह सकते है कि पृथ्वीकाय आदि प्रत्येक-शरीरी का जितना सचिट्ठणकाल है, उतने काल तक रह सकता है । इसके पश्चात् नियम से साधारण रूप मे पैदा होता है ।

ससारपरित्त जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक उसी रूप मे रह सकता है । इसके बाद कोई अन्तकृत्-केवली होकर मोक्ष मे जा सकता है । उत्कर्ष से अनन्तकाल तक उसी रूप मे रह सकता है । वह अनन्तकाल कालमार्गणा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप होता है और क्षेत्र से अपार्धपुद्गल-परावर्त होता है । इसके बाद नियम से वह सिद्धि प्राप्त करता है । अन्यथा ससारपरित्तत्व का कोई मतलब नही रहता ।

अपरित्त दो प्रकार के हैं—काय-अपरित्त और ससार-अपरित्त । काय-अपरित्त साधारण-वनस्पति जीव हैं और ससार-अपरित्त कृष्णपाक्षिक जीव हैं ।

काय-अपरित्त जघन्य से अन्तर्मुहूर्त उसी रूप मे रह सकता है, तदनन्तर किसी भी प्रत्येक-शरीरी मे जा सकता है । उत्कर्ष से वह अनन्तकाल तक उसी रूप मे रह सकता है । यह अनन्तकाल वनस्पतिकाल है, जिसका स्पष्टीकरण पहले कालमार्गणा और क्षेत्रमार्गणा से किया जा चुका है ।

ससार-अपरित्त दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित, जो कभी मोक्ष मे नही जायेगा और अनादि-सपर्यवसित (भव्य विशेष) ।

नोपरित्त-नोअपरित्त सिद्ध जीव है। वह सादि-अपर्यवसित है, क्योकि वहा से प्रतिपात नही होता।

अन्तरद्वार—काय-परित्त का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। साधारणो मे अन्तर्मुहूर्त तक रहकर पुन प्रत्येकशरीरी मे आया जा सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल पूर्वोक्त वनस्पतिकाल समझना चाहिए। उतने काल तक साधारण रूप मे रह सकता है।

ससार-परित्त का अन्तर नही है। क्योकि ससार-परित्तत्व से छूटने पर पुन ससार-परित्तत्व नही होता तथा मुक्त का प्रतिपात नही होता।

काय-अपरित्त का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। प्रत्येक-शरीरो मे अन्तर्मुहूर्त तक रहकर पुन काय-अपरित्तो मे आना सभव है। उत्कर्ष से असख्येयकाल का अन्तर है। यह असख्येयकाल पृथ्वी काल है। इसका स्पष्टीकरण कालमार्गणा और क्षेत्रमार्गणा से पहले किया जा चुका है। पृथ्वी आदि प्रत्येकशरीरी भवो मे भ्रमणकाल उत्कर्ष से इतना ही है।

ससार-अपरित्तो मे जो अनादि-अपर्यवसित है, उनका अन्तर नही होता अपर्यवसित होने से और अनादि-सपर्यवसित का भी अन्तर नही होता, क्योकि ससार-अपरित्तत्व के जाने पर पुन ससार-अपरित्तत्व सभव नही है।

नोपरित्त-नोअपरित्त का भी अन्तर नही है, क्योकि वे सादि-अपर्यवसित होते है।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोडे परित्त हैं, क्योकि काय-परित्त और ससार-परित्त जीव थोडे है। उनसे नोपरित्त-नोअपरित्त अनन्तगुण हैं, क्योकि सिद्ध जीव अनन्त हैं। उनसे अपरित्त अनन्तगुण है, क्योकि कृष्णपाक्षिक अतिप्रभूत है।

२३९. अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—पज्जत्तगा, अपज्जत्तगा, नोपज्जत्तगा-नोअपज्जत्तगा। पज्जत्तगे णं भते!० ? जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेग। अपज्जत्तो णं भते० ? जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण अंतोमुहुत्त। नोपज्जत्त-नोअपज्जत्तए साइए अपज्जवसिए।

पज्जत्तगस्स अंतर जहन्नेण अंतोमुहुत्त उक्कोसेण अतोमुहुत्त। अपज्जत्तगस्स जहन्नेण अतोमुहुत्त उक्कोसेण सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेग। तइयस्स णत्थि अतर।

अप्पाबहुय—सव्वत्थोवा नोपज्जत्तग-नोअपज्जत्तगा, अपज्जत्तगा अणतगुणा, पज्जत्तगा सखिज्जगुणा।

२३९ अथवा सब जीव तीन तरह के है—पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक।

भगवन्! पर्याप्तक, पर्याप्तक रूप मे कितने समय तक रहता है? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व (दो सौ से नौ सौ सागरोपम) तक रह सकता है।

भगवन्! अपर्याप्तक, अपर्याप्तक के रूप मे कितने समय तक रह सकता है? गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त तक रह सकता है।

नोपर्याप्तक-नोग्रपर्याप्तक सादि-ग्रपर्यवसित है ।

भगवन् ! पर्याप्तक का ग्रन्तर कितना है ? गौतम ! जघन्य ग्रन्तर्मुहूर्त ग्रौर उत्कर्ष से भी ग्रन्तर्मुहूर्त है । ग्रपर्याप्तक का ग्रन्तर जघन्य ग्रन्तर्मुहूर्त ग्रौर उत्कृष्ट साधिक सागरोपशत-पृथक्त्व है । तृतीय नोपर्याप्तक-नोग्रपर्याप्तक का ग्रन्तर नही है ।

ग्रल्पबहुत्व मे सबसे थोडे नोपर्याप्तक-नोग्रपर्याप्तक है, उनसे ग्रपर्याप्तक ग्रनन्तगुण हैं, उनसे पर्याप्तक सख्येयगुण है ।

विवेचन—पर्याप्तक की कायस्थिति जघन्य ग्रन्तर्मुहूर्त है । जो ग्रपर्याप्तको से पर्याप्तक मे उत्पन्न होकर वहा ग्रन्तर्मुहूर्त रहकर फिर ग्रपर्याप्त मे उत्पन्न होने की ग्रपेक्षा से है । उत्कृष्ट काय-स्थिति दो सौ से लेकर नौ सौ सागरोपम से कुछ ग्रधिक है । इसके बाद नियम से ग्रपर्याप्तक रूप मे जन्म होता है । यह कथन लब्धि की ग्रपेक्षा से है, ग्रत ग्रपान्तराल मे उपपात ग्रपर्याप्तकत्व के होने पर भी कोई दोष नही है । ग्रपर्याप्त की कायस्थिति जघन्य ग्रौर उत्कर्ष से ग्रन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, क्योकि ग्रपर्याप्तलब्धि का इतना ही काल है । जघन्य से उत्कृष्ट पद ग्रधिक है । नोपर्याप्तक-नोग्रपर्याप्तक सिद्ध है । वे सादि-ग्रपर्यवसित है, ग्रत सदाकाल उसी रूप मे रहते है ।

पर्याप्तक का ग्रन्तर जघन्य ग्रौर उत्कृष्ट से ग्रन्तर्मुहूर्त है । क्योकि ग्रपर्याप्तकाल ही पर्याप्तक का ग्रन्तर है । ग्रपर्याप्तकाल जघन्य से ग्रौर उत्कर्ष से भी ग्रन्तर्मुहूर्त ही है । ग्रपर्याप्तक का जघन्य ग्रन्तर ग्रन्तर्मुहूर्त ग्रौर उत्कृष्ट ग्रन्तर साधिक सागरोपम-शतपृथक्त्व है । पर्याप्तक काल ही ग्रपर्याप्तक ग्रन्तर है ग्रौर पर्याप्तकाल जघन्य से ग्रन्तर्मुहूर्त ग्रौर उत्कर्ष से साधिक सागरो-पशमतपृथक्त्व ही है ।

नोपर्याप्त-नोग्रपर्याप्त का ग्रन्तर नही है, क्योकि वे सिद्ध है ग्रौर वे ग्रपर्यवसित है ।

ग्रल्पबहुत्वद्वार मे सबसे थोडे नोपर्याप्तक-नोग्रपर्याप्तक है, क्योकि सिद्ध जीव शेष जीवो की ग्रपेक्षा ग्रल्प है । उनसे ग्रपर्याप्तक ग्रनन्तगुण है, क्योकि निगोदजीवो मे ग्रपर्याप्तक ग्रनन्तानन्त सदैव लभ्यमान है । उनसे पर्याप्तक सख्येयगुण है, क्योकि सूक्ष्मो मे ग्रोघ से ग्रपर्याप्तको से पर्याप्तक सख्येयगुण हैं ।

२४० **अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—सुहुमा बायरा नोसुहुम-नोबायरा ।**

सुहुमे णं भते ! सुहुमेत्ति कालग्रो केवचिर होइ ? जहण्णेण अतोमुहुत्तं, उक्कोसेण असंखिज्जकाल पुढविकालो । बायरा जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण ग्रसंखिज्जकाल ग्रसंखिज्जाओ उस्सप्पिणी-ग्रोसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अगुलस्स असखेज्जइभागो । नोसुहुम-नोबायरे साइए ग्रपज्जवसिए ।

सुहुमस्स अतर बायरकालो । बायरस्स अंतर सुहुमकालो । तइयस्स नोसुहुम-नोबायरस्स अंतर णत्थि ।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा नोसुहुम-नोबायरा, बायरा अणंतगुणा, सुहुमा असंखेज्जगुणा ।

२४० ग्रथवा सर्व जीव तीन प्रकार के हैं—सूक्ष्म, बादर ग्रौर नोसूक्ष्म-नोबादर ।

भगवन् ! सूक्ष्म, सूक्ष्म के रूप में कितने समय तक रहता है । गौतम ! जघन्य से ग्रन्तर्मुहूर्त

और उत्कर्ष से असख्येयकाल अर्थात् पृथ्वीकाल तक रहता है । बादर, बादर के रूप मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्येयकाल तक रहता है । यह असख्येयकाल असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है कालमार्गणा से । क्षेत्रमार्गणा से अगुल का असख्येयभाग है ।

नोसूक्ष्म-नोबादर सादि-अपर्यवसित है । सूक्ष्म का अन्तर बादरकाल है और बादर का अन्तर सूक्ष्मकाल है । तीसरे नोसूक्ष्म-नोबादर का अन्तर नही है । अल्पबहुत्व मे सबसे थोड नोसूक्ष्म-नोबादर है, उनसे बादर अनन्तगुण है और उनस सूक्ष्म असख्ययगुण है ।

विवेचन सूक्ष्म और बादर को लेकर तोन प्रकार के सर्व जीव कहे है सूक्ष्म, बादर और नोसूक्ष्म-नाबादर । इन तीनो की कायस्थिति, अन्तर तथा अल्पबहुत्व इस सूत्र मे बताया है ।

कायस्थिति—सूक्ष्म की कायस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है । उसके बाद पुन बादरो मे उत्पत्ति हो सकती है । उत्कर्ष से कायस्थिति असख्ययकाल है । यह असख्येयकाल असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है कालमार्गणा से, क्षेत्रमार्गणा से असख्येय लोकाकाश के प्रदेशो के प्रति-समय एक-एक के अपहारमान से निर्लेप होने के काल के बराबर है । यही पृथ्वीकाल कहा जाता है ।

बादर की कायस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है । इसके बाद कोई जीव पुन सूक्ष्मो मे चला जाता है । उत्कर्ष से असख्येयकाल है । यह असख्येयकाल असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है कालमार्गणा से, क्षेत्रमार्गणा से अगुलासख्येयभाग है । अर्थात् अगुलमात्र क्षेत्र के असख्येयभागवर्ती आकाश-प्रदेशो के प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार किये जाने पर निर्लेप होने के काल के बराबर है । इतने समय के बाद ससारी जीव सूक्ष्मो मे नियमत उत्पन्न होता है ।

नोसूक्ष्म-नोबादर सिद्ध जीव है, सादि-अपर्यवसित होने से सदा उसी रूप मे बने रहते है ।

अन्तरद्वार—सूक्ष्म का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असख्येयकाल है । यह असख्येयकाल अगुलासख्येयभाग है । बादरकाल इतना ही है । बादर का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असख्येयकाल है । यह असख्येयकाल क्षेत्र से असख्येय लोकप्रमाण है । सूक्ष्मकाल इतना ही है ।

नोसूक्ष्म-नोबादर का अन्तर नही है, क्योकि वह सादि-अपर्यवसित है । अपर्यवसित होने से अन्तर नही होता ।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोडे नोसूक्ष्म-नोबादर है, क्योकि सिद्धजीव अन्य जीवो की अपेक्षा अल्प है । उनसे बादर अनन्तगुण है, क्योकि बादरनिगोद जीव सिद्धो से भी अनन्तगुण है, उनसे सूक्ष्म असख्येयगुण हैं क्योकि बादरनिगोदो से सूक्ष्मनिगोद असख्यातगुण हैं ।

२४१ **अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—सण्णी, असण्णी, नोसण्णी-नोअसण्णी ।**

सण्णी ण भते ! कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं । असण्णी जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं वणस्सइकालो । नोसण्णी-नोअसण्णी साइए अपज्जवसिए ।

सण्णिस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वणस्सइकालो । असण्णिस्स अंतर जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं, तइयस्स णत्थि अंतरं ।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा सण्णी, नोसण्णी-नोअसण्णी अणंतगुणा, असण्णी अणंतगुणा ।

२४१ अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के है सज्ञी, असज्ञी, नोसज्ञी-नोअसज्ञी ।

भगवन् ! सज्ञी, सज्ञी रूप मे कितने समय तक रहता है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से सागरोपमशतपृथक्त्व से कुछ अधिक समय तक रहता है । असज्ञी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल । नोसज्ञी-नोअसज्ञी सादि-अपर्यवसित है, अत सदाकाल रहता है ।

सज्ञी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है । असज्ञी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है । नोसज्ञी-नोअसज्ञी का अन्तर नही है ।

अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे सज्ञी है, उनसे नोसज्ञी-नोअसज्ञी अनन्तगुण है और उनसे असज्ञी अनन्तगुण है ।

विवेचन—सज्ञी, असज्ञी की विवक्षा से जीवो का त्रैविध्य इस सूत्र मे बताकर उनकी सचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व का कथन किया गया है ।

कायस्थिति (सचिट्ठणा)—सज्ञी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक उसी रूप मे रह सकता है । इसके बाद पुन कोई असज्ञियो मे जा सकता है । उत्कर्ष से साधिक दो सौ सागरोपम से नौ सौ सागरोपम तक रह सकता है । इसके बाद ससारी जीव अवश्य असज्ञी मे उत्पन्न होता है ।

असज्ञी की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । इसके बाद वह पुन सज्ञियो मे उत्पन्न हो सकता है । उत्कर्ष से अनन्तकाल तक असज्ञियो मे रह सकता है । यह अनन्तकाल वनस्पतिकाल है । कालमार्गणा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्रमार्गणा से अनन्तलोक तथा असख्येय पुद्‌गलपरावर्त रूप है । उन पुद्‌गलपरावर्तों का प्रमाण आवलिका के असख्येयभागवर्ती समयो के बराबर है ।

नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीव सिद्ध है । वे सादि-अपर्यवसित है । अपर्यवसित होने से सदा उसी रूप मे रहते हैं ।

अन्तरद्वार—सज्ञी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष से अनन्तकाल है, जो वनस्पतिकाल तुल्य है । असज्ञी का अवस्थानकाल जघन्य और उत्कर्ष से इतना ही है ।

असज्ञी का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है, क्योकि सज्ञी का अवस्थानकाल जघन्य-उत्कर्ष से इतना ही है ।

नोसज्ञी-नोअसज्ञी का अन्तर नही है, क्योकि वे सादि-अपर्यवसित है । अपर्यवसित होने से अन्तर नही होता ।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोडे सज्ञी है, क्योकि देव, नारक और गर्भव्युत्क्रान्तिक तिर्यच और मनुष्य ही सज्ञी हैं । उनसे नोसज्ञी-नोअसज्ञी अनन्तगुण है, क्योंकि वनस्पति को छोडकर शेष जीवो से सिद्ध अनन्तगुण हैं, उनसे असज्ञी अनन्तगुण है, क्योकि वनस्पतिजीव सिद्धों से अनन्तगुण हैं ।

२४२. अहवा सव्वजीवा तिविहा पण्णत्ता, त जहा - भवसिद्धिया अभवसिद्धिया, नोभवसिद्धिया-नोअभवसिद्धिया।

अणाइया सपज्जवसिया भवसिद्धिया, अणाइया अपज्जवसिया अभवसिद्धिया, साइयअपज्जवसिया नोभवसिद्धिया-नोअभवसिद्धिया। तिण्हपि नत्थि अतर। अप्पाबहुय--सव्वत्थोवा अभवसिद्धिया, णोभवसिद्धिया-णोअभवसिद्धिया अणतगुणा, भवसिद्धिया अणतगुणा।

२४२ अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के है -भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक।

भवसिद्धिक जीव अनादि-सपर्यवसित है। अभवसिद्धिक अनादि-अपर्यवसित है और उभयप्रतिषेधरूप सिद्ध जीव सादि-अपर्यवसित है। अत तीनो का अन्तर नही है। अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे अभवसिद्धिक है, उभयप्रतिषेधरूप सिद्ध उनसे अनन्तगुण है और भवसिद्धिक उनसे अनन्तगुण है।

विवेचन--भव्य-अभव्य को लेकर सर्वजीवो का त्रैविध्य यहा बताया है। जिनकी सिद्धि होने वाली है वे भव्य है, जिनकी सिद्धि कभी नही होगी, वे अभव्य है और जो भव्यत्व और अभव्यत्व के विशेषण से रहित है, वे सिद्धजीव नोभव्य-नोअभव्य है।

भवसिद्धिक जीव अनादि-सपर्यवसित है, अन्यथा वे भवसिद्धिक नही हो सकते। अभवसिद्धिक अनादि-अपर्यवसित है, अन्यथा वे अभवसिद्धिक नही हो सकते। नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक सादि-अपर्यवसित है, क्योकि सिद्धो का प्रतिपात नही होता। अतएव इनकी अवधि न होने से कायस्थिति सम्बन्धी प्रश्न नही है तथा इन तीनो का अन्तर भी नही घटता है, क्योकि भवसिद्धिकत्व जाने पर पुन भवसिद्धिकत्व असभव है। अभवसिद्धिक का भी अन्तर नही है, क्योकि वह अपर्यवसित होने से कभी नही छूटता। सिद्ध भी सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नही है। अल्पबहुत्वद्वार मे सबसे थोडे अभव्य है, क्योकि वे जघन्य युक्तानन्तक के तुल्य है। उभयप्रतिषेधरूप सिद्ध उनसे अनन्तगुण है, क्योकि अभव्यो से सिद्ध अनन्तगुण है और उनसे भवसिद्धिक अनन्तगुण है, क्योकि भव्य जीव सिद्धो से भी अनन्तगुण है।

२४३ अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा-- तसा, थावरा, नोतसा-नोथावरा।

तसे ण भते! कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण दो सागरोवमसहस्साइं साइरेगाइ। थावरस्स सचिट्ठणा वणस्सइकालो। णोतसा-नोथावरा साइ-अपज्जवसिया।

तसस्स अतर वणस्सइकालो। थावरस्स अतर दो सागरोवमसहस्साइं साइरेगाइ। णोतसथावरस्स णत्थि अतर। अप्पाबहुय सव्वत्थोवा तसा, नोतसा-नोथावरा अणतगुणा, थावरा अणंतगुणा।

से त तिविधा सव्वजीवा पण्णत्ता।

२४३ अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के है--त्रस, स्थावर और नोत्रस-नोस्थावर।

भगवन्! त्रस, त्रस के रूप मे कितने काल तक रहता है? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त

और उत्कृष्ट साधिक दो हजार सागरोपम तक रह सकता है। स्थावर, स्थावर के रूप मे वनस्पति-काल पर्यन्त रह सकता है। नोत्रस-नोस्थावर सादि-अपर्यवसित हैं।

त्रस का अन्तर वनस्पतिकाल है और स्थावर का अन्तर साधिक दो हजार सागरोपम है। नोत्रस-नोस्थावर का अन्तर नही है।

अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे त्रस हैं, उनसे नोत्रस-नोस्थावर (सिद्ध) अनन्तगुण हैं और उनसे स्थावर अनन्तगुण हैं।

यह सर्व जीवो की त्रिविध प्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

(यह सूत्र वृत्ति मे नही है। भवसिद्धिकादि सूत्र के बाद "से त तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता" कहकर समाप्ति की गई है।)

सर्वजीव-चतुर्विध-वक्तव्यता

२४४ तत्थ ण जेते एवमाहसु चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तं जहा—मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी, अजोगी।

मणजोगी णं भंते!०? जहन्नेणं एक्कं समय उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। एवं वइजोगीवि। कायजोगी जहन्नेणं अतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अजोगी साइए अपज्जवसिए।

मणजोगिस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेणं वणस्सइकालो। एवं वइजोगिस्सवि। कायजोगिस्स जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्त। अयोगिस्स णत्थि अंतरं। अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा मणजोगी, वइजोगी असंखेज्जगुणा, अजोगी अणंतगुणा, कायजोगी अणंतगुणा।

२४४ जो ऐसा कहते हैं कि सर्व जीव चार प्रकार के है, उनके कथनानुसार वे चार प्रकार ये हैं—मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी।

भगवन्! मनोयोगी, मनोयोगी रूप मे कितने समय तक रहता है? गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। वचनयोगी भी इतना ही रहता है। काययोगी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल तक रहता है। अयोगी सादि-अपर्यवसित है।

मनोयोगी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। वचनयोगी का भी अन्तर इतना ही है। काययोगी का जघन्य अन्तर एक समय का है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अयोगी का अन्तर नही है।

अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे मनोयोगी, उनसे वचनयोगी असंख्यातगुण, उनसे अयोगी अनन्तगुण और उनसे काययोगी अनन्तगुण है।

विवेचन—योग-अयोग की अपेक्षा से यहा सर्व जीवो के चार भेद कहे गये हैं—मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी। इन चारो की संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व प्रस्तुत सूत्र मे कहा गया है।

संचिट्ठणा—मनोयोगी जघन्य से एक समय तक मनोयोगी रह सकता है। उसके बाद द्वितीय समय में मरण हो जाने से या मनन से उपरत हो जाने की अपेक्षा से एक समय कहा गया है। जैसाकि

पहले भाषक के विषय में कहा गया है। विशिष्ट मनोयोग्य पुद्गल-ग्रहण की अपेक्षा यह समझना चाहिए। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त तक मनोयोगी रह सकता है। तथारूप जीवस्वभाव से इसके बाद वह नियम से उपरत हो जाता है। वचनयोगी से यहा मनोयोगरहित केवल वाग्योगवान द्वीन्द्रियादि अभिप्रेत हैं। वे जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त तक रह सकते हैं। यह भी विशिष्ट वाग्द्रव्यग्रहण की अपेक्षा से ही समझना चाहिए।

काययोगी से यहा तात्पर्य वाग्योग-मनोयोग से विकल एकेन्द्रियादि ही अभिप्रेत है। वे जघन्य से अन्तर्मुहूर्त उसी रूप मे रहते हैं। द्वीन्द्रियादि से निकल कर पृथ्वी आदि मे अन्तर्मुहूर्त रहकर फिर द्वीन्द्रियो मे गमन हो सकता है। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल तक उस रूप मे रहा जा सकता है।

अयोगी सिद्ध है। वे सादि-अपर्यवसित हैं, अत वे सदा उसी रूप मे रहते है।

अन्तरद्वार—मनोयोगी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। इसके बाद पुन विशिष्ट मनोयोग्य पुद्गलो का ग्रहण सभव है। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है। इतने काल तक वनस्पति मे रहकर पुन मनोयोगियो में आगमन सभव है।

इसी तरह वाग्योगी का जघन्य और उत्कर्ष अन्तर भी जान लेना चाहिए।

काययोगी का जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अतर अन्तर्मुहूर्त कहा है। यह कथन औदारिककाययोग की अपेक्षा से कहा गया है। क्योकि दो समय वाली अपान्तरालगति मे एक समय का अन्तर है। उत्कर्ष से अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। यह कथन परिपूर्ण औदारिकशरीरपर्याप्ति की परिसमाप्ति को अपेक्षा से है। वहा विग्रह समय लेकर औदारिकशरीरपर्याप्ति की समाप्ति तक अन्तर्मुहूर्त का अन्तर है। अत उत्कर्ष से अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा गया है। वृत्तिकार ने इस कथन के समर्थन मे चूर्णिकार के कथन को उद्धृत किया है। साथ ही वृत्तिकार ने कहा है कि ये सूत्र विचित्र अभिप्राय से कहे गये होने से दुर्लक्ष्य हैं, अतएव सम्यक् सम्प्रदाय से इन्हे समझा जाना चाहिए। वह सम्यक् सम्प्रदाय इसी रूप मे है, अतएव वह युक्तिसगत है। सूत्राभिप्राय को समझे बिना अनुपपत्ति की उद्भावना नही करनी चाहिए। केवल सूत्रो की सगति करने मे यत्न करना चाहिए।[1]

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोडे मनोयोगी है, क्योकि देव, नारक, गर्भज तिर्यक् पचेन्द्रिय और मनुष्य ही मनोयोगी है। उनसे वचनयोगी असख्येयगुण हैं, क्योकि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असज्ञी पचेन्द्रिय वाग्योगी हैं। उनसे अयोगी अनन्तगुण हैं, क्योकि सिद्ध अनन्त है। उनसे काययोगी अनन्तगुण हैं, क्योकि सिद्धो से वनस्पति जीव अनन्तगुण है।

२४५. अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—इत्थिवेयगा पुरिसवेयगा नपुंसक-वेयगा अवेयगा।

इत्थिवेयगा णं भंते ! इत्थिवेयएत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! (एगेण आएसेणं०)

---

१ न चैतत् स्वमनीषिका विजृम्भित, यत आह चूर्णिकृत्—"कायजोगिस्स जह एक्क समय, कह ? एकसामयिक-विग्रहगतस्य, उक्कोस अतोमुहुत्त, विग्रहसमयादारभ्य औदारिकशरीरपर्याप्तकस्य यावदेव अन्तर्मुहूर्तम् दृष्टव्यम्। सूत्राणि ह्यमूनि विचित्राभिप्रायतया दुर्लक्ष्याणीति सम्यक्सम्प्रदायादवसातव्यानि। सम्प्रदायश्च यथोक्तस्वरूपमिति न काचिदनुपपत्ति। न च सूत्राभिप्रायमज्ञात्वा अनुपपत्तिरुद्भावनीया।

पलियसयं बसुत्तरं अट्ठारस चोद्दस पलियपुहुत्तं समओ जहण्णेणं। पुरिसवेयस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं। नपुंसगवेयस्स जहन्नेण एक्कं समयं उक्कोसेणं अणंतं काल वणस्सइकालो।

अवेयए दुविहे पण्णत्ते, साइए वा अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। से जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेण अंतोमुहुत्त।

इत्थिवेयस्स अंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। पुरिसवेयस्स जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेण वणस्सइकालो। नपुंसगवेयस्स जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं। अवेयगो जह हेट्ठा। अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा पुरिसवेवगा, इत्थिवेदगा संखेज्जगुणा, अवेवगा अणंतगुणा, नपुंसकवेदगा अणंतगुणा।

२४५ अथवा सर्व जीव चार प्रकार के है—स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक और अवेदक।

भगवन्! स्त्रीवेदक, स्त्रीवेदक रूप मे कितने समय तक रह सकता है? गौतम! विभिन्न अपेक्षा से (पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक) एक सौ दस, एक सौ, अठारह, चौदह पल्योपम तक तथा पल्योपमपृथक्त्व रह सकता है। जघन्य से एक समय तक रह सकता है।

पुरुषवेदक, पुरुषवेदक के रूप मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व तक रह सकता है। नपुंसकवेदक जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक रह सकता है। अवेदक दो प्रकार के हैं—सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। सादि-सपर्यवसित अवेदक जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रह सकता है।

स्त्रीवेदक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। पुरुषवेद का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। नपुंसकवेद का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है। अवेदक का जैसा पहले कहा गया है, अन्तर नही है।

अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे पुरुषवेदक, उनसे स्त्रीवेदक सख्येयगुण, उनसे अवेदक अनन्तगुण और उनसे नपुंसकवेदक अनन्तगुण है।

विवेचन—वेद की अपेक्षा से सर्व जीवो के चार प्रकार बताये है—स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक और अवेदक। इनकी सचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व यहा प्रतिपादित है।

संचिट्ठणा—स्त्रीवेदक, स्त्रीवेदक के रूप मे कितना रह सकता है? इस प्रश्न मे उत्तर मे पाच अपेक्षाओ से पाच तरह का कालमान बताया गया है। यह विषय विस्तार से त्रिविध प्रतिपत्ति में पहले कहा जा चुका है, फिर भी सक्षेप मे यहा दे रहे है। स्त्रीवेद की कायस्थिति एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट ११० पल्योपम की है। कोई स्त्री उपशमश्रेणी मे वेदत्रय के उपशमन से अवेदकता का अनुभव करती हुई पुन: उस श्रेणी से पतित होती हुई कम-से-कम एक समय तक स्त्रीवेद के उदय को भोगती है। द्वितीय समय मे वह मरकर देवो मे उत्पन्न हो जाती है, वहा उसको पुरुषवेद प्राप्त हो जाता है। अत: उसके स्त्रीवेद का काल एक समय का घटित होता है।

कोई जीव पूर्वकोटि की आयुवाली मनुष्य या तिर्यंच स्त्री के रूप मे पाच या छह भवो तक उत्पन्न हो, फिर वह ईशानकल्प मे पचपन पल्योपम प्रमाण की आयुवाली अपरिगृहीता देवी की पर्याय मे उत्पन्न होवे, वहाँ से पुन पूर्वकोटि आयुवाली मनुष्य या तिर्यंच स्त्री के रूप मे उत्पन्न होकर दूसरी बार ईशान देवलोक मे पचपन पल्योपम की आयुवाली अपरिगृहीता देवी मे उत्पन्न हो, इस तरह पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक ११० पल्योपम तक वह जीव स्त्रीपर्याय मे लगातार रह सकता है।

दूसरी अपेक्षा से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक सौ पल्योपम की कायस्थिति स्त्रीवेद की इस प्रकार घटित होती है—कोई पूर्वकोटि आयुवाली स्त्री पाच छह बार तिर्यंच या मनुष्य स्त्री के भवो मे उत्पन्न होकर सौधर्म देवलोक की ५० पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति वाली अपरिगृहीता देवी के रूप में उत्पन्न होकर पुन मनुष्य-तिर्यच मे उत्पन्न होकर दुबारा ५० पल्योपम की आयु वाली अपरिगृहीता देवी के रूप मे उत्पन्न हो। इस तरह पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक सौ पल्योपम की स्त्रीवेद की कायस्थिति होती है।

तीसरी अपेक्षा से पूर्व विशेषणो वाली स्त्री ईशान देवलोक मे उत्कृष्ट स्थितिवाली परिगृहीता देवी के रूप मे नौ पल्योपम तक रहकर मनुष्य या तिर्यच मे उसी तरह रहकर दुबारा ईशान देवलोक मे नौ पल्योपय की स्थितिवाली परिगृहीता देवी बने, इस अपेक्षा से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक १८ पल्योपम की स्थिति बनती है।

चौथी अपेक्षा से पूर्वोक्त विशेषण वाली स्त्री सौधर्म देवलोक की सात पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति वाली परिगृहीता देवी के रूप मे रहकर, मनुष्य या तिर्यच का पूर्ववत् भव करके दुबारा सौधर्म देवलोक मे उत्कृष्ट सात पल्योपम की स्थितिवाली परिगृहीता देवी बने, इस अपेक्षा से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक १४ पल्योपम की कायस्थिति होती है।

पाचवी अपेक्षा से स्त्रीवेद की कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक पल्योपम की है। वह इस प्रकार है—कोई जीव पूर्वकोटि की आयुवाली तिर्यच या मनुष्य स्त्रियो मे सात भव तक उत्पन्न होकर आठवे भव मे देवकुरु आदिको की तीन पल्योपम की स्थिति वाली स्त्रियो मे उत्पन्न हो और वहा से मरकर सौधर्म देवलोक मे जघन्यस्थिति वाली देवी के रूप मे उत्पन्न हो, ऐसी स्थिति मे पूर्वकोटिपृथक्त्वाधिक पल्योपमपृथक्त्व की कायस्थिति घटित होती है।

पुरुषवेद की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है। स्त्रीवेद आदि से निकलकर अन्तर्मुहूर्त काल पुरुषवेद मे रहकर पुन स्त्रीवेद को प्राप्त करने की अपेक्षा से जघन्यकायस्थिति बनती है। देव, मनुष्य और तिर्यंच भवो मे भ्रमण करने से पुरुषवेद की कायस्थिति उत्कृष्ट से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व होती है। इतने समय बाद पुरुषवेद का रूपान्तर होता ही है।

यहा शका की जा सकती है कि जैसे स्त्रीवेद, नपु सकवेद की जघन्य कायस्थिति एक समय की कही है। (उपशमश्रेणी मे वेदोपशमन के पश्चात् एक समय तक स्त्रीवेद या नपु सकवेद के अनुभवन को लेकर) वैसे पुरुषवेद की एक समय की कायस्थिति जघन्यरूप से क्यो नही कही गई है। समाधान मे कहा गया है कि उपशमश्रेणी मे जो मरता है, वह पुरुषवेद मे ही उत्पन्न होता है, अन्य

वेद में नही। अत जन्मान्तर मे भी सातत्य रूप से गमन की अपेक्षा एकसमयता घटित नही होती है।

नपुंसकवेद की जघन्यस्थिति एक समय की है। स्त्रीवेद के अनुसार युक्ति कहनी चाहिए। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल पर्यन्त कायस्थिति है।

अवेदक दो प्रकार के है—सादि-अपर्यवसित (क्षीणवेद वाले) और सादि-सपर्यवसित (उपशान्तवेद वाले)। सादि-सपर्यवसित अवेदक की कायस्थिति जघन्य से एक समय है, क्योकि द्वितीय समय मे मरकर देवगति मे पुरुषवेद सम्भव है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त की कायस्थिति है। तदनन्तर मरकर पुरुषवेद वाला हो जाता है या श्रेणी से गिरता हुआ जिस वेद से श्रेणी पर चढा, उस वेद का उदय हो जाने से वह सवेदक हो जाता है।

अन्तरद्वार—स्त्रीवेद का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। क्योकि वेद का उपशम होने पर पुन अन्तर्मुहूर्त काल मे वेद का उदय हो सकता है। अथवा स्त्रीपर्याय से निकलकर पुरुषवेद या नपुंसकवेद मे अन्तर्मुहूर्त रहकर पुन स्त्रीपर्याय मे आया जा सकता है। उत्कर्ष से अन्तर वनस्पतिकाल है।

पुरुषवेद का अन्तर जघन्य एक समय है। क्योकि उपशमश्रेणी मे पुरुषवेद का उपशम होने पर एक समय के अनन्तर मरकर पुरुषत्व रूप मे उत्पन्न होना सम्भव है। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल अन्तर है।

नपुंसकवेद का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। युक्ति स्त्रीवेद मे कथित अन्तर की तरह जानना चाहिए। उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व का अन्तर है। इसके बाद ससारी जीव अवश्य नपुंसक रूप मे उत्पन्न होता है।

अवेदक मे सादि-अपर्यवसित का अन्तर नही होता, अपर्यवसित होने से। सादि-सपर्यवसित अवेदक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि अतर्मुहूर्त के बाद पुन श्रेणी का आरम्भ सम्भव है। उत्कर्ष से अनन्तकाल। यह अनन्तकाल कालमार्गणा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप है तथा क्षेत्रमार्गणा से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त है। इतने काल के पश्चात् जिसने पहले श्रेणी की है वह पुन श्रेणी का आरम्भ करता ही है।

अल्पबहुत्वद्वार– सबसे थोडे पुरुषवेदक हैं, क्योकि देव-मनुष्य-तिर्यंचगति मे वे अल्प ही हैं। उनसे स्त्रीवेदक सख्यातगुण है। क्योकि तिर्यंचगति मे स्त्रिया पुरुषो से तिगुनी हैं, मनुष्यगति मे सत्ताईस गुणी है और देवगति मे बत्तीस गुणी है। उनसे अवेदक अनन्तगुण हैं, क्योकि सिद्ध अनन्त हैं। उनसे नपुंसकवेदक अनन्तगुण है, क्योकि वनस्पतिजीव सिद्धो से अनन्तगुण है।

२४६. अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी अवधिदंसणी केवलदंसणी।

चक्खुदंसणी णं भंते! ० ? जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण सागरोवमसहस्सं साइरेगं।

अचक्खुदंसणी दुविहे पण्णत्ते—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए।

ओहिदंसणी जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं दो छावट्ठिसागरोपमाणं साइरेगाओ।

केवलदसणी साइए अपज्जवसिए।

चक्खुदंसणिस्स अंतरं जहन्नेण अंतोमुहुत्त उक्कोसेणं वणस्सइकालो। अचक्खुदंसणिस्स दुविहस्स नत्थि अंतरं। ओहिदंसणिस्स जहन्नेणं अतोमुहुत्त उक्कोसेणं वणस्सइकालो। केवलदंसणिस्स णत्थि अंतरं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा ओहिदसणी, चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा, केवलदंसणी अणंतगुणा, अचक्खुदंसणी अणंतगुणा।

२४६ अथवा सर्व जीव चार प्रकार के है—चक्षुर्दर्शनी, अचक्षुर्दर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी।

भगवन्! चक्षुर्दर्शनी काल से लगातार कितने समय तक चक्षुर्दर्शनी रह सकता है?

गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक एक हजार सागरोपम तक रह सकता है।

अचक्षुर्दर्शनी दो प्रकार के है—अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित।

अवधिदर्शनी लगातार जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से साधिक दो छियासठ सागरोपम तक रह सकता है।

केवलदर्शनी सादि-अपर्यवसित है।

चक्षुर्दर्शनी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। दोनो प्रकार के अचक्षुर्दर्शनी का अन्तर नही है। अवधिदर्शनी का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष वनस्पतिकाल है। केवलदर्शनी का अन्तर नही है।

अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे अवधिदर्शनी, उनसे चक्षुर्दर्शनी असख्येयगुण है, उनसे केवलदर्शनी अनन्तगुण है और उनसे अचक्षुर्दर्शनी भी अनन्तगुण है।

विवेचन—दर्शन को लेकर सब जीवो का चातुर्विध्य इस सूत्र मे बताकर उनकी कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व प्रतिपादित किया गया है।

कायस्थिति—चक्षुर्दर्शनी, चक्षुर्दर्शनीरूप मे जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक रह सकता है। अचक्षुर्दर्शनी से निकलकर चक्षुर्दर्शनी मे अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर पुन अचक्षुर्दर्शनी मे जा सकता है। उत्कर्ष से साधिक एक हजार सागरोपम तक रह सकता है।

अचक्षुर्दर्शनी दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित जो कभी सिद्धि प्राप्त नही करेगा और अनादि-सपर्यवसित भव्य जीव जो सिद्धि प्राप्त करेगा। अनादि और अपर्यवसित की कालमर्यादा नही है।

अवधिदर्शनी उसी रूप मे जघन्य से एक समय तक रहता है। अवधिदर्शन प्राप्त करने के पश्चात् कोई एक समय मे ही मरण को प्राप्त हो जाय अथवा मिथ्यात्व मे जाने से या दुष्ट अध्यवसाय के कारण अवधि से प्रतिपात हो सकता है। उत्कर्ष से साधिक दो छियासठ (६६+६६) सागरोपम तक रह सकता है। इसकी युक्ति इस प्रकार है—

कोई विभगज्ञानी तिर्यंच या मनुष्य नीचे सप्तम पृथ्वी मे उत्पन्न हुआ । वहा तेतीस सागरोपम तक रहा । उद्वर्तनाकाल नजदीक आने पर सम्यक्त्व को पाकर पुन: उसे छोड़ देता है और विभंगज्ञान सहित पूर्वकोटि आयु वाले तिर्यंच मे उत्पन्न हुआ और वहा से पुन. विभंगसहित ही अध.सप्तमी पृथ्वी मे उत्पन्न हुआ और तेतीस सागरोपम तक स्थित रहा । उद्वर्तनाकाल मे थोडी देर सम्यक्त्व पाकर उसे छोड देता है और विभंग सहित पुन पूर्वकोटि आयु वाले तिर्यंच मे उत्पन्न होता है । इस प्रकार दो बार सप्तम पृथ्वी मे उत्पन्न होने तथा दो बार तिर्यंच मे उत्पन्न होने से साधिक ६६ सागरोपम काल होता है । विग्रह मे विभंग का प्रतिषेध होने से अविग्रह रूप से उत्पन्न होना कहना चाहिए ।[1]

उक्त कथन मे जो बीच-बीच मे थोडी देर के लिए सम्यक्त्व होने की बात कही गई है, वह इसलिए कि विभगज्ञान देशोन तेतीस सागरोपम पूर्वकोटि अधिक तक ही उत्कर्ष से रह सकता है ।[2] अतएव बीच मे सम्यक्त्व का थोडी देर के लिए होना कहा गया है ।

उक्त रीति से साधिक एक ६६ सागरोपम तक रहने के बाद वह विभगज्ञानी अपतित विभग की स्थिति मे ही मनुष्यत्व पाकर सम्यक्त्व पूर्वक संयम की आराधना करके विजयादि विमानो मे दो बार उत्पन्न हो तो दूसरे ६६ सागरोपम तक वह अवधिदर्शनी रहा । अवधिदर्शन तो अवधिज्ञान और विभगज्ञान मे तुल्य ही होता है । इस अपेक्षा से अवधिदर्शनी दो छियासठ सागरोपम तक उस रूप मे रह सकता है ।

केवलदर्शनी सादि-अपर्यवसित है, अत: कालमर्यादा नही है ।

अन्तरद्वार—चक्षुदर्शनी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । इतने काल का अचक्षुदर्शन का व्यवधान होकर पुन चक्षुर्दर्शनी हो सकता है । उत्कर्ष से अन्तर वनस्पतिकाल है ।

अनादि-अपर्यवसित अचक्षुर्दर्शन का अन्तर नही है । अनादि-सपर्यवसित का भी अतर नही है । अचक्षुर्दर्शनित्व के चले जाने पर फिर अचक्षुर्दर्शनित्व नही होता, जिसके घातिकर्म क्षीण हो गये हो, उसका प्रतिपात नही होता ।

अवधिदर्शनी का जघन्य अन्तर एक समय का है । प्रतिपात के अनन्तर समय मे ही पुन उसका लाभ हो सकता है । कही-कही अन्तर्मुहूर्त ऐसा पाठ है । इतने व्यवधान के बाद पुन उसकी प्राप्ति हो सकती है । उक्त पाठ निर्मूल नही है, क्योकि मूल टीकाकार ने भी मतान्तर के रूप मे उसका उल्लेख किया है । उत्कर्ष से अवधिदर्शनी का अन्तर वनस्पतिकाल है । इतने व्यवधान के बाद पुन. अवश्य अवधिदर्शन होता है । अनादि मिथ्यादृष्टि को भी होने मे कोई विरोध नही है । ज्ञान तो सम्यक्त्व सहित ही होता है, किन्तु दर्शन, सम्यक्त्वसहित ही हो ऐसा नही है ।

केवलदर्शनी सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नही है ।

अल्पबहुत्वद्वार—अवधिदर्शनी सबसे थोडे है, क्योकि वह देव, नारक और कतिपय गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य को ही होता है । उनसे चक्षुर्दर्शनी असख्येयगुण है, क्योकि सम्मूर्छिम तिर्यक् पचेन्द्रिय और चतुरिन्द्रियो को भी वह होता है । उनसे केवलदर्शनी अनन्तगुण है, क्योकि सिद्ध अनन्त हैं । उनसे अचक्षुर्दर्शनी अनन्तगुण हैं, क्योकि एकेन्द्रियो के भी अचक्षुर्दर्शन होता है ।

---

१. विभगणाणी पचेंदिय तिरिक्खजोणिया मणुया य आहारगा, नो अनाहारगा ।

२. "विभगणाणी जहण्णेण एक्क समय, उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ देसूणाए पुव्वकोडिए अब्भहियाइ त्ति" ।

२४७. अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—संजया असंजया संजयासंजया नोसंजया-नोअसंजया-नोसंजयासंजया।

संजए णं भंते! ० ? जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। असंजया जहा अण्णाणी। संजयासंजए जहन्नेणं [अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। नोसंजय-नोअसंजय-नोसंजयासंजए साइए अपज्जवसिए। संजयस्स सजयासजयस्स दोण्हवि अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अवड्ढं पोग्गलपरियट्ट देसूणं। असंजयस्स आदि दुवे णत्थि अंतरं। साइयस्स सपज्ज-वसियस्स जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। चउत्थगस्स णत्थि अंतरं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा संजया, सजयासजया असखेज्जगुणा, णोसंजय-णोअसंजय-णोसंजया-संजया अणंतगुणा, असंजया अणंतगुणा।

सेत्तं चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता।

२४७. अथवा सर्व जीव चार प्रकार के है—संयत, असयत, सयतासयत और नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत।

भगवन्! सयत, सयतरूप मे कितने काल तक रहता है?

गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक रहता है। असयत का कथन अज्ञानी की तरह कहना। सयतासयत जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि। नोसयत-नोअसयत-नोसंयतासंयत सादि-अपर्यवसित है।

सयत और संयतासयत का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त है। असंयतो के तीन प्रकारो मे से आदि के दो प्रकारो मे अन्तर नही है। सादि-सपर्यवसित असयत का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है। चौथे नोसयत-नोअसयत-नोसयतासंयत का अन्तर नही है।

अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे संयत है, उनसे सयतासयत असंख्येयगुण है, उनसे नोसंयत-नोअसयत-नोसंयतासंयत अनन्तगुण है और उनसे असयत अनन्तगुण है। इस प्रकार सर्व जीवो की चतुर्विध प्रतिपत्ति पूरी हुई।

विवेचन—सयत, असयन को लेकर सर्व जीवो के चार प्रकार इस सूत्र मे बताकर उनकी कायस्थिति, अन्तर तथा अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

सर्व जीव चार प्रकार के हैं—१ सयत, २. असंयत, ३. संयतासंयत और ४. नोसंयत-नोअसंयत-नोसयतासंयत।

कायस्थिति—सयत, संयत के रूप मे जघन्य एक समय तक रह सकता है। सर्वविरति परिणाम के अनन्तर समय मे किसी का मरण भी हो सकता है, इस अपेक्षा से जघन्य एक समय कहा गया है। उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि तक रह सकता है।

असंयत तीन प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित, अनादि-सपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। अनादि-अपर्यवसित असंयत वह है जो कभी संयम नही लेगा। अनादि-सपर्यवसित असंयत वह है जो

संयम लेगा और उसी प्राप्त सयम से सिद्धि प्राप्त करेगा। सादि-सपर्यवसित असयत वह है, जो सर्व-विरति या देशविरति से परिभ्रष्ट हुआ है। आदि दो की अनादि और अपर्यवसित होने से कालमर्यादा नही है, सादि-सपर्यवसित असंयत जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। इसके बाद पुन कोई सयत हो सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल तक जो अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप (कालमार्गणा से) है और क्षेत्रमार्गणा से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है।

संयतासयत की कायस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। सयतासयतत्व की प्राप्ति बहुत सारे भंगो से होती है, फिर भी उसका जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तो है ही। उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि है। बालकाल मे उसका अभाव होने से देशोनता जाननी चाहिए।

नोसयत-नोअसयत-नोसयतासंयत सिद्ध है। वे सादि-अपर्यवसित हैं। सदा उस रूप मे रहते हैं।

अन्तरद्वार—सयत का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। इतने काल के असयतत्व से पुन कोई सयतत्व मे आ सकता है। उत्कर्ष से अन्तर अनन्तकाल है, जो क्षेत्र से देशोन पुद्गलपरावर्त रूप है। जिसने पहले सयम पाया है, वह इतने काल के व्यवधान के बाद नियम से संयम लाभ करता है।

अनादि-अपर्यवसित असयत का अन्तर नही है।

अनादि-सपर्यवसित असयत का भी अन्तर नही है। सादि-सपर्यवसित असयत का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि है। असयतत्व का व्यवधान रूप सयतकाल और सयतासंयतकाल उत्कर्ष से इतना ही है।

सयतासंयत का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। क्योकि उससे गिरकर कोई पुन इतने काल मे सयतासयत हो सकता है। उत्कर्ष से सयत की तरह कहना चाहिए।

नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत सिद्ध हैं। वे सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नही है। अपर्यवसित होने से सदा उस रूप मे रहते है।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोडे सयत है, क्योकि वे सख्येय कोटि-कोटि प्रमाण है। उनसे सयता-सयत असख्येयगुण है, क्योकि असख्येय तिर्यंच देशविरति वाले हैं। उनसे त्रितयप्रतिषेध रूप सिद्ध अनन्तगुण है और उनसे असयत अनन्तगुण हैं, क्योंकि सिद्धो से वनस्पतिजीव अनन्तगुण हैं।

सर्वजीव-पञ्चविध-वक्तव्यता

२४८. तत्थ जेते एवमाहंसु पचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तं जहा—कोहकसाई माणकसाई मायाकसाई लोभकसाई अकसाई।

कोहकसाई माणकसाई मायाकसाई णं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। लोभकसाई जहण्णेणं एक्कं समय उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। अकसाई दुविहे जहा हेट्ठा।

कोहकसाई-माणकसाई-मायाकसाई णं अंतर जहण्णेणं एक्क समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। लोहकसाइस्स अतर जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण अंतोमुहुत्तं। अकसाई तहा जहा हेट्ठा।

अप्पाबहुयं—अकसाइणो सव्वत्थोवा, माणकसाई तहा अणंतगुणा। कोहे माया लोभे विसेस-हिया मुणेयव्वा।

२४८. जो ऐसा कहते है कि पांच प्रकार के सर्व जीव हैं, उनके अनुसार वे पाच भेद इस प्रकार हैं—क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी।

क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त तक उस रूप में रहते हैं।

लोभकषायी जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक उस रूप मे रह सकता है।

अकषायी दो प्रकार के है (जैसा कि पहले कहा है) सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। सादि-सपर्यवसित जघन्य एक समय, उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त तक उस रूप मे रह सकता है।

क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त है। लोभकषायी का अतर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अतर्मुहूर्त है। अकषायी के विषय मे जैसा पहले कहा गया है, वैसा ही समझना।

अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे अकषायी है, उनसे मानकषायी अनन्तगुण है, उनसे क्रोधकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी क्रमश. विशेषाधिक जानना चाहिए।

विवेचन—कषाय-अकषाय की विवक्षा से सर्व जीवो के पाच प्रकार इस तरह है—क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी। इनकी कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व इस प्रकार है—

कायस्थिति—क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी की कायस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त है। क्योकि कहा गया है कि क्रोधादि का उपयोगकाल अन्तर्मुहूर्त है।[1] लोभकषायी जघन्य से एक समय तक उस रूप मे रहता है। यह कथन उपशमश्रेणी से गिरते समय लोभकषाय के उदय होने के प्रथम समय के अनन्तर समय मे मरण हो जाने की अपेक्षा से है। मरण के समय किसी के क्रोधादि का उदय सम्भव है। क्रम से गिरना मरणाभाव की स्थिति मे होता है, मरण मे नही। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त की कायस्थिति है।

अकषायी दो प्रकार के है—सादि-अपर्यवसित (केवली) और सादि-सपर्यवसित (उपशान्त-कषाय)। सादि-सपर्यवसित अकषायी की कायस्थिति जघन्य से एक समय है, द्वितीय समय मे मरण होने से क्रोधादि का उदय होने से सकषायत्व की प्राप्ति हो सकती है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि उपशान्तमोहगुणस्थान का काल इतना ही है। अन्य आचार्यों का कथन है कि जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त ही कहना चाहिए, क्योंकि ऐसा वृद्धप्रवाद है कि लोभोपशम के लिए प्रवृत्त का अन्तर्मुहूर्त से पहले मरण नही होता। यह कथन सूत्रकार के अभिप्राय से भी युक्त लगता है, क्योकि उन्होने आगे चलकर लोभकषायी की कायस्थिति जघन्य और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त कही है।

अन्तरद्वार—क्रोधकषायी का अन्तर जघन्य एक समय है, क्योकि उपशमसमय के अनन्तर मरण होने से पुन किसी के उसका उदय हो सकता है, उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त है। इसी तरह मानकषायी और मायाकषायी का भी अन्तर कहना चाहिए। लोभकषायी का जघन्य से भी और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त का अन्तर है, केवल जघन्य से उत्कृष्ट बृहत्तर है।

---

१. क्रोधाद्युपयोगकालो अन्तर्मुहूर्तमितिवचनात्।

सादि-अपर्यवसित अकषायी का अन्तर नही है। सादि-सपर्यवसित अकषायी का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। इतने काल के बाद पुन श्रेणीलाभ हो सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल है, जो क्षेत्र से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त है। पूर्व-अनुभूत अकषायित्व की इतने काल मे पुनः नियम से प्राप्ति होती ही है।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोडे अकषायी, क्योकि सिद्ध ही अकषायी है। उनसे मानकषायी अनन्तगुण है, क्योकि निगोद-जीव सिद्धो से अनन्तगुण है। उनसे क्रोधकषायी विशेषाधिक है, क्योकि क्रोधकषाय का उदय चिरकालस्थायी है, उनसे मायाकषायी विशेषाधिक है और उनसे लोभकषायी विशेषाधिक है, क्योकि माया और लोभ का उदय चिरतरकाल स्थायी है।

२४९ अहवा पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—णेरइया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा सिद्धा। सचिट्ठणतराणि जह हेट्ठा भणियाणि।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा मणुस्सा, णेरइया असंखेज्जगुणा, देवा असखेज्जगुणा, सिद्धा अणतगुणा, तिरिया अणतगुणा।

सेत्त पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता।

२४९ अथवा सब जीव पाच प्रकार के है—नैरयिक, तिर्यक्योनिक, मनुष्य, देव और सिद्ध। सचिट्ठणा और अन्तर पूर्ववत् कहना चाहिए। अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे मनुष्य, उनसे नैरयिक असख्येयगुण, उनसे देव असख्येयगुण, उनसे सिद्ध अनन्तगुण और उनसे तिर्यग्योनिक अनन्तगुण है।

इनकी कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व पहले कहा जा चुका है।

इस तरह पचविध सर्वजीवप्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

सर्वजीव-षड्विध-वक्तव्यता

२५० तत्थ ण जेते एवमाहंसु छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, त जहा— आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी अण्णाणी।

आभिणिबोहियणाणी ण भते! आभिणिबोहियणाणित्ति कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जहण्णेण अतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइं साइरेगाइं, एवं सुयणाणीवि।

ओहिणाणी ण भते! ०? जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइं साइरेगाइं।
मणपज्जवणाणी ण भते! ०? जहन्नेण एक्कं समयं उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।
केवलणाणी ण भंते०!? साइए अपज्जवसिए।

अण्णाणिणो तिविहा पण्णत्ता, त जहा—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ साइए सपज्जवसिए जहन्नेणं अंतो० उक्को० अणंतकालं अवड्ढ पुग्गलपरियट्टं देसूण।

अंतरं—आभिणिबोहियणाणिस्स जह० अंतो०, उक्को० अणंतं कालं अवड्ढं पुग्गलपरियट्टं देसूणं। एवं सुयणाणिस्स ओहिणाणिस्स मणपज्जवणाणिस्स अंतरं। केवलणाणिणो णत्थि अंतरं। अण्णाणिस्स साइयपज्जवसियस्स जह० अंतो०, उक्को० छावट्ठि सागरोवमाइं साइरेगाइं।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणिणो, ओहिणाणिणो असंखेज्जगुणा, आभिणिबोहिय-णाणिणो सुयणाणिणो विसेसाहिया सट्ठाणे दोवि तुल्ला, केवलणाणिणो अणंतगुणा, अण्णाणिणो अणंतगुणा।

अहवा छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदिया बेंदिया तेंदिया चउरिंदिया पचेंदिया अणिंदिया। संचिट्ठणा तहा हेट्ठा।

अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा पचेंदिया, चउरिंदिया विसेसाहिया, तेइंदिया विसेसाहिया, बेइंदिया विसेसाहिया, अणिंदिया अणंतगुणा, एगिंदिया अणंतगुणा।

२५० जो ऐसा कहते है कि सब जीव छह प्रकार के हैं, उनका प्रतिपादन ऐसा है—सब जीव छह प्रकार के है, यथा—आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्यायज्ञानी, केवलज्ञानी और अज्ञानी।

भगवन्! आभिनिबोधिकज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी के रूप मे कितने समय तक लगातार रह सकता है?

गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से साधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकता है। इसी प्रकार श्रुतज्ञानी के लिये भी समझना चाहिए।

अवधिज्ञानी उसी रूप मे कितने समय तक लगातार रह सकता है? गौतम! जघन्य एक समय और उत्कर्ष से साधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकता है।

भगवन्! मन पर्यायज्ञानी उसी रूप मे कितने समय तक रह सकता है? गौतम! जघन्य एक समय और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि तक रह सकता है।

भगवन्! केवलज्ञानी उसी रूप मे कितने समय तक रहता है? गौतम! केवलज्ञानी सादि-अपर्यवसित है।

अज्ञानी तीन तरह के है—१ अनादि-अपर्यवसित, २ अनादि-सपर्यवसित और ३ सादि-सपर्यवसित। इनमे जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल तक जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है।

आभिनिबोधिकज्ञानी का अन्तर जघन्य अतर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल, जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है। इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मन पर्यायज्ञानी का अन्तर कहना चाहिए। केवलज्ञानी का अन्तर नहीं है।

सादि-सपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर जघन्य अतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है।

अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे मन पर्यायज्ञानी है, उनसे अवधिज्ञानी असख्येयगुण हैं, उनसे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी विशेषाधिक है और दोनो स्वस्थान मे तुल्य है। उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुण हैं और उनसे अज्ञानी अनन्तगुण हैं।

अथवा सर्व जीव छह प्रकार के है—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय। इनकी कायस्थिति और अन्तर पूर्वकथनानुसार कहना चाहिए।

अल्पबहुत्व मे—सबसे थोडे पचेन्द्रिय, उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अनिन्द्रिय अनन्तगुण और उनसे एकेन्द्रिय अनन्त-गुण है।

विवेचन--ज्ञानी और अज्ञानी की अपेक्षा से सर्व जीव के छह भेद इस प्रकार बताये है—१ आभिनिबोधिकज्ञानी (मतिज्ञानी), २ श्रुतज्ञानी, ३ अवधिज्ञानी, ४ मन पर्यायज्ञानी, ५ केवल-ज्ञानी, ६ अज्ञानी। इनकी सचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व इस सूत्र मे वर्णित है। वह इस प्रकार है--

संचिट्ठणा (कायस्थिति)—आभिनिबोधिकज्ञानी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक लगातार उस रूप मे रह सकता है। क्योकि जघन्य से सम्यक्त्वकाल इतना ही है। उत्कर्ष से साधिक छियासठ सागरोपम तक रह सकता है। यह विजयादि मे दो बार जाने की अपेक्षा समझना चाहिये। श्रुतज्ञानी की कायस्थिति भी इतनी ही है, क्योकि आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान दोनो अविनाभूत है। कहा गया है कि जहा आभिनिबोधिकज्ञान है वहा श्रुतज्ञान है और जहा श्रुतज्ञान है वहा आभिनिबोधिकज्ञान है। ये दोनो अन्योन्य-अनुगत है।[1] अवधिज्ञानी की कार्यस्थिति जघन्य से एक समय है। यह एकसमयता या तो अवधिज्ञान होने के अनन्तर समय मे मरण हो जाने से अथवा प्रतिपात से मिथ्यात्व मे जाने से (विभगपरिणत होने से) जाननी चाहिए। उत्कर्ष से साधिक छियासठ सागरोपम की है, जो मतिज्ञानी की तरह जाननी चाहिए। मन पर्यायज्ञानी की कायस्थिति जघन्य एक समय है, क्योकि द्वितीय समय मे मरण होने से प्रतिपात हो सकता है। उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि है। क्योकि चारित्रकाल उत्कर्ष से भी इतना ही है। केवलज्ञानी सादि-अपर्यवसित है। अत उस भाव का कभी त्याग नही होता।

अज्ञानी तीन प्रकार के है—अनादि-अपर्यवसित, अनादि-सपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। इनमे जो सादि-सपर्यवसित है, उसकी कायस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि उसके बाद कोई सम्यक्त्व पाकर पुन ज्ञानी हो सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल है जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है, क्योकि ज्ञानित्व से परिभ्रष्ट होने के बाद इतने काल के अन्तर से अवश्य पुन. ज्ञानी बनता ही है।

अन्तरद्वार—आभिनिबोधिकज्ञानी का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। परिभ्रष्ट होने के इतने काल के बाद पुन वह आभिनिबोधिकज्ञानी हो सकता है। उत्कर्ष से अन्तर देशोन अपार्धपुद्गल-परावर्तकाल है। इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मन पर्यायज्ञानी का अन्तर भी जानना चाहिए। केवलज्ञानी का अन्तर नही है, क्योकि वह सादि-अपर्यवसित है।

अनादि-अपर्यवसित अज्ञानी का तथा अनादि-सपर्यवसित अज्ञानी का अन्तर नही है, क्योकि अपर्यवसित और अनादि होने से। सादि-सपर्यवसित का जघन्य अन्तर अतर्मुहूर्त है। क्योकि इतने काल मे वह पुन ज्ञानी से अज्ञानी हो सकता है। उत्कर्ष से अन्तर साधिक छियासठ सागरोपम है।

---

१ 'जत्थ आभिणिबोहियनाण तत्थ सुयणाण, जत्थ सुयणाण तत्थ आभिणिबहियनाण, दोवि एयाइ अण्णोण्ण-मणुगयाइ' इति वचनात्।

अल्पबहुत्वद्वार--सबसे थोडे मन पर्यायज्ञानी है, क्योकि मन पर्यायज्ञान केवल विशिष्ट चारित्रवालो को ही होता है।[1] उनसे अवधिज्ञानी असख्यातगुण है, क्योकि देवो और नारको को भी अवधिज्ञान होता है। उनसे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनो विशेषाधिक है तथा ये स्वस्थान मे परस्पर तुल्य हैं। उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुण है, क्योकि केवलज्ञानी सिद्ध अनन्त है। उनसे अज्ञानी अनन्त है, क्योकि अज्ञानी वनस्पतिकायिक जीव सिद्धो से भी अनन्तगुण हैं।

अथवा इन्द्रिय और अनिन्द्रिय की विवक्षा से सर्व जीव छह प्रकार के कहे गये है--एकेन्द्रिय यावत् पचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय। अनिन्द्रिय सिद्ध है। इनकी कायस्थिति, अतर और अल्पबहुत्व पूर्व मे कहा जा चुका है।

२५१ अहवा छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा--ओरालियसरीरी वेउव्वियसरीरी आहारगसरीरी तेयगसरीरी कम्मगसरीरी असरीरी।

ओरालियसरीरी ण भते! कालओ केवच्चिरं होइ? जहन्नेण खुड्डाग भवग्गहणं दुसमयऊण उक्कोसेण असंखिज्ज काल जाव अंगुलस्स असखेज्जइभागं। वेउव्वियसरीरी जहन्नेण एक्क समयं उक्कोसेणं तेत्तोस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं। आहारगसरीरी जहन्नेणं अतो० उक्को० अंतोमुहुत्त। तेयगसरीरी दुविहे पण्णत्ते--अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए। एवं कम्मगसरीरोवि। असरीरी साइए-अपज्जवसिए।

अतरं ओरालियसरीरस्स जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं अतोमुहुत्तमब्भहियाइ। वेउव्वियसरीरस्स जह० अंतो० उक्को० अणंतकालं वणस्सइकालो। आहारगस्स सरीरस्स जह० अतो० उक्को० अणंतकाल जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्ट देसूणं। तेयगसरीरस्स कम्मसरीरस्स य दोण्हवि णत्थि अंतरं।

अप्पाबहुय--सव्वत्थोवा आहारगसरीरी, वेउव्वियसरीरी असंखेज्जगुणा, ओरालियसरीरी असंखेज्जगुणा, असरीरी अणतगुणा, तेयाकम्मसरीरी दोवि तुल्ला अणतगुणा।

सेत्त छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता।

२५१ अथवा सर्व जीव छह प्रकार के है--औदारिकशरीरी, वैक्रियशरीरी, आहारकशरीरी, तेजसशरीरी, कार्मणशरीरी और अशरीरी।

भगवन्! औदारिकशरीरी लगातार कितने समय तक रह सकता है?

गौतम! जघन्य से दो समय कम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कर्ष से असख्येयकाल तक। यह असख्येयकाल अगुल के असख्यातवे भाग के आकाशप्रदेशो के अपहारकाल के तुल्य है। वैक्रियशरीरी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रह सकता है। आहारकशरीरी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त तक ही रह सकता है। तेजसशरीरी दो प्रकार के है--अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। इसी तरह कार्मणशरीरी भी दो प्रकार के हैं। अशरीरी सादि-अपर्यवसित है।

---

१ 'त सजयस्स सव्वप्पमायरहियस्स विविधरिद्धिमतो' इति वचनात्।

औदारिकशरीर का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है। वैक्रियशरीर का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है, जो वनस्पतिकालतुल्य है। आहारकशरीर का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है, जो देशोन अपार्धपुद्गल-परावर्त रूप है। तेजस-कार्मण-शरीरी का अन्तर नही है।

अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे आहारकशरीरी, वैक्रियशरीरी उनसे असंख्यातगुण, उनसे औदारिक-शरीरी असंख्यातगुण हैं, उनसे अशरीरी अनन्तगुण हैं और उनसे तेजस-कार्मणशरीरी अनन्तगुण है और ये स्वस्थान मे दोनो तुल्य हैं।

इस प्रकार षड्विध सर्वजीवप्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

विवेचन—शरीर-अशरीर को लेकर सर्व जीव छह प्रकार के हैं—औदारिकशरीरी, वैक्रिय-शरीरी, आहारकशरीरी, तेजसशरीरी, कार्मणशरीरी और अशरीरी। इनकी कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व इस प्रकार है—

कायस्थिति—औदारिकशरीर उस रूप मे लगातार जघन्य से दो समय कम क्षुल्लकभव तक रह सकता है। विग्रहगति मे आदि के दो समय मे कार्मणशरीरी होने से दो समय कम कहा है। उत्कर्ष से असख्येयकाल तक रह सकता है। इतने काल तक अविग्रह से उत्पाद सम्भव है। यह असख्येयकाल अगुल के असख्यातवे भागवर्ती आकाश-प्रदेशो को प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार करने पर जितने समय मे वे निर्लेप हो जाये, उतने काल के बराबर है।

वैक्रियशरीरी जघन्य से एक समय तक उसी रूप मे रहता है। विकुर्वणा के अनन्तर समय मे ही किसी का मरण सम्भव है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रहता है। कोई चारित्रसम्पन्न सयति वैक्रियशरीर करके अन्तर्मुहूर्त जीकर स्थितिक्षय से अविग्रह द्वारा अनुत्तरविमानो मे उत्पन्न हो सकता है, इस अपेक्षा से जानना चाहिए।

आहारकशरीरी जघन्य से और उत्कर्ष से भी अन्तर्मुहूर्त तक ही उस रूप मे रह सकता है।

तेजसशरीरी और कार्मणशरीरी दो-दो प्रकार के है—अनादि-अपर्यवसित (ये कभी मुक्त नही होगा) और अनादि-सपर्यवसित (मुक्तिगामी)। ये दोनो अनादि और अपर्यवसित होने से कालमर्यादा रहित है। अशरीरी सादि-अपर्यवसित है. अत सदा उस रूप मे रहते है।

अन्तरद्वार—औदारिकशरीरी का अन्तर जघन्य से एक समय है। वह दो समयवाली अपान्त-राल गति मे होता है, प्रथम समय मे कार्मणशरीरी होने से। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है। यह उत्कृष्ट वैक्रियकाल है।

वैक्रियशरीरी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। एक बार वैक्रिय करने के बाद इतने व्यवधान पर दुबारा वैक्रिय किया जा सकता है। मानव और देवो मे ऐसा होता है। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल का अन्तर स्पष्ट ही है।

आहारकशरीरी का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। एक बार करने के बाद इतने व्यवधान से पुन. किया जा सकता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल, जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप है। तेजस-कार्मणशरीर का अन्तर नही है।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोडे आहारकशरीरी है, क्योकि ये अधिक से अधिक दो हजार से नौ हजार तक ही होते हैं। उनसे वैक्रियशरीरी असख्येयगुण है, क्योकि देव, नारक, गर्भज तिर्यच पचेन्द्रिय, मनुष्य और वायुकाय वैक्रियशरीरी हैं। उनसे औदारिकशरीरी असख्येयगुण है। निगोदो मे अनन्तजीवो का एक ही औदारिकशरीर होने से असख्यगुणत्व ही घटित होता है, अनन्तगुण नही। जैसा कि मूल टीकाकार ने कहा—औदारिकशरीरियो से अशरीरी अनन्तगुण है, सिद्धो के अनन्त होने से, औदारिकशरीरी शरीर की अपेक्षा असख्येय हैं।[1]

औदारिकशरीरियो से अशरीरी अनन्तगुण है, क्योकि सिद्ध अनन्त है। उनसे तेजस-कार्मणशरीरी अनन्तगुण है, क्योकि निगोदो मे तेजस-कार्मणशरीर प्रत्येक जीव के अलग-अलग है और वे अनन्तगुण हैं। तेजस और कार्मणशरीर परस्पर अविनाभावी हैं और परस्पर तुल्य है।

इस प्रकार षड्विध सर्वजीवप्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

सर्वजीव-सप्तविध-वक्तव्यता

२५२. तत्थ ण जेते एवमाहंसु सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहसु, तं जहा--पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया तसकाइया अकाइया।

संचिट्ठणतरा जहा हेट्ठा।

अप्पाबहुय—सव्वत्थोवा तसकाइया, तेउकाइया असंखेज्जगुणा, पुढविकाइया विसेसाहिया, आउकाइया विसेसाहिया, वाउकाइया विसेसाहिया, सिद्धा (अकाइया) अणंतगुणा, वणस्सइकाइया अणतगुणा।

२५२ जो ऐसा कहते है कि सब जीव सात प्रकार के हैं, वे ऐसा प्रतिपादन करते है, यथा—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक।

इनकी सचिट्ठणा और अतर पहले कहे जा चुके है।

अल्पबहुत्व इस प्रकार है—सबसे थोडे त्रसकायिक, उनसे तेजस्कायिक असख्यातगुण, उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक, उनसे अप्कायिक विशेषाधिक, उनसे वायुकायिक विशेषाधिक, उनसे अकायिक अनन्तगुण और उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुण है। इनका स्पष्टीकरण पहले किया जा चुका है।

२५३ अहवा सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, त जहा—कण्हलेस्सा नीललेस्सा काउलेस्सा तेउलेस्सा पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सा अलेस्सा।

कण्हलेस्से ण भते! कण्हलेस्सेत्ति कालओ केवचिर होइ? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं अतोमुहुत्तमब्भहियाइ। णीललेस्से णं जहण्णेण अतोमुहुत्त उक्कोसेण दससागरोवमाइ पलिओवमस्स असखेज्जइभागमब्भहियाइ। काउलेस्से णं जह० अतो० उक्को० तिण्णि सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइ। तेउलेस्से ण जह० अतो० उक्को० दोण्णि

१ आह च मूलटीकाकार—औदारिकशरीरिभ्योऽशरीरा अनन्तगुणा सिद्धानामनन्तत्वात्, औदारिकशरीरिणा च शरीरापेक्षयाऽसख्येयत्वादिति।

सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं। पम्हलेस्से णं जह० अंतो० उक्को० दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं। सुक्कलेस्से णं भंते! ०? जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं। अलेस्से णं भंते! ०? साइए अपज्जवसिए।

कण्हलेसस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! जहन्नेणं अंतो० उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं। एवं नीललेसस्सवि, काउलेसस्सवि। तेउलेसस्स णं भंते! अंतरं कालओ०? जहन्नेणं अंतो० उक्को० वणस्सइकालो। एवं पम्हलेसस्सवि सुक्कलेसस्सवि, दोण्हवि एवमंतरं। अलेसस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

एएसि णं भंते! जीवाणं कण्हलेसाणं नीललेसाणं काउलेसाणं तेउलेसाणं पम्हलेसाणं सुक्कलेसाणं अलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा०? गोयमा! सव्वत्थोवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा संखेज्जगुणा, तेउलेस्सा संखेज्जगुण, अलेस्सा अणंतगुणा, काउलेस्सा अणंतगुणा, नीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया।

सेत्त सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता।

२५३ अथवा सर्व जीव सात प्रकार के कहे गये हैं—कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले, कापोतलेश्या वाले, तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले, शुक्ललेश्या वाले और अलेश्य।

भगवन्! कृष्णलेश्या वाला, कृष्णलेश्या वाले के रूप में काल से कितने समय तक रह सकता है? गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रह सकता है।

भगवन्! नीललेश्या वाला उस रूप मे कितने समय तक रह सकता है, गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पल्योपम का असख्येयभाग अधिक दस सागरोपम तक रह सकता है। कापोतलेश्या वाला जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पल्योपमासंख्येयभाग अधिक तीन सागरोपम रहता है। तेजोलेश्या वाला जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से पल्योपमासख्येयभाग अधिक तीन सागरोपम तक रह सकता है। पद्मलेश्या वाला जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से पल्योपमासख्येयभाग अधिक दस सागरोपम तक रहता है। शुक्ललेश्या वाला जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रह सकता है। अलेश्य जीव सादि-अपयवसित है, अत सदा उसी रूप में रहते है।

भगवन्! कृष्णलेश्या का अन्तर कितना है? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम का है। इसीतरह नीललेश्या, कापोतलेश्या का भी जानना चाहिए। तेजोलेश्या का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसीप्रकार पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या—दोनो का यही अन्तर है।

भगवन्! अलेश्य का अन्तर कितना है? गौतम! अलेश्य जीव सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नही है।

भगवन्! इन कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले और अलेश्यो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

गौतम ! सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले, उनसे पद्मलेश्या वाले संख्यातगुण, उनसे तेजोलेश्या वाले संख्यातगुण, उनसे अलेश्य अनंतगुण, उनसे कापोतलेश्या वाले अनंतगुण, उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में छह लेश्या वाले और एक अलेश्य यों सर्व जीव के सात प्रकार बताये हैं । उनकी कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

कायस्थिति—कृष्णलेश्या लगातार जघन्य से अन्तर्मुहूर्त रहती है, क्योंकि तिर्यंच-मनुष्यो में कृष्णलेश्या अन्तर्मुहूर्त तक रहती है । उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रहती है । देव और नारक पाश्चात्यभवगत चरम अन्तर्मुहूर्त और अग्रेतनभवगत अवस्थित प्रथम अन्तर्मुहूर्त तक अवस्थित लेश्या वाले होते हैं । अध सप्तमपृथ्वी के नारक कृष्णलेश्या वाले हैं और तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले है । उनके पाश्चात्यभव का अन्तर्मुहूर्त और अग्रेतनभव का एक अन्तर्मुहूर्त यो दो अन्तर्मुहूर्त होते है । लेकिन अन्तर्मुहूर्त के असख्येय भेद होने से उनका एक ही अन्तर्मुहूर्त मे समावेश हो जाता है । इस अपेक्षा से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट कायस्थिति कृष्णलेश्या की घटित होती है ।

नीललेश्या की जघन्य कायस्थिति एक अन्तर्मुहूर्त है, युक्ति पूर्ववत् है । उत्कर्ष से पल्योपम का असख्येयभाग अधिक दस सागरोपम की है । यह धूमप्रभापृथ्वी के प्रथम प्रस्तर के नैरयिक, जो नीललेश्या वाले है, और इतनी स्थिति वाले है, उनकी अपेक्षा से है । पाश्चात्य और अग्रेतन भव के क्रमश चरम और आदिम अन्तर्मुहूर्त पल्योपम के असख्येयभाग मे समाविष्ट हो जाते हैं, अतएव अलग से नही कहे है ।

कापोतलेश्या की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । युक्ति पूर्ववत् है । उत्कर्ष से पल्योपमासंख्येयभाग अधिक तीन सागरोपम की है । यह बालुकप्रभा के प्रथम प्रस्तर के नारको की अपेक्षा से है । वे कपोतलेश्या वाले और इतनी स्थिति वाले हैं ।

तेजोलेश्या की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । युक्ति पूर्ववत् है । उत्कर्ष से पल्योपमासंख्येयभाग अधिक दो सागरोपम है । यह ईशानदेवो की अपेक्षा से है ।

पद्मलेश्या की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । युक्ति पूर्ववत् है । उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक दस सागरोपम है । यह ब्रह्मलोकदेवो की अपेक्षा से है ।

शुक्ललेश्या की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त । युक्ति पूर्ववत् है । उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है । यह अनुत्तरदेवो की अपेक्षा से है । वे शुक्ललेश्या वाले और इतनी स्थिति वाले है ।

अन्तरद्वार—कृष्णलेश्या का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, क्योकि तिर्यंच मनुष्यो की लेश्या का परिवर्तन अन्तर्मुहूर्त मे हो जाता है । उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम है, क्योकि शुक्ललेश्या का उत्कृष्टकाल कृष्णलेश्या के अन्तर का उत्कृष्टकाल है । इसी प्रकार नीललेश्या और कापोतलेश्या का भी जघन्य और उत्कर्ष अन्तर जानना चाहिए । तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष अन्तर वनस्पतिकाल है । अलेश्यो का अन्तर नही है, क्योकि वे अपर्यवसित है ।

अल्पबहुत्वद्वार—सबसे थोडे शुक्ललेश्या वाले है, क्योकि लान्तक आदि देव, पर्याप्त गर्भज कतिपय पचेन्द्रिय तिर्यच और मनुष्यो मे ही शुक्ललेश्या होती है। उनसे पद्मलेश्या वाले सख्येयगुण है, क्योकि सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक में सब देव और प्रभूत पर्याप्त गर्भज तिर्यंच और मनुष्यों मे पद्मलेश्या होती है। यहा शका हो सकती है कि लान्तक आदि देवो से सनत्कुमारादि कल्पत्रय के देव असख्यातगुण हैं, तो शुक्ललेश्या से पद्मलेश्या वाले असख्यातगुण होने चाहिए, सख्येयगुण क्यो कहा ? समाधान दिया गया है कि जघन्यपद मे भी असख्यात सनत्कुमारादि कल्पत्रय के देवो की अपेक्षा से असख्येयगुण पचेन्द्रिय तिर्यचो मे शुक्ललेश्या होती है। अत पद्मलेश्या वाले शुक्ललेश्या वालो से सख्यातगुण ही प्राप्त होते हैं। उनसे तेजोलेश्या वाले सख्येयगुण हैं, क्योकि उनसे सख्येयगुण तिर्यक् पचेन्द्रियो, मनुष्यो और भवनपति व्यन्तर ज्योतिष्क तथा सौधर्म-ईशान देवलोक के देवो मे तेजोलेश्या पायी जाती है। उनसे अलेश्य अनन्तगुण हैं, क्योकि सिद्ध अनन्त है। उनसे कापोतलेश्या वाले अनन्तगुण है, क्योकि सिद्धो से अनन्तगुण वनस्पतिकायिको मे कापोतलेश्या का सद्भाव है। उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं। उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक है, क्योकि क्लिष्टतर अध्यवसाय वाले प्रभूत होते हैं। यह सप्तविध सर्वजीवप्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

सर्वजीव-अष्टविध-वक्तव्यता

२५४. तत्थ णं जेते एवमाहंसु अट्ठविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तं जहा—आभिनिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी मइअण्णाणी सुयअण्णाणी विभंगणाणी।

आभिणिबोहियणाणी णं भंते ! आभिणिबोहियणाणित्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जह० अंतो० उक्को० छावट्ठिसागरोवमाइं साइरेगाइं। एवं सुयणाणीवि। ओहिणाणी णं भंते! ०? जह० एक्कं समयं उक्को० छावट्ठिसागरोवमाइं साइरेगाइं। मणपज्जवणाणी ण भंते ! ०? जह० एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी। केवलणाणी णं भंते ! ०? साइए अपज्जवसिए।

मइअण्णाणी ण भंते ! ०? मइअण्णाणी तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जेसे साइए सपज्जवसिए से जह० अंतो० उक्को० अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। सुयअण्णाणी एवं चेव। विभंगणाणी णं भंते ! ०? जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं देसूणाए पुव्वकोडिए अब्भहियाइं।

आभिणिबोहियणाणिस्स ण भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? जह० अंतो०, उक्को० अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। एवं सुयणाणिस्सवि। ओहिणाणिस्सवि, मणपज्जवणाणिस्सवि। केवलणाणिस्स णं भंते ! अंतरं० ? साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। मइ-अण्णाणिस्स णं भंते ! अंतरं० ? अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं। एवं सुय-अण्णाणिस्सवि। विभंगणाणिस्स णं भंते ! अंतरं० ? जह० अंतो०, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

एएसि णं भंते ! आभिणिबोहियणाणीणं सुयणाणीणं ओहि० मण० केवल० मइअण्णाणीणं सुयअण्णाणीणं विभंगणाणीणं कयरे० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवणाणी, ओहिणाणी असंखेज्जगुणा, आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी असंखेज्जगुणा, आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी एए

दोवि तुल्ला विसेसाहिया, विभंगणाणी असंखेज्जगुणा, केवलणाणिणो अणंतगुणा, मइअण्णाणी सुयअ-ण्णाणी य दोवि तुल्ला अणंतगुणा ।

२५४. जो ऐसा कहते है कि आठ प्रकार के सर्व जीव हैं, उनका मन्तव्य है कि सब जीव आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्यायज्ञानी, केवलज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभगज्ञानी के भेद से आठ प्रकार के है ।

भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञानी आभिनिबोधिकज्ञानी के रूप मे कितने समय तक रहता है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से साधिक छियासठ सागरोपम तक रहता है । श्रुतज्ञानी भी इतना ही रहता है । अवधिज्ञानी जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम तक रहता है । मन.पर्यायज्ञानी जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक रहता है । केवलज्ञानी सादि-अपर्यवसित होने से सदा उस रूप मे रहता है ।

मति-अज्ञानी तीन प्रकार के हैं—१. अनादि-अपर्यवसित, २ अनादि-सपर्यवसित और ३. सादि-सपर्यवसित । इनमे जो सादि-सपर्यवसित है वह जघन्य अतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल, जो देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त रूप तक रहता है । श्रुत-अज्ञानी भी इतने ही समय तक रहता है। विभगज्ञानी जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम तक रहता है ।

आभिनिबोधिकज्ञानी का अन्तर जघन्य अतर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल, जो देशोन पुद्गलपरावर्त रूप है । इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मन पर्यायज्ञानी का अतर भी जानना चाहिए । केवलज्ञानी का अन्तर नही है, क्योकि वह सादि-अपर्यवसित है ।

मति-अज्ञानियो मे जो अनादि-अपर्यवसित हैं, उनका अन्तर नही है । जो अनादि-सपर्यवसित हैं, उनका अन्तर नही है । जो सादि-सपर्यवसित है, उनका अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक छियासठ सागरोपम है । इसी प्रकार श्रुत-अज्ञानी का अन्तर भी जानना चाहिए । विभगज्ञानी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है ।

भगवन् ! इन आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्यायज्ञानी, केवलज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभगज्ञानी मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े मन पर्यायज्ञानी हैं । उनसे अवधिज्ञानी असख्येयगुण हैं, उनसे मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी विशेषाधिक है और स्वस्थान मे तुल्य है, उनसे विभंगज्ञानी असंख्येयगुण है, उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुण हैं और उनसे मति-अज्ञानी श्रुत-अज्ञानी अनन्तगुण हैं और स्वस्थान मे तुल्य है ।

विवेचन—इसका विवेचन सर्व जीव की छठी प्रतिपत्ति मे किया जा चुका है। अतएव जिज्ञासु वहा देख सकते है ।

२५५. अहवा अट्ठविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइया तिरिक्खजोणिया तिरिक्ख-जोणिणीओ मणुस्सा मणुस्सीओ देवा देवीओ सिद्धा ।

णेरइए णं भंते ! णेरइएत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं । तिरिक्खजोणिए णं भंते ! ०? जह० अंतो० उक्कोसेणं वणस्सइ-

कालो । तिरिक्खजोणिणी णं भंते ! ०? जह० अतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तम-ब्भहियाइं । एवं मणूसे मणूसी । देवे जहा नेरइए । देवी ण भंते ! ०? जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्को० पणपन्नं पलिओवमाइं । सिद्धे णं भंते ! सिद्धेत्ति० ? गोयमा साइए अपज्जवसिए ।

णेरइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? जह० अंतो०, उक्को० वणस्सइकालो । तिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्को० सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं । तिरिक्खजोणिणी णं भंते ० ? गोयमा ! जह० अतो०, उक्को० वणस्सइकालो । एवं मणुस्सवि मणुस्सीएवि । देवस्सवि देवीएवि । सिद्धस्स णं भते! ०? साइयस्स अपज्जवसिए णत्थि अंतरं ।

एएसि णं भंते ! णेरइयाणं तिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीणं मणूसाणं मणूसीणं देवाण सिद्धाणं य कयरे० ? गोयमा सव्वत्थोवा मणुस्सीओ, मणूसा असंखेज्जगुणा, नेरइया असंखेज्जगुणा, तिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ, देवा सखेज्जगुणा, देवीओ संखेज्जगुणाओ, सिद्धा अणंतगुणा, तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा । सेत्तं अट्ठविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ।

२५५ अथवा सब जीव आठ प्रकार के कहे गये है, जैसे कि—नैरयिक, तिर्यग्योनिक, तिर्यग्योनिकी, मनुष्य, मनुष्यनी, देव, देवी और सिद्ध ।

भगवन् ! नैरयिक, नैरयिक रूप मे कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य से दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम तक रहता है । तिर्यग्योनिक जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल तक रहता है । तिर्यग्योनिकी जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहती है । इसी तरह मनुष्य और मानुषी स्त्री के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए । देवो का कथन नैरयिक के समान है । देवी जघन्य से दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से पचपन पल्योपम तक रहती है । सिद्ध सादि-अपर्यवसित होने से सदा उस रूप मे रहते है ।

भगवन् ! नैरयिक का अन्तर कितना है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है । तिर्यग्योनिक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशत-पृथक्त्व है । तिर्यग्योनिकी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है । इसी प्रकार मनुष्य का, मानुषी स्त्री का, देव का और देवी का भी अन्तर कहना चाहिए । सिद्ध सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नही है ।

भगवन् ! इन नैरयिको, तिर्यग्योनिको, तिर्यग्योनिनियो, मनुष्यो, मानुषीस्त्रियों, देवो, देवियो और सिद्धो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

गौतम ! सबसे थोडी मानुषीस्त्रिया, उनसे मनुष्य असख्येयगुण, उनसे नैरयिक असंख्येयगुण, उनसे तिर्यग्योनिक स्त्रियां असख्यातगुणी, उनसे देव सख्येयगुण, उनसे देविया सख्येयगुण, उनसे सिद्ध अनन्तगुण, उनसे तिर्यग्योनिक अनन्तगुण है ।

विवेचन—इनका विवेचन ससारसमापन्नक जीवो की सप्तविध प्रतिपत्ति नामक छठी प्रतिपत्ति में देखना चाहिए । यह अष्टविध सर्वजीवप्रतिपत्ति पूर्ण हुई ।

सर्वजीव-नवविध-वक्तव्यता

२५६. तत्थ णं जेते एवमाहंसु णवविधा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु तं जहा—एगिंदिया बेंदिया तेंदिया चउरिंदिया णेरइया पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा देवा सिद्धा ।

एगिंदिए णं भंते ! एगिंदिएत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो । बेंदिए णं भंते !०? जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जं कालं । एवं तेइंदिएवि, चउरिंदिएवि । णेरइए णं भंते !०? जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं । पंचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते !०? जह० अंतो०, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं । एवं मणूसेवि । देवा जहा णेरइया । सिद्धे णं भंते! ०?साइए अपज्जवसिए ।

एगिंदियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जह० अंतो०, उक्को० दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं । बेंदियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जह० अंतो०, उक्को० वणस्सइकालो । एवं तेंदियस्सवि चउरिंदियस्सवि णेरइयस्सवि पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्सवि मणूसस्सवि देवस्सवि सव्वेसिं एवं अंतरं भाणियव्वं । सिद्धस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ।

एएसि णं भंते ! एगेंदियाणं बेंदियाणं तेंदियाणं चउरिंदियाणं णेरइयाणं पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुसाणं देवाणं सिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा मणुस्सा, णेरइया असंखेज्जगुणा, देवा असंखेज्जगुणा, पंचेंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा, चउरिंदिया विसेसाहिया, तेंदिया विसेसाहिया, बेंदिया विसेसाहिया, सिद्धा अणंतगुणा, एगिंदिया अणंतगुणा ।

२५६ जो ऐसा कहते हैं कि सर्व जीव नौ प्रकार के हैं, वे नौ प्रकार इस तरह बताते हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नैरयिक, पचेन्द्रियतिर्यग्योनिक, मनुष्य, देव और सिद्ध ।

भगवन् ! एकेन्द्रिय, एकेन्द्रियरूप मे कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रहता है । द्वीन्द्रिय जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्येयकाल तक रहता है । त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय भी इसी प्रकार कहने चाहिए ।

भगवन् ! नैरयिक, नैरयिक के रूप मे कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से तेतीस सागरोपम तक रहता है । पचेन्द्रियतिर्यच जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहता है । इसी प्रकार मनुष्य के लिए भी कहना चाहिए । देवो का कथन नैरयिक के समान है । सिद्ध सादि-अपर्यवसित होने के सदा उसी रूप मे रहते हैं ।

भगवन् ! एकेन्द्रिय का अन्तर कितना है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से सख्येय वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है । द्वीन्द्रिय का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नैरयिक, पचेन्द्रियतियंच, मनुष्य और देव—सबका इतना ही अन्तर है । सिद्ध सादि-अपर्यवसित होने से उनका अन्तर नही होता है ।

भगवन् ! इन एकेन्द्रियों, द्वीन्द्रियो, त्रीन्द्रियों, चतुरिन्द्रियो, नैरयिको, तिर्यंचों, मनुष्यो, देवो और सिद्धों मे कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े मनुष्य है, उनसे नैरयिक असंख्येयगुण हैं, उनसे देव असख्येयगुण हैं, उनसे पचेन्द्रिय तिर्यंच असख्येयगुण हैं, उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं और उनसे सिद्ध अनन्तगुण हैं और उनसे एकेन्द्रिय अनन्तगुण हैं ।

विवेचन—सूत्रार्थ स्पष्ट ही है । इनकी भावना और युक्ति पूर्व मे स्थान-स्थान पर स्पष्ट की जा चुकी है ।

२५७ अहवा णवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तं जहा—पढमसमयणेरइया अपढमसमयणेरइया पढमसमयतिरिक्खजोणिया अपढमसमयतिरिक्खजोणिया पढमसमयमणुस्सा अपढमसमयमणुस्सा पढमसमयदेवा अपढमसमयदेवा सिद्धा य ।

पढमसमयणेरइया णं भंते ! कालओ०? गोयमा ! एक्कं समयं । अपढमसमयणेरइए णं भंते ! ०? जहण्णेण दस वाससहस्साइं समय-उणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समय-उणाइं ।

पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! ० ? एक्कं समयं । अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! ० ? जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयऊणं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

पढमसमयमणूसे णं भंते ! ० ? एक्कं समयं । अपढमसमयमणूसे णं भंते ! ० ? जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयऊणं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं ।

देवे जहा णेरइए । सिद्धे ण भंते ! सिद्धेत्ति कालओ केवचिरं होई ? गोयमा ! साइए अपज्जवसिए ।

पढमसमयणेरइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं दस वास-सहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

अपढमसमयणेरइयस्स णं भते ! अंतरं ० ? जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ० ? जहण्णेणं दो खुड्डागाइं भवग्ग-हणाइं समय-ऊणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ ० ? जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं ।

पढमसमयमणूसस्स जहा पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स । अपढमसमयमणूसस्स णं भंते ! ० ? जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं, समयाहियं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

पढमसमयदेवस्स जहा पढमसमयणेरइयस्स । अपढमसमयदेवस्स जहा अपढसमयणेरइयस्स ।

सिद्धस्स णं भंते ! ० ? साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयणेरइयाणं पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं पढमसमयमणूसाणं पढमसमयदेवाण य कयरे ० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयमणुस्सा, पढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा, पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा ।

एएसि णं भंते ! अपढमसमयनेरइयाणं अपढमसमयतिरिक्खजोणियाणं अपढमसमयमणूसाणं अपढमसमयदेवाण य कयरे ० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा अपढमसमयमणूसा, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयनेरइयाणं अपढमसमयनेरइयाण य कयरे ० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयनेरइया, अपढमसमयनेरइया असखेज्जगुणा ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयतिरिक्खजोणियाण अपढमसमयतिरिक्खजोणियाणं कयरे० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयतिरिक्खजोणिया, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ।

मणुयदेव-अप्पाबहुयं जहा नेरइयाणं ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयनेरइयाणं पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं पढमसमयमणूसाण पढमसमयदेवाणं अपढमसमयनेरइयाणं अपढमसमयतिरिक्खजोणियाणं अपढमसमयमणूसाण अपढमसमयदेवाण सिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयमणूसा, अपढमसमयमणूसा असंखेज्जगुणा, पढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, पढमसमयदेवा असखेज्जगुणा, पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयदेवा असखेज्जगुणा, सिद्धा अणंतगुणा, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा । सेत्तं नवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ।

२५७ अथवा सर्व जीव नौ प्रकार के हैं—

१. प्रथमसमयनैरयिक, २ अप्रथमसमयनैरयिक, ३ प्रथमसमयतिर्यग्योनिक, ४ अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक, ५ प्रथमसमयमनुष्य, ६ अप्रथमसमयमनुष्य, ७. प्रथमसमयदेव, ८ अप्रथमसमयदेव और ९. सिद्ध ।

भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिक, प्रथमसमयनैरयिक के रूप में कितने समय रहता है ? गौतम ! एक समय । अप्रथमसमयनैरयिक जघन्य एक समय कम दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से एक समय कम तेतीस सागरोपम तक रहता है ।

प्रथमसमयतिर्यग्योनिक एक समय तक और अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक जघन्य एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण तक और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल तक । प्रथमसमयमनुष्य एक समय और अप्रथमसमयमनुष्य जघन्य समय कम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहता है । देव का कथन नैरयिक के समान है ।

भगवन्! सिद्ध, सिद्ध रूप मे कितने समय रहता है? गौतम! सिद्ध सादि-अपर्यवसित है। सदा उसी रूप में रहता है।

भगवन्! प्रथमसमयनैरयिक का अन्तर कितना है? गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयनैरयिक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

प्रथमसमयतिर्यग्योनिक का अन्तर जघन्य समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक का अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है।

प्रथमसमयमनुष्य का अन्तर प्रथमसमयतिर्यंच के समान है। अप्रथमसमयमनुष्य का अन्तर समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

प्रथमसमयदेव का अन्तर प्रथमसमयनैरयिक के समान है। अप्रथमसमयदेव का अन्तर अप्रथमसमयनैरयिक के समान है।

सिद्ध सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नही है।

भगवन्! इन प्रथमसमयनैरयिक, प्रथमसमयतिर्यग्योनिक, प्रथमसमयमनुष्य और प्रथमसमय-देवो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

गौतम! सबसे थोडे प्रथमसमयमनुष्य, उनसे प्रथमसमयनैरयिक असख्यगुण, उनसे प्रथमसमय-देव असख्यातगुण, उनसे प्रथमसमयतिर्यग्योनिक असख्यातगुण है।

भगवन्! इन अप्रथमसमयनैरयिक, अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक, अप्रथमसमयमनुष्य और अप्रथम-समयदेवो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं? गौतम! सबसे थोडे अप्रथमसमयमनुष्य है, उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असख्येयगुण हैं, उनसे अप्रथमसमयदेव असख्येयगुण हैं और उनसे अप्रथमसमयतिर्यंच अनन्तगुण है।

भगवन्! इन प्रथमसमयनैरयिको और अप्रथमसमयनैरयिको मे कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है? गौतम! सबसे थोडे प्रथमसमयनैरयिक हैं और उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असख्यातगुण है।

भगवन्! इन प्रथमसमयतिर्यंचो और अप्रथमसमयतिर्यंचो मे कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है? गौतम! प्रथमसमयतिर्यंच सबसे थोडे और अप्रथमसमयतिर्यंच अनन्तगुण है।

मनुष्य और देवों का अल्पबहुत्व नैरयिकों की तरह कहना चाहिए।

भगवन्! इन प्रथमसमयनैरयिक, प्रथमसमयतिर्यंच, प्रथमसमयमनुष्य, प्रथमसमयदेव, अप्रथमसमयनैरयिक, अप्रथमसमयतिर्यंच, अप्रथमसमयमनुष्य, अप्रथमसमयदेव और सिद्धो मे कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

गौतम ! सबसे थोडे प्रथमसमयमनुष्य, उनसे अप्रथमसमयमनुष्य असख्यातगुण, उनसे प्रथमसमयनैरयिक असख्यातगुण, उनसे प्रथमसमयदेव असख्यातगुण, उनसे प्रथमसमयतिर्यंच असख्यातगुण, उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असख्यातगुण, उनसे अप्रथमसमयदेव असख्यातगुण, उनसे सिद्ध अनन्तगुण और उनसे अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक अनन्तगुण है।

इस प्रकार सर्वजीवो की नवविधप्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

विवेचन—इनकी युक्ति और भावना पूर्व मे प्रतिपादित की जा चुकी है। सर्वजीव नवविध-प्रतिपत्ति पूर्ण।

सर्वजीव-दसविध-वक्तव्यता

२५८ तत्थ णं जेते एवमाहंसु दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहसु, त जहा—पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया बेंदिया तेंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया अणिंदिया।

पुढविकाइया णं भंते ! पुढविकाइएत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जह० अतो०, उक्को० असखेज्जं कालं—असखेज्जाओ उस्सप्पिणीओ ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असखेज्जा लोया। एवं आउ-तेउ-वाउकाइए।

वणस्सइकाइए णं भंते ! ० ? गोयमा ! जह० अंतो०, उक्को०, वणस्सइकालो।

बेंदिए णं भंते! ०? जह० अंतो०, उक्कोसेणं सखेज्ज कालं। एवं तेइंदिएवि, चउरिंदिएवि। पंचिंदिए ण भंते ! ०? गोयमा ! जह० अंतो०, उक्कोसेणं सागरोवमसहस्सं साइरेगं।

अणिंदिए ण भंते ! ०? साइए अपज्जवसिए।

पुढविकाइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिर होइ ? गोयमा ! जह० अंतो०, उक्को० वणस्सइकालो। एवं आउकाइयस्स तेउकाइयस्स वाउकाइयस्स।

वणस्सइकाइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ०? जा चेव पुढविकाइयस्स संचिट्ठणा, बिय-तिय-चउरिंदिया-पचेंदियाण एएसि चउण्हंपि अतर जह० अंतो०, उक्को० वणस्सइकालो।

अणिंदियस्स णं भंते ! अतर कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतर।

एएसि णं भंते ! पुढविकाइयाण आउ-तेउ-वाउ-वण-बेंदियाण तेंदियाणं चउरिंदियाणं पचेंदियाण अणिंदियाण य कयरे कयरेहिंतो० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचेंदिया, चउरिंदिया विसेसाहिया, तेंदिया विसेसाहिया, बेंदिया विसेसाहिया, तेउकाइया असंखेज्जगुणा, पुढविकाइया विसेसाहिया, आउकाइया विसेसाहिया, वाउकाइया विसेसाहिया, अणिंदिया अणंतगुणा, वणस्सइकाइया अणंतगुणा।

२५८ जो ऐसा कहते हैं कि सर्व जीव दस प्रकार के हैं, वे इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं, यथा—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक, पृथ्वीकायिक के रूप मे कितने समय तक रहते है ? गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असख्यातकाल तक, जो असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप (कालमार्गणा) से है और क्षेत्रमार्गणा से असख्येय लोकाकाशप्रदेशो के निर्लेपकाल के तुल्य है। इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक की सचिट्ठणा जाननी चाहिए।

भगवन् ! वनस्पतिकायिक की सचिट्ठणा कितनी है ?

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

भगवन् ! द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय रूप में कितने समय तक रह सकता है ?

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यातकाल तक रह सकता है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की भी सचिट्ठणा जाननी चाहिए।

भगवन् ! पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय रूप मे कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष साधिक एक हजार सागरोपम तक रह सकता है।

भगवन् ! अनिन्द्रिय, अनिन्द्रिय रूप मे कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! वह सादि-अपर्यवसित होने ने सदा उसी रूप मे रहता है।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक का अन्तर कितना है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक का भी अन्तर जानना चाहिए। वनस्पतिकायिको का अन्तर वही है जो पृथ्वीकायिक की सचिट्ठणा है, अर्थात् जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असख्येय काल है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय इन चारो का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। अनिन्द्रिय सादि-अपर्यवसित होने से उसका अन्तर नही है।

भगवन् ! इन पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय और अनिन्द्रियो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोडे पचेन्द्रिय है, उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक है, उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक है, उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक है, उनसे तेजस्कायिक असख्यगुण है, उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक है, उनसे अप्कायिक विशेषाधिक है, उनसे वायुकायिक विशेषाधिक है, उनसे अनिन्द्रिय अनन्तगुण हैं और उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुण हैं।

विवेचन—इन सबकी युक्ति और भावना पूर्व मे स्थान-स्थान पर कही गई है। अत: पुनरावृत्ति नहीं की जा रही है। जिज्ञासुजन यथास्थान पर देखे।

२५९. अहवा दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—१. पढमसमयनेरइया, २. अपढमसमयनेरइया, ३. पढमसमयतिरिक्खजोणिया, ४. अपढमसमयतिरिक्खजोणिया, ५. पढमसमयमणूसा, ६. अपढमसमयमणूसा, ७. पढमसमयदेवा, ८. अपढमसमयदेवा, ९. पढमसमयसिद्धा १०. अपढमसमयसिद्धा।

पढमसमयनेरइए णं भंते ! पढमसमयनेरइएत्ति कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! एक्कं समयं।

अपढमसमयनेरइए णं भंते ! ० ? जहण्णेणं दस वाससहस्साइं समय-ऊणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समय-ऊणाइं।

पढमसमयतिरिक्खजोणिए णं भंते ! ० ? गोयमा ! एक्कं समयं। अपढमसमयतिरिक्खजोणिए णं भंते ! ० ? गोयमा ! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयऊणं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

पढमसमयमणुस्से णं भंते ! ० ? एक्कं समयं। अपढमसमयमणुस्से० ? जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयऊणं, उक्कोसेणं तिण्णिपलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं।

देवे जहा णेरइए। पढमसमयसिद्धे णं भंते ! ० ? एक्कं समयं। अपढमसमयसिद्धे णं भंते ! ०? साइए अपज्जवसिए।

पढमसमयनेरइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

अपढमसमयनेरइयस्स णं भंते ! ० ? जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स अंतरं केवचिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समयऊणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! ० ? जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं।

पढमसमयमणूसस्स णं भंते ! ० ? जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समयऊणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

अपढमसमयमणूसस्स णं भंते ! अंतरं० ? जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

देवस्स णं अंतरं जहा णेरइयस्स।

पढमसमयसिद्धस्स णं भंते ! ० ? अंतरं णत्थि।

अपढमसमयसिद्धस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

एएसि णं भंते ! पढमसमयणेरइयाणं पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं पढमसमयमणूसाणं पढमसमयदेवाणं पढमसमयसिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयसिद्धा, पढमसमयमणूसा असंखेज्जगुणा, पढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा।

एएसि णं भंते ! अपढमसमयनेरइयाणं जाव अपढमसमयसिद्धाण य कयरे० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा अपढमसमयमणूसा, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा, अपढमसमयसिद्धा अणंतगुणा, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा।

एएसि णं भंते ! पढमसमयनेरइयाणं अपढमसमयनेरइयाण य कयरे० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयनेरइया, अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा।

एएसि णं भंते ! पढमसमयतिरिक्खजोणियाणं अपढमसमयतिरिक्खजोणियाण य कयरे० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयतिरिक्खजोणिया, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणतगुणा ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयमणूसाण अपढमसमयमणूसाण य कयरे० ? गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयमणूसा, अपढमसमयमणूसा असखेज्जगुणा । जहा मणूसा तहा देवावि ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयसिद्धाण अपढमसमयसिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ? गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयसिद्धा, अपढमसमयसिद्धा अणंतगुणा ।

एएसि णं भंते ! पढमसमयनेरइयाण अपढमसमयनेरइयाण पढमसमयतिरिक्खजोणियाण अपढमसमयतिरिक्खजोणियाणं पढमसमयमणूसाण अपढमसमयमणूसाण पढमसमयदेवाण अपढमसमयदेवाण पढमसमयसिद्धाण अपढमसमयसिद्धाण कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पढमसमयसिद्धा, पढमसमयमणूसा असखेज्जगुणा, अपढमसमयमणूसा असखेज्जगुणा, पढमसमयनेरइया असखेज्जगुणा, पढमसमयदेवा असखेज्जगुणा, पढमसमयतिरिक्खजोणिया असखेज्जगुणा, अपढमसमयनेरइया असखेज्जगुणा, अपढमसमयदेवा असखेज्जगुणा, अपढमसमयसिद्धा अणतगुणा, अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणतगुणा ।

सेत्त दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता । सेत्तं सव्वजीवाभिगमे ।

इति जीवाजीवाभिगमसुत्त सम्मत्तं ।

(सूत्रे ग्रन्थाग्रम् ४७५० ।।)

२५९ अथवा सर्व जीव दस प्रकार के हैं, यथा—

१ प्रथमसमयनैरयिक, २ अप्रथमसमयनैरयिक, ३ प्रथमसमयतिर्यग्योनिक ४ अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक, ५ प्रथमसमयमनुष्य, ६ अप्रथमसमयमनुष्य, ७ प्रथमसमयदेव, ८ अप्रथमसमयदेव, ९ प्रथमसमयसिद्ध, १० अप्रथमसमयसिद्ध ।

भगवन् ! प्रथमसमयनैरयिक, प्रथमसमयनैरयिक के रूप मे कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! एक समय तक ।

भगवन् ! अप्रथमसमयनैरयिक उसी रूप मे कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! एक समय कम दस हजार वर्ष तक और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम तक रहता है ।

भगवन् ! प्रथमसमयतिर्यग्योनिक उसी रूप मे कितने समय तक रहता है ?

गौतम ! एक समय तक ।

अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण तक और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल तक रहता है ।

भगवन् ! प्रथमसमयमनुष्य उस रूप मे कितने काल तक रहता है ?

गौतम ! एक समय तक ।

अप्रथमसमयमनुष्य जघन्य से एक समय कम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहता है।

देव का कथन नैरयिक की तरह है।

भगवन्! प्रथमसमयसिद्ध उस रूप मे कितने समय रहता है?

गौतम! एक समय तक। अप्रथमसमयसिद्ध सादि-अपर्यवसित होने से सदाकाल रहता है।

भगवन्! प्रथमसमयनैरयिक का अन्तर कितना है?

गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयनैरयिक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

भगवन्! प्रथमसमयतिर्यग्योनिक का अन्तर कितना है?

गौतम! जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण है, उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक का अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कर्ष से साधिक सागरोपमशतपृथक्त्व है।

भगवन्! प्रथमसमयमनुष्य का अन्तर कितना है?

गौतम! जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयमनुष्य का अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभव और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है।

देव का अन्तर नैरयिक की तरह कहना चाहिए।

भगवन्! प्रथमसमयसिद्ध का अन्तर कितना है? प्रथमसमयसिद्ध का अन्तर नही है।

भगवन्! अप्रथमसमयसिद्ध का अन्तर कितना है? अप्रथमसमयसिद्ध सादि-अपर्यवसित होने से अन्तर नही है।

भगवन्! प्रथमसमयनैरयिक, प्रथमसमयतिर्यग्योनिक, प्रथमसमयमनुष्य, प्रथमसमयदेव और प्रथमसमयसिद्धो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

गौतम! सबसे थोडे प्रथमसमयसिद्ध, उनसे प्रथमसमयमनुष्य असख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयनैरयिक असख्येयगुण, उनसे प्रथमसमयदेव असख्यातगुण और उनसे प्रथमसमयतिर्यग्योनिक असख्येयगुण हैं।

भगवन्! इन अप्रथमसमयनैरयिक यावत् अप्रथमसमयसिद्धो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

गौतम! सबसे थोडे अप्रथमसमयमनुष्य, उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असख्येयगुण, उनसे अप्रथमसमयदेव असख्येयगुण, उनसे अप्रथमसमयसिद्ध अनन्तगुण और उनसे अप्रथमसमयतिर्यग्योनिक अनन्तगुण हैं।

भगवन्! इन प्रथमसमयनैरयिको और अप्रथमसमयनैरयिको मे कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं।

गौतम! सबसे थोडे प्रथमसमयनैरयिक हैं, उनसे असंख्यातगुण अप्रथमसमयनैरयिक हैं।

भगवन्! इन प्रथमसमयतिर्यंग्योनिको और अप्रथमसमयतिर्यंग्योनिको मे कौन किससे अल्पादि हैं?

गौतम! सबसे थोडे प्रथमसमयतिर्यंग्योनिक हैं और उनसे अप्रथमसमयतिर्यंग्योनिक अनन्तगुण हैं।

भगवन्! इन प्रथमसमयमनुष्यो और अप्रथमसमयमनुष्यो मे कौन किससे अल्पादि हैं?

गौतम! सबसे थोड़े प्रथमसमयमनुष्य हैं, उनसे अप्रथमसमयमनुष्य असंख्यातगुण है।

जैसा मनुष्यो के लिए कहा है, वैसा देवो के लिए भी कहना चाहिए।

भगवन्! इन प्रथमसमयसिद्धो और अप्रथमसमयसिद्धो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

गौतम! सबसे थोडे प्रथमसमयसिद्ध है, उनसे अप्रथमसमयसिद्ध अनन्तगुण हैं।

भगवन्! इन प्रथमसमयनैरयिक, अप्रथमसमयनैरयिक, प्रथमसमयतिर्यंग्योनिक, अप्रथमसमय-तिर्यंग्योनिक, प्रथमसमयमनुष्य, अप्रथमसमयमनुष्य, प्रथमसमयदेव, अप्रथमसमयदेव, प्रथमसमयसिद्ध और अप्रथमसमयसिद्ध, इनमे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

गौतम! सबसे थोडे प्रथमसमयसिद्ध है, उनसे प्रथमसमयमनुष्य असंख्यातगुण है, उनसे अप्रथमसमयमनुष्य असख्यातगुण है, उनसे प्रथमसमयनैरयिक असंख्यातगुण है, उनसे प्रथमसमयदेव असख्यातगुण हैं, उनसे प्रथमसमयतिर्यंच असंख्यातगुण है, उनसे अप्रथमसमयनैरयिक असख्यातगुण है, उनसे अप्रथमसमयदेव असख्यातगुण हैं, उनसे अप्रथमसमयसिद्ध अनन्तगुण है, उनसे अप्रथमसमय तिर्यच अनन्तगुण हैं।

इस तरह दसविध सर्वजीव-प्रतिपत्ति का और सर्वजीवाभिगम का वर्णन समाप्त हुआ।

।। जीवाजीवाभिगमसूत्र समाप्त ।।

(सूत्र ग्रन्थाग्रम् ४७५०) ।।

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणित्ते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्गसूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहि महापाडिवएहिं सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए, कत्तिअपाडिवए, सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहि सझाहिं सज्झाय करेत्तए, त जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गये हैं। जिनका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२. दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग-सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

३-४.—गर्जित-विद्युत्—गर्जन और विद्युत प्राय ऋतु स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर या बादलो सहित आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्यायकाल है।

६ यूपक—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८. धूमिका कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज उद्घात—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के है।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. हड्डी मांस और रुधिर—पचेद्रिय तिर्यच की हड्डी, मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दे, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुए उठाई न जाएँ जब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७ सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश· आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्र पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए । अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनै शनै· स्वाध्याय करना चाहिए ।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करें।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए ।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये है ।

२१-२८ चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा— आषाढपूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव है । इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं । इसमे स्वाध्याय करने का निषेध है ।

२९-३२. प्रात सायं मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रातः सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे । सूर्यास्त होने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे । मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए ।

श्री आगमप्रकाशन-समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया , मद्रास
२ श्री गुलाबचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३. श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४ श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बैंगलोर
५ श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६ श्री एस किशनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
७ श्री कवरलालजी बैताला, गोहाटी
८ श्री सेठ खीवराजजी चोरडिया मद्रास
९ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१० श्री एस बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११ श्री जे दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३. श्री जे अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१४. श्री एस सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१५ श्री आर. शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६ श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१७. श्री जे हुक्मीचन्दजी चोरडिया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१. श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
३. श्री तिलोकचदजी, सागरमलजी सचेती, मद्रास
४. श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, कटगी
५. श्री आर प्रसन्नचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
६. श्री दीपचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७. श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटगी
८. श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९. श्री मागीलालजी मिश्रीलालजी सचेती, दुर्ग

संरक्षक

१ श्री बिरदीचदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
२ श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेडता सिटी
४. श्री श० जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चागाटोला
७ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
८ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चागा-टोला
९ श्रीमती सिरेकुँवर बाई धर्मपत्नी स्व श्री सुगनचन्दजी झामड, मदुरान्तकम्
१० श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K G F) जाडन
११ श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२ श्री भैरुदानजी लाभचन्दजी सुराणा, नागौर
१३ श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया ब्यावर
१५ श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनादगाव
१६ श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
१७ श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी काकरिया, टगला
१८ श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
१९ श्री हरकचन्दजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२० श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढा, चांगाटोला
२१ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला

२२. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२३ श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४. श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५. श्री रतनचन्दजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
२६ श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूठा
२७ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढ़ा डोडीलोहारा
२८. श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, बेल्लारी
२९ श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३० श्री सी० अमरचन्दजी बोथरा, मद्रास
३१ श्री भवरलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
३२ श्री बादलचदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, अजमेर
३५. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बेंगलोर
३६. श्री भवरीमलजी चोरड़िया, मद्रास
३७ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३८ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३९. श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४० श्री जबरचन्दजी गेलड़ा, मद्रास
४१ श्री जडावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
४२ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३ श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४. श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास
४५. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसा, मेड़तासिटी
२. श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३ श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
४. श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
५ श्री भवरलालजी चौपडा, ब्यावर
६. श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री बी. गजराजजी बोकडिया, सेलम
८ श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी काठेड, पाली
९. श्री के पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१०. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१२ श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
१५ श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टांटिया, जोधपुर
१८ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
१९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
२० श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचदजी गोठी, जोधपुर
२१ श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२ श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२३ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री जवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५. श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेडतासिटी
२६ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९ श्री नेमीचदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३०. श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
३१. श्री आसूमल एण्ड क०, जोधपुर
३२. श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३. श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी साड, जोधपुर
३४ श्री बच्छराजी सुराणा, जोधपुर
३५. श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६. श्री देवराजजी लाभचंदजी मेड़तिया, जोधपुर
३७. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८. श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टांटिया, जोधपुर
३९. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, कुचेरा

४०. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१. श्री ओकचदजी हेमराजजी सोनी, दुर्ग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३. श्री घीसूलालजी लालचदजी पारख, दुर्ग
४४. श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट क) जोधपुर
४५. श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६. श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बैंगलोर
४७ श्री भवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८. श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर
४९. श्री भवरलालजी नवरत्नमलजी साखला, मेट्टूपालियम
५० श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
५४ श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
५६. श्री मुन्नीलालजी मूलचदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८. श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
५९. श्री भवरलालजी रिखबचदजी नाहटा, नागौर
६० श्री मागीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१ श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कला
६२ श्री हरकचदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
६३ श्री चन्दनमलजी प्रेमचंदजी मोदी, भिलाई
६४. श्री भीवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५. श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६. श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गुलेच्छा, राजनादगाँव
६७. श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
६८. श्री भंवरलालजी डूगरमलजी कांकरिया, भिलाई
६९ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७० श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
७१ श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२ श्री गगारामजी इन्द्रचदजी बोहरा, कुचेरा
७३. श्री फतेहराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४. श्री बालचदजी थानचन्दजी भरट, कलकत्ता
७५ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६ श्री जवरीलालजी शातिलालजी सुराणा, बोलारम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९. श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, टगला
८०. श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचदजी बाफना, गोठ
८३. श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४. श्री माँगीलालजी मदनलालजी चोरडिया, भैरूदा
८५ श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७ श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९ श्री धुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९० श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
९१ श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४ श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भडारी, बैंगलौर
९५. श्रीमती कमलाकवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६. श्री अखेचदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७ श्री सुगनचन्दजी संचेती, राजनादगाँव

९८. श्री प्रकाशचदजी जैन, नागौर
९९ श्री कुशालचदजी रिखबचन्दजी सुराणा, बोलारम
१००. श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१. श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२ श्री तेजराजजी कोठारी, मागलियावास
१०३. सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४. श्री अमरचदजी छाजेड, पादु बडी
१०५ श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७ श्रीमती कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्राम
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९ श्री भवरलालजी मागीलालजी बेताला, डेह
११०. श्री जीवराजजी भवरलालजी चोरडिया, भैरू दा
१११. श्री माँगीलालजी शातिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३ श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४ श्री भूरमलजी दुलीचदजी बोकडिया, मेडता सिटी
११५ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६ श्रीमती रामकुवरबाई धर्मपत्नी श्री चांदमलजी लोढा, बम्बई
११७ श्री माँगीलालजी उत्तमचदजी बाफणा, बेंगलोर
११८ श्री साचालालजी बाफणा, औरगाबाद
११९ श्री भीखमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर) मद्रास
१२० श्रीमती अनोपकुवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
१२२ श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३ श्री भीखमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया मिकन्दराबाद
१२६ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, बगडीनगर
१२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाडा
१२८. श्री टी. पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
१२९ श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड कं, बेंगलोर
१३० श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड □□